इब्नबतूताकी भारतयात्रा

या

चौदहवीं शताब्दीका भारत

अनुवादक—श्री मदनगोपाल बी० ए० एल-एल बी०

सम्पादक—श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

प्रकाशक—
श्री काशी विद्यापीठ, बनारस छावनी

इब्नबतूताकी भारतयात्रा ।

या

चौदहवीं शताब्दीका भारत ।



अनुवादक—श्री मदनगोपाल बी० ए० एल-एल० बी०

सम्पादक—श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव ।

प्रकाशक

श्री काशी विद्यापीठ, बनारस छावनी ।

प्रथम बार १००० } १९८८ { मूल्य अजिल्दका २) सजिल्दका २।=)

प्रकाशक—
मन्त्री, श्री काशी विद्यापीठ
बनारस छावनी।

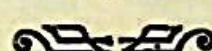


मुद्रक—
माधव विष्णु पराड़कर
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, काशी।

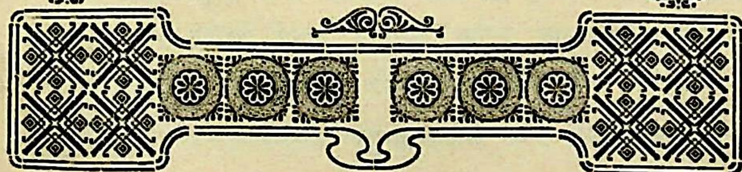
समर्पण पत्र

पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परमं तपः
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः

जिनकी असीम कृपाके कारण ही मेरे
हृदयमें इतिहास-प्रेमका अंकुर जमा,
उन्हीं परमपूज्य पिताजी श्री
६ जयकृष्णदासजी के श्री
चरणोंमें यह ग्रंथरूपी
भेंट अत्यंत श्रद्धा-
पूर्वक रखी गई।



मदनगोपाल



प्राक्कथन

वर्षोंकी बात है, जब पुरातत्व-विभागकी एक रिपोर्ट पढ़ते समय बतूतासे मेरा सर्व-प्रथम परिचय हुआ था। उसी समय से मैं इसकी खोजमें था; परन्तु कुछ तो आलस्यवश और कुछ अन्य कार्योंमें लग जानेके कारण, फिर बहुत दिन तक मैं इस पुस्तकको न देख सका। अब कोई तीन वर्ष हुए, यह पुस्तक भाग्य-वश मुझको मिल गई और इसमें तत्कालीन भारतीय-समाजका सुचारु-चित्र अंकित देख मैंने हिन्दी-भाषा-भाषियोंको भी इसका रसास्वादन कराना उचित समझा।

भारतीय इतिहासमें यह पुस्तक अत्यन्त महत्वकी समझी जाती है। सन् १८०९ से—जब इसका सर्व-प्रथम परिचय फ्रैंच-विद्वानों द्वारा सभ्य संसारको हुआ था—आजतक, जर्मन, अंग्रेजी आदि अन्य विदेशी भाषाओंमें इस पुस्तकके समूचे, अथवा स्थलविशेषोंके बहुतसे अनुवाद होनेपर भी हमारे देशमें उर्दूको छोड़ अन्य किसी भाषामें इसका अनुवाद नहीं है। इस बड़ी कमीकी पूर्ति करनेके विचारसे ही मैंने यहाँ केवल भारत-भ्रमण देनेका प्रयत्न किया है।

पुस्तककी मूल भाषा अरबीसे अनभिज्ञ होनेके कारण, इस पुस्तकको मैंने अथसे लेकर इतितक अन्य अनुवादोंके आश्रय से ही लिखा है। इस विषयमें श्रीमुहम्मद हुसैन तथा श्रीमुहम्मद हयात-उल-हसन महोदयकी उर्दू-कृतियोंसे और गिब्ज महोदयके

'अंग्रेजी-अनुवाद'से यथेष्ट सहायता ली गई है। आवश्यकतानुसार स्थान स्थान पर नोटोंको लाभदायक बनानेके विचारसे कनिंगहमके 'प्राचीन भारतका भूगोल' (नवीन संस्करण) नामक ग्रंथसे भी कई बातें उद्धृत की गई हैं। इस प्रकार पुस्तकको उपादेय तथा रोचक बनानेके लिये मैंने यथासंभव कोई बात उठा नहीं रखी। अपने इस प्रयासमें मैं कहांतक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय पाठकोंपर निर्भर है।

नगरों इत्यादिके सम्बन्धमें दिये हुए नोटोंमें मुझसे भूल होना संभव है। यदि विज्ञ पाठकोंने इस सम्बन्धमें मेरी कुछ सहायता की तो अगली आवृत्तिमें त्रुटियाँ सुधार दी जावेंगी।

जहाँ तहाँ अरबी तथा फारसी अंशोंका अनुवाद कर देनेके कारण, श्रीजहीर आलम चिश्ती बी. ए. एल. एल. बी., श्रीमुहम्मद राशिद एम. ए. एल. एल. बी., श्रीबदरउद्दीन, बी. ए. एल. एल. बी, और श्रीरघुनंदन किशोर बी. ए. एल. एल. बी. का, मैं अत्यन्त ही अनुगृहीत हूँ। इंडियन म्यूज़ियमके क्यूरेटर की कृपासे मु० तुग़लक़का चित्र तथा प्रिय मित्र बाबू लक्ष्मीनारायणजी (वकील) की कृपासे पुस्तकके अन्य चित्र उपलब्ध हुए हैं, एवं चि० कृष्ण जीवन और श्री विनायकराव (गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ) ने अत्यन्त परिश्रमसे भारतका मानचित्र (गिब्जके अनुसार) तैयार किया, अतः ये सब धन्यवादके पात्र हैं। अन्तमें मैं प्रकाशक महोदयोंको भी धन्यवाद देना आवश्यक समझता हूँ, क्योंकि उन्हींने पुस्तकको प्रकाशित कर मेरा परिश्रम सार्थक बनाया है।

मुरादाबाद,
आश्विन. शुक्ला २. संवत् १९८८ } मदनगोपाल

विषय-सूची

चित्रोंकी सूची

भूमिका

भारतमें मौलाना बदरुद्दीन तथा अन्य पूर्वीय देशोंमें शैख़ शमसुद्दीन कहलानेवाले, इतिहास-प्रसिद्ध यात्री 'इब्न-बतूता' का वास्तविक नाम 'अबू अब्दुल्ला मुहम्मद' था। 'इब्न-बतूता' तो इसके कुलका नाम था, परंतु भाग्यसे अथवा अभाग्यसे आगे चलकर संसारमें यही नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ। यह जातिका शैख़ था। इसका वंश संसारके इतिहासमें, सर्वप्रथम, लाइरैनेसिया तथा मिश्रके सीमान्त प्रदेशोंमें, पर्य्यटक-जातिके रूपमें प्रकट होनेवाली लवातकी वर्वर जातिके अन्तर्गत था। परंतु इसके पुरखा कई पीढ़ियोंसे मोराको प्रदेशके टैंजियर नामक स्थानमें बस गये थे, और इसी नगरमें "शैख़ अब्दुल्ला" बिन (पुत्र) मुहम्मद बिन (पुत्र) इब्राहीमके यहाँ २४ फ़रवरी १३०४ ई० को इसका जन्म हुआ।

इसके पिता क्या करते थे? इसका बाल्यकाल किस प्रकार बीता? इसने कहाँ तक शिक्षा पायी तथा किन किन विषयोंका अध्ययन किया? इन प्रश्नोंके संबंधमें इसने कुछ भी नहीं लिखा है। केवल दिल्ली-सम्राट्‌के संमुख स्वयं इसीके कहे हुए वाक्यके आधारपर कि "हमारे घरानेमें तो केवल क़ाज़ीका ही काम किया जाता है" और इसके अतिरिक्त यात्रा-विवरणमें दिये हुए इस कथनके कारण कि 'इसका एक बंधु स्पेन देशके रौन्दा नामक नगरमें क़ाज़ी था', ऐसा अनुमान किया जाता है कि स्वदेशमें इसकी गणना मध्यम-

वर्गीय उच्च कुलोंमें की जाती होगी; और इसने कुलोचित साहित्य एवं धर्म-ग्रंथोंका भी अवश्य ही अध्ययन किया होगा। इस पुस्तकमें दी हुई इसकी अरबी भाषाकी कविता तथा अन्य कवियोंके यत्र तत्र उद्धृत एक-दो चरणोंसे प्रतीत होता है कि यह प्रकांड पंडित न था। परंतु इस संसार-यात्रामें स्थान स्थानपर मुसलमान सम्प्रदायकें धर्माचार्यों तथा साधु-महात्माओंके दर्शन करनेकी उत्कट अभिलाषासे इसकी धार्मिक प्रवृत्तियोंका भली भाँति परिचय मिल जाता है। इसी धर्मावेशके कारण इस नवयुवकने मातृ-भूमि तथा माता-पिता-का मोह छोड़ कर २२ वर्षकी (जो सौर वर्षके अनुसार केवल २१ वर्ष ४ मास होती थी) थोड़ीसी अवस्थामें ही, मक्का आदि सुदूर पवित्र स्थानोंकी यात्रा करनेकी ठान ली और ७२५ हिजरीमें रजब मासकी दूसरी तिथि (१४ जून १३२५) को बृहस्पति वारके दिन यत्किंचित् धन लेकर ही संतुष्ट हो, उछाह भरे हुए चित्तसे, माता-पिताको रोते हुए छोड़कर, बिना किसी यात्री—निर्धन साधु तथा धनी व्यापारी—का साथ हुए, अकेला ही, सुदूर मक्का और मदीनाकी पवित्र यात्रा करने चल दिया।

स्पेन और मोराक्कोसे लेकर सुदूर चीन पर्यंत—उत्तरीय अफ्रीक़ा तथा समस्त पूर्वीय एवं मध्य एशियाके प्रदेशोंने इस समय तक मुसलमान धर्म अंगीकार कर लिया था; केवल लंका और भारत ही इसकें अपवाद थे, परन्तु यहाँ (अर्थात् भारतमें) भी अधिकांश भागमें मुसलमान ही स्वच्छन्द शासक बने हुए थे। मक्का तथा मदीनाकी अपने जीवनमें कमसे कम एक वार यात्रा करना प्रत्येक सामर्थ्य-वाले मुसलानका धर्म होनेके कारण इन सुदूरस्थ देशोंकी

जनताको देशाटन करनेके लिए एक तो वैसे ही धार्मिक प्रोत्साहन मिलता था, दूसरे, उस समय, धनी तथा निर्धन, प्रत्येक वर्गके मुसलमानोंको धार्मिक कृत्यमें सहायता देनेके लिए देश देशमें जुदी जुदी संस्थाएँ बनी हुई थीं, जो यात्रियों-के लिए प्रत्येक पड़ावपर अतिथिशाला, सराय तथा मठ आदिमें भोजनादिका, धर्मात्माओं द्वारा दिये हुए दान-द्रव्यसे, उचित प्रबन्ध करती थीं; और कहीं कहींपर तो चोर-डाकुओं इत्यादिसे रक्षा करनेके लिए साधु-संतोंके साथ सशस्त्र सैनिक तक कर दिये जाते थे। इन सब सुविधाओंके कारण, तत्कालीन मुसलमान जनता 'एक पंथ दो काज' वाली कहावतको मानो चरितार्थ करनेके लिए ही पुण्यके साथ साथ देशाटनका आनंद भी लूटती थी, और प्रत्येक पड़ावपर उत्तरोत्तर बढ़नेवाले यात्रियोंके समूहके समूह देश देशसे एकत्र होकर पवित्र मक्का और मदीनाकी यात्रा करने चल देते थे।

इस धार्मिक हेतुके अतिरिक्त, मध्ययुगमें एशिया, अफ्रीक़ा तथा यूरोपके मध्य स्थल-मार्ग द्वारा व्यापार होनेके कारण, तत्कालीन संसारके राजमार्गोंपर कुछ एक सुविधाओंके साथ चहलपहल भी बनी रहती थी और सभ्य संसारके अधिक भागपर मुसलमानोंका आधिपत्य होनेके कारण देशों-का समस्त व्यापार भी प्रायः मुसलमान व्यापारियोंके ही हाथोंमें था। वर्त्तमान कालकी अपेक्षा यह सब सुविधाएँ नगण्य होने पर भी, उस समयकी परिस्थिति एवं अराजकता-को देखते हुए कहना पड़ता है कि इन व्यापारियों द्वारा भी अकेले दुकेले मुसलमान यात्रियोंको धार्मिक भ्रातृ-भावके कारण, अवश्य ही यथेष्ट सहायता मिलती होगी।

हाँ, तो इन्हीं मध्ययुगीय राजमार्गों द्वारा बतूताने भी अपनी प्रसिद्ध ऐतिहासिक यात्रा प्रारंभ की थी। घरसे कुछ दूर पर्य्यंत अकेले चलनेके पश्चात् तिलिमसान (तैलेमसैन) नामक नगरसे कुछ ही आगे इसका और ट्यूनिसके दो राजदूतोंका साथ होगया, परंतु यह स्थायी न था और कुछ ही पड़ाव चलने पर उनमेंसे एकका देहान्त हो जानेके कारण, यह ट्यूनिसके व्यापारियोंके साथ हो लिया और फिर अलजीरिया, ट्यूनिस होते हुए समुद्रके किनारे किनारे सूसा और स्फाक्स आदि नगरोंकी राहसे ५ अप्रैल १३२६ ई० को एलैक्ज़ैंड्रिया' जा पहुँचा। [redacted]

इस नगरमें आनेसे पहिले बतूताका विचार केवल हज करनेका ही था; परंतु यहाँके प्रसिद्ध साधु बुर्हान-उद्दीन तथा

---

(१) बतूताके कथनानुसार यह नगर उस समय संसारके चार सर्वोत्तम बंदर-स्थानोंमें से था। अन्य तीन बंदरोंमें कोलम (क्विलौन) और कालीकट तो भारतमें थे, तीसरा जैतून चीनमें था। एलैक्ज़ैंड्रिया उस समय एक अत्यंत सुंदर नगर समझा जाता था। इसके चारो ओर पक्की दीवार बनी हुई थी और उसमें चार सुंदर द्वार लगे हुए थे। बतूताके आगमनके समय जहाज़ोंको पथप्रदर्शन करनेके लिए नगरसे तीन मीलकी दूरीपर एक अत्यंत ऊँचा प्रकाशस्तम्भ (लाइट हाउस) भी यहाँ बना हुआ था, जो इसके यात्रासे लौटने तक (७५० हिजरी = १३४९ ई० में) सम्पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था। नगरके बाहर प्रसिद्ध रोमन शासक पौम्पीके स्तूप देखकर बतूताको अत्यंत ही आश्चर्य हुआ था। (कहा जाता है कि यह 'स्मारक' प्राचीन सैरापियम (मिश्रके देवताके मंदिर) के स्थानपर बनाया गया था। स्मरण रखनेकी बात है कि एलैक्ज़ैंड्रिया ही एक ऐसा नगर है जहाँ बतूताके नामसे एक मुहल्लेका नाम देकर इस प्रसिद्ध अरबयात्रीको सम्मानित किया गया है।

महात्मा शैख़उल मुरशिदीके दर्शन करने पर इसके विचार सर्वथा पलट गये। प्रथम साधुने तो इससे भविष्य द्वाणी की थी कि तू बहुत लंबी यात्रा करेगा और मेरे भाईसे चोनमें तेरी मुलाकात भी होगी। दूसरेने इसको एक स्वप्नका आशय समझाते हुए यह कहा था कि मक्काको यात्राके उपरांत 'यमन', ईराक़ और तुर्कोंके देशमें होता हुआ तू भारत पहुँचेगा और वहाँपर वनमें संकट पड़ने पर मेरा भाई दिलशाद तेरी सहायता कर सब दुःख दूर करेगा। संतोंकी वाणीने बतूतापर ऐसा जादूकासा प्रभाव डाला कि भ्रमण करनेकी शुभ आकांक्षाएँ उसके हृदयमें सहसा प्रबुद्ध होगयीं और यदा कदा विपत्ति आ पड़ने, तथा अन्य साधु-महात्माओंके दर्शन करने पर संसारसे विरक्ति उत्पन्न होने पर भी वह सदैव उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। शैख़ोंसे बिदा होकर बतूता हजकी सीधी राह छोड़ क़ाहिरा[१] की ओर चल दिया और

(१) नगरोंकी माता तुल्य यह अत्यंत प्राचीन नगरी संसार-प्रसिद्ध फ़ैराओह (फ़राऊन) उपाधिधारी सम्राटोंकी राजधानी थी। इसके असंख्य सुंदर भवन, तथा हाट-बाटको देखकर बतूता आश्चर्यचकित हो गया। कहते हैं कि बतूताके भ्रमणके समय यहाँपर पखालोंमें ऊंटोंपर पानी लादनेवाले सक्क़ा लगभग बारह हजार थे, गदहे तथा खच्चरवाले मजदूर ३० हजारकी संख्यामें थे और सम्राट् तथा उसकी प्रजाकी ३६००० नावों द्वारा नील नदीमें व्यापार होता था। पाठकों को इस जगहकी जनसंख्याका इन बातोंसे अवश्य ही कुछ आभास हो जायगा। वास्तवमें यह नगर तब अत्यंत ही समृद्धिशाली था। इटलीके यात्री फ्रैस्कोवाल्डीके कथनानुसार, जो १३८४ में यहाँ आया था, महामारी फैलनेके उपरांत भी लगभग एक लाख व्यक्ति नगरमें भीतर गुंजाइश न होनेसे रात्रिको नगरके बाहर सोते थे। बतूताके समयमें यहाँपर उमरको

वहाँसे लौटकर फिर उत्तरीय मिश्रमें होता हुआ दमिश्कके व्यापारियोंके साथ सीरिया और पैलेस्टाइनमें ग़ज़ा, हैब्रोन (हज़रत एब्राहम-इब्राहीम-का नगर), पवित्र जैरुसैलेम[1], टायर, त्रिपोली, एण्टिओक और लताकिया आदि नगरोंकी सैर कर

बनवायी हुई अत्यंत ही प्रसिद्ध मसजिद थी और असंख्य मदरसे वर्तमान थे। इनके अतिरिक्त रोगियोंके लिए अमूल्य औषध आदिसे पूरित एक औषधालय तथा साधु-संतोंके पोषणार्थ मठ भी यहाँके दर्शनीय पदार्थोंमें थे। औषधालयमें एक सहस्र दीनार प्रति दिन व्यय किये जाते थे और मठोंमें विद्वान् साधु-संतों द्वारा पृथक् पृथक् संप्रदायोंकी विधिके अनुसार गुप्त विषयोंकी शिक्षा दी जाती थी।

(१) वह नगर है जहाँ ईसामसीहको सूली (क्रास) पर चढ़ाया गया था। मक्का और मदीनाके पश्चात् यह नगर भी मुसलमानोंकी दृष्टिमें अन्य कारणोंके अतिरिक्त इस हेतुसे पवित्र माना जाता है कि यहींसे अपनी जीवितावस्थामें मुहम्मद साहब—मक्कामें रहते हुए भी—बुर्राक़ नामक घोड़ेपर चढ़कर स्वर्गकी सैर करने गये थे। वह स्थान, जहाँसे यह यात्रा हुई थी, मसजिद 'अल अक़स' के नामसे प्रसिद्ध है। बतूताने इसकी कारीगरीकी बड़ी प्रशंसा की है। वह कहता है कि उसके चार द्वार हैं और चारोंकी सीढ़ियां तथा अंदरका फर्श सब स्फटिकका बना हुआ है। अधिक भागमें सुवर्ण लगा होनेके कारण दृष्टि चौंधिया जाती है। इसी मसजिदके गुंबदके नीचे मध्यमें रखी हुई उस शिलाके भी बतूताने दर्शन किये थे- जिसपर चढ़कर हज़रत स्वर्गको गये थे। इसके अतिरिक्त ईसाकी माता मेरीकी क़ब्र तथा स्वयं उनके प्राणान्त होनेका स्थान भी दर्शनीय समझा जाता है। ईसाई यात्रियोंको नगर-प्रवेश करने पर मुसलमान शासकोंको कर देना पड़ता था। १९१४ के महासमरके उपरांत संधि होजाने पर यह नगर अंग्रेजोंके अधीन होगया है और यहाँपर यहूदी बसाये जा रहे हैं।

और साधु-महात्माओंके दर्शनसे तृप्त हो ७२६ हिजरीमें रमज़ान मासकी ९ वीं तिथिको (९ वीं अगस्त १३२६) वृहस्पतिवारके दिन दमिश्क [१] जा पहुंचा।

(१) मध्ययुगमें 'पूर्वकी रानी' कहलानेवाला यह नगर वास्तवमें अद्वितीय था। बतूताके कथनानुसार, नगरकी उस शोभाका वर्णन करना लेखनीके बसकी बात न थी। यहाँपर उमैय्या वंशके प्रसिद्ध ख़लीफ़ा वलीद प्रथम (७०५–७१५ हिजरी) की बनवायी हुई मसजिद भी वास्तवमें अद्वितीय थी। मुसलमानोंके आगमनसे पूर्व इस स्थानपर गिरजा बना हुआ था; फिर मुसलमान आक्रमणकारियोंने दो ओरसे आक्रमण कर इस गिरजेके आधे आधे भागपर क़ब्जा जा जमाया, परन्तु उनका एक सेनापति तलवारके बलसे घुसा था और दूसरा शांतिके साथ, अतएव उस समय आधे भाग पर ही अधिकार करना उचित समझा गया और वहाँपर मसजिद बनवा दी गयी। तदनंतर जब स्थानकी कमीके कारण मसजिद बढ़वानेका उपक्रम हुआ तो ईसाइयोंके रुपया न लेने पर दूसरा आधा भाग भी बलपूर्वक छीन लिया गया और ऐसी सुन्दर एवं भव्य मसजिद बनवायी गयी कि संसारमें इसकी उपमा मिलनी कठिन थी। इसके चार द्वारके चारो ओर हीरा-माणिक आदि बहूमूल्य वस्तुओंकी दूकानें चौपड़के बाज़ारोंमें बनी हुई थीं और वहाँपर स्फटिकके बने हुए कुँडोंमें फ़व्वारे चला करते थे। संसार-प्रसिद्ध जल-घटिका भी, जो दिन-रात समय बताया करती थी, इसी मसजिदमें लगी हुई थी और बतूताने भी स्वयं उसको देखा था। कुरान शरीफ़के दिग्गज पंडित भी तब यहींपर रहकर सहस्रों विद्यार्थियोंको धर्मशास्त्र तथा अन्य विषयोंकी शिक्षा दे देकर मुसलिम-संसारमें भेजते थे। "मूसाके पद-चिन्ह" भी नगरके दर्शनीय स्थानोंमें हैं। बतूताके समय यहाँपर मठ तथा अन्य धार्मिक संस्थाएँ भी असंख्य थीं और उनसे भाँति भाँतिकी सहायता मुसलमानोंको मिलती थी—यदि कोई संस्था मक्काकी यात्राका व्यय देती

कुछ दिन पर्य्यन्त यहाँकी सैर कर वतूता शव्वाल मासकी प्रथम तिथिको (१ सितंबर १३२६ ई०) हजाज़ जानेवाले यात्रियोंकें समूहकें साथ वसरा होता हुआ पहले मदीने पहुँचा और हजरत तथा उनके साथी अबू बक्र और उमरकी कब्रों-के दर्शन कर चार दिनके बाद राहके अन्य पवित्र स्थानोंको देखता हुआ मक्का गया और पवित्र 'काबा' के दर्शन किये। इसी नगरके एक प्रसिद्ध मठमें अपने पिताके मित्र एक अत्यंत विद्वान् साधुसे बतूताकी मुलाक़ात हुई। नगरके अन्य साधु-संतों तथा विद्वानोंके दर्शन करनेके उपरांत वह १७ नवंबरको यहाँसे ईराकी यात्रियोंके साथ बग़दादकी ओर चल दिया, और एक पुरुषके परामर्शसे ईराक़-उल-अज़्म और ईराक-उल-अरबकी सैर करनेकी इच्छासे नज़फ कर्बला, इसफ़हान तथा शीराज़ (जहाँ शैख़ सादीकी कब्र है) देखता हुआ बग़दाद आया। वहाँके सुलतानका आतिथ्य स्वीकार कर कुछ दिनका विश्राम लेनेके बाद वह पुनः मक्काकी ओर गया; राहमें कूफ़ा नामक स्थानसे ही उसको ऐसा अतिसार हुआ कि मक्का तक दशा न सुधरी, परन्तु उस वीरने फिर भी हिम्मत न हारी और रुग्णावस्थामें ही काबाकी परिक्रमा कर पुनः मदीना पहुँचा। वहाँ जाकर चंगा होने पर वह फिर मक्काको लौटा।

थी तो कोई निर्धनोंकी बालिकाओंके विवाहका समस्त व्यय ही अपने पाससे उठाती थी; यहाँ तक कि कोई कोई तो स्वामीकी क्रोधाग्निमें पड़नेसे दासको बचानेके लिए उसके हाथसे कोई चीज़ टूट जाने पर वैसी ही नयी वस्तु स्वयं मोल लेकर स्वामीको दे देती थीं। अत्यंत वैभवसंपन्न होनेके कारण नगर-निवासी एकसे एक बढ़कर मकान, मसजिद तथा मठ और समाधि बनवाते थे और विदेशी यात्रियोंका खूब सत्कार करते थे।

इसके पश्चात् अगले तीन वर्ष पर्य्यंत मक्कामें ही रहकर बतूताने धुरंधर पंडितोंसे दर्शन और अध्यात्म-विद्याकी शिक्षा-ग्रहण की। गिब्ज़ महोदयके कथनानुसार यह भी संभव है कि भारत-सम्राट्की विदेशियोंके प्रति दानशीलताका समाचार सुन, वहाँपर अच्छा पद पानेकी इच्छासे ही इसने इस प्रकार इसलामी धर्म-तत्वोंके समझनेका कष्ट-साध्य प्रयत्न किया हो।

जो हो, धर्मज्ञान प्राप्त करनेके अनंतर, बहुतसे अनुयायियोंके साथ बतूताने पूर्व-अफ्रीकाकी यात्रा की, और वहाँसे लौट कर पुनः एक बार मक्काके दर्शन कर भारत जानेके निश्चयसे जद्दाको गया भी परन्तु वहाँपर भारत जानेवाला जहाज़ उस समय न होनेके कारण इसने विवश हो स्थल-मार्ग द्वारा ही जानेकी ठहरायी, और बहुतसे घोड़े आदि ठाठके सामानसे सुसज्जित होकर (जिनकी संख्या और फ़िहरिस्त उसने जनताके चित्तमें अविश्वास उत्पन्न होनेके भयसे नहीं बतायी) अत्यंत धर्मवृद्ध एवं परिभ्रमणकारी सुसंभ्रम व्यक्तिकी हैसियतसे एशिया माइनरके धार्मिक संघोंकी अभ्यर्थना, और कृष्ण-सागरके मंगोल-जातीय 'ख़ानों' का आतिथ्य स्वीकार करता हुआ यह सुप्रसिद्ध अफ़रीकन (अफ्रीका-निवासी) सुअवसर पा तद्देशीय रानीके साथ कुस्तुनतुनियाँ देख, कास्पियन-समुद्र, मध्य एशिया तथा खुरासानकी उपत्यकाकी राह नैशापुर देख, हिन्दूकुश (जो बतूताके कथनानुसार शीताधिक्य-के कारण हिन्दुओंकी मृत्यु हो जानेसे इस नामसे प्रसिद्ध हुआ था) और हिरात पार कर काबुल गया, और वहाँसे क़रमाश होता हुआ कुर्रम घाटीमें होकर ७३४ हि० में मुहर्रम उल हरामकी पहली तारीखको सिन्धुनदके किनारे भारतकी सीमापर आगया।

कहना न होगा कि भारत सम्राट्ने भी इसका आशातीत आदर-सत्कार किया, और दिल्लीमें क़ाज़ीके पदपर बारह सौ दीनारपर प्रतिष्ठित कर भूत-पूर्व सम्राट् कुतुब-उद्दीन खिलजी-के 'धर्मादाय' का प्रबन्ध भी इसके सुपुर्द कर दिया। तत्पश्चात् लगभग नौ वर्ष तक 'बतूता' दिल्लीमें ही रहा: और हम उसको कभी तो राजकार्य-सम्पादन करते हुए और कभी सम्राट्के साथ प्रांत प्रांतमें घूमते हुए देखते हैं। यह सब कुछ होने पर भी भारतके इतिहासमें इसकी कोई विशेष प्रसिद्धि न हुई और अन्य राज-सेवकोंके समूहमें इसका अस्तित्व पूर्णतया विलीन हो गया। परंतु इस सुदीर्घ कालमें यह विचित्र पुरुष, यहाँकी प्रत्येक राजकीय घटना और क्षुद्रातिक्षुद्र लौकिक व्यवहारको अवसर पाते ही अत्यंत ध्यान-पूर्वक अपने स्मृति-क्षेत्रमें संचित कर रहा था और शायद अपने रोज़नामचेमें भी लिखता जाता था। भारतसे लौटने पर यह सब सामग्री मध्यकालीन राज-दर्बारके वर्णनमें इस प्रकार व्यवहृत की गयी कि उसको पढ़कर हम चकितसे रह जाते हैं। भारतके समृद्धिशाली सम्राट् तथा उनके शानदार दर्बारी उस समय यह क्या जानते थे कि छः शताब्दी पश्चात् संसारमें उनका यश रूपी सुवर्ण मुक्तहस्त हो द्रव्य लुटानेवाले इस नगण्य, पश्चिमीय क़ाज़ीके ही स्मृति-नोटोंकी कसौटीपर कसा जायगा।

फिर अंतमें, दिल्लीकी क्षणमें विनष्ट होनेवाली, अस्थायी संपदाकी भाँति अन्य पुरुषोंकी तरह बतूतापर भी, सम्राट्की कोप-दृष्टि हुई, और उसके कारण शायद इसके जीवनका ही अंत हो जाता, परंतु भाग्यने इसको यहाँ भी सहारा ही दिया; और संसारसे विरक्त हो यतियोंकी भाँति

जीवन व्यतीत करना प्रारंभ कर देनेके कारण ही शायद सम्राट्ने इसकी प्रगाढ़ राज-भक्ति और ईमानदारीपर विश्वास कर पुनः इसपर दया-दृष्टि की। जो हो, अनुग्रह होनेके कुछ काल पश्चात् ही मुहम्मद तुग़लकने इसको अत्यंत सम्मान-पूर्वक अपना राजदूत बना उपहार एवं रत्नादिक अमूल्य धन देकर दलबल सहित चीन-सम्राट्की सेवामें भेजा और तद-नुसार नित्य नवीन देशोंको देखनेके लिए उत्सुक रहनेवाले इस विचित्र पुरुषने ७४३ हिजरीके सफ़र मासमें चीन देश जानेके लिए दिल्लीसे प्रस्थान कर दिया। अलीगढ़, कन्नौज, चंदेरी, दौलताबाद, और खम्बातकी सैर कर जहाज़में सवार हो तटस्थ नगरोंकी सैर करता हुआ कालीकट पहुँचा; परंतु वहाँसे प्रस्थान करनेके समय सम्राट्का समस्त अमूल्य उपहार और इसके अनुयायी अन्य राजसेवक भी जहाज़ टूट जानेके कारण विनष्ट हो गये, केवल शरीरपर धारण किए हुए वस्त्र और 'जां नमाज़' ही 'शैख़' के पास शेष रह गयी।

इस बेढब दशामें दिल्लीको लौटने पर सम्राट्का पुनः कोपभाजन हो मृत्युके मुखमें जानेकी आशंका होनेके कारण, बतूताने भारतीय-समुद्र-तटके नगरोंमें कुछ कालतक इधर उधर घूमने फिरनेके पश्चात् मालद्वीप जाना ही निश्चय किया। वहाँ पहुँच कर क़ाज़ीके पदपर प्रतिष्ठित हो इसने प्रेमोद्यानकी सैर कर १६ मास पर्यंत खूबही आनन्द लूटा, परंतु धार्मिक आदेशोंपर अधिक बल देनेके कारण जनताका चित्त क्षुब्ध होता देखकर अंतमें वहाँसे भी यह चलनेके लिए विवश हो गया और चित्तमें दबी हुई वही पुरानी धार्मिक प्रवृत्ति पुनः प्रबल हो जानेके कारण यह सरनदीप

(स्वर्ण-द्वीप-[1]लंका) के तुंग पर्वत-शिखरपर बने हुए 'हज़रत आदमके पद-चिन्होंको देखनेके लिए व्याकुल हो उठा। फिर वहाँकी यात्रा समाप्त कर भारतके कारोमंडल तटके कुछ प्रसिद्ध नगरोंको देख चीन जानेका निश्चय कर पुनः माल-द्वीप चला गया और वहाँसे ४३ दिनकी यात्राके पश्चात् बंगालमें जाकर प्रसिद्ध महात्मा शैख़ जज्ञाउद्दीन तबरेज़ीके (आसाम प्रांतमें) दर्शन कर मुसलमानोंके एक जहाज़में बैठ अराकान, सुमात्रा, जावा (मूलजावा—यहांपर भी इस समय हिन्दू राजा राज्य करते थे) की राह—जिसका बहुत प्रयत्न करने पर भी बतूताके टीकाकार अभी तक ठीक ठीक निर्णय नहीं कर सके हैं—चीनके जैतूम नामक बंदर-स्थानमें (इसका वास्तविक नाम शायद कुछ और ही था)—जहाँके

(१) लंकामें इस समय हिन्दू राजा राज्य करते थे, परतु हज़रत आदम और हव्वाके पदचिन्होंके कारण मुसलमान यात्री भी यहाँ अधिक संख्यामें आते रहते थे। बतूताके समयमें लंका तथा चीन दोनोंही देशोंमें शव-दाह किया जाता था। यहाँपर देवनदेरा नामक एक स्थानमें विष्णुका एक भव्य मंदिर भी था जिसको पुर्तगाल-निवासियोंने १५८७ में पूर्णतः विध्वस्तकर डाला। बतूताके कथनानुसार भगवान् विष्णुकी मनुष्याकार मूर्ति सुवर्णकी बनी हुई थी और नेत्रोंके स्थानमें उसमें नीलम जड़े हुए थे। एक सहस्र ब्राह्मण मूर्त्तिकी पूजा करनेके लिए नियत थे और लगभग ५०० स्त्रियां उसके संमुख दिनरात भजन-कीर्तन करती रहती थीं। नगरकी समस्त आय इसी मंदिरको अर्पित कर दी जाती थी, और प्रत्येक यात्रीको यहाँ भोजन इत्यादि मिलता था। लंकामें तब गो-बध न होता था और किसीके ऐसा करने पर बतूताके कथनानुसार उस पापीका या तो उसी प्रकार बध कर दिया जाता था या उसको गौ के चर्मसे लपेटकर अग्निमें भस्म कर दिया जाता था।

कपड़ेके नामपर साटन नामक कपड़ा अब बनने लगा है—पहुँच गया।

इस यात्रामें बतूताने अपनेको सर्वत्र ही दिल्ली-सम्राट्का राजदूत प्रसिद्ध किया था और कितने आश्चर्यकी बात है कि पाससें कोई उपहार तथा अन्य प्रमाण-पत्र न होते हुए भी किसीके चित्तमें इसकी ओरसे तनिकसा भी संदेह न हुआ। यही नहीं प्रत्युत धार्मिक तत्वोंकी जानकारी होनेके कारण, समस्त ज्ञात संसारका परिभ्रमण करनेवाले इस विचित्र पुरुष-का सर्वत्र आदर व सम्मान भी किया गया और राजदूत होने-के कारण, प्रत्येक नगरमें राज्यकी ओरसे इसकी खूब अभ्य-र्थना भी की गयी, परन्तु वहाँकी राजधानी 'खान बालक'—(पैकिन) में जाने पर, सम्राट्की अनुपस्थितिके कारण यह उनके दर्शन न कर सका और वहाँसे लौट जैतूनसे जहाज़ द्वारा सुमात्रा आदि होता हुआ पुनः मालाबारमें आगया, परंतु दिल्लीके मायावी, विश्वासघातक और असार वैभवका दोबारा उपभोग करनेकी इच्छा न होनेके कारण बतूता अब पश्चिमकी ओर ही चल दिया और १३४८ ई० में सुप्रसिद्ध महामारीके प्रारंभ होने पर हम उसको शीराज़, अस्फहान, बसरा तथा बग़दादकी सैर करनेके उपरांत सीरियामें घूमते देखते हैं। भविष्यके लिए कोई कार्यक्रम स्थिर न होने पर भी इसने अब अंतिम बार मक्काकी एक और यात्रा की और वहाँसे किसी अज्ञात कारणवश, जो विवरणमें स्पष्ट-तया नहीं लिखा गया है, मोराकोके अत्यंत वैभवशाली सुल-तानोंकी सेवामें फैज़ (फास) नगरमें ७५० हि० में जा उप-स्थित हुआ। हाँ, एक वर्णन योग्य बात जो रह गयी है वह यह है कि स्वदेश पहुँचनेसे प्रथम इसको यह सूचना मिल

चुकी थी कि इसके पिताका पंद्रह वर्ष तथा माताका लोट आनेसे कुछ ही दिन पहिले स्वर्गवास होगया था।

समस्त मुसलिम जगत्में केवल दो देश ही अब और शेष रह गये थे जिनको इसने न देखा था। वह थे 'अन्दे लूसिया' और नाइजर नदीपर बसा हुआ 'नीग्रो-देश'। उनके दर्शन करनेकी लालसाको भला ऐसा पुरुष किस प्रकार संवरण कर सकता था। तीन वर्ष पर्य्यन्त उनकी भी इसने खूब सैर की और फिर ७५५ हि० में वहाँसे लौट कर घर आया। लगभग ३० वर्षकी इस लंबी यात्राके पश्चात् स्वदेश आने पर जब इसने देश देशका हाल बताना प्रारंभ किया तो जनसाधारणने उनपर अविश्वास सा किया जैसा कि समसामयिक इतिहासकारोंके लेखोंसे प्रकट होता है; परन्तु सुलतान अबू इनाँके प्रधान वज़ीर द्वारा खूब समर्थन होनेके कारण, सेक्रेटरी इब्न-जज़ीको आदेश दिया गया कि वह बतूताके, स्मरण-शक्ति द्वारा-समस्त-यात्रा-विवरण बताने पर लिपिबद्ध करता जाय। सम्राट्के इस अनुग्रहके कारण ही महान् अरब यात्रीका यह विचित्र एवं सुरम्य यात्राविवरण वर्त्तमान रूपमें इस समय उपलब्ध हो सका है। सुलतानने फिर इसको सम्मानके साथ काज़ीके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया और अंतमें ७३ वर्षकी अवस्थामें बतूताने (१३७७-७८ ई० में) स्वदेशमें ही अत्यंत सुखसे प्राण त्यागे।

मध्य कालीन मुसलमानोंके समस्त राज्यों और विधर्मियोंके देश देशकी इस प्रकार सैर करनेवाला, सबसे प्रथम और अंतिम यात्री बतूता ही था। श्री यूल महोदयके अनुमानसे इसकी यात्राका विस्तार न्यूनातिनून हिसाबसे ७५००० मील होता है। उस भयानक समयमें—जिसको हम अब अन्धकार

युग कह कर पुकारते हैं—इतनी सुदीर्घ यात्रा करना अत्यन्त ही दुःसाध्य कार्य था और वास्तवमें स्टीम एंजिनके आविष्कार-से पहिले इससे लंबी तो क्या, इतनी यात्रा करनेवाला भी कोई अन्य पुरुष समस्त मानव-इतिहासमें दृष्टिगोचर नहीं होता। इस यात्राका ध्येय प्रारंभमें धार्मिक होने पर भी वास्तवमें बहुत करके मनोरंजन ही था; इतिहास लिखने अथवा उसकी सामग्री एकत्र करनेकी इच्छासे बतूताने यह कष्ट स्वीकार नहीं किया था। बहुत संभव है कि स्थान स्थानके मनोहर दृश्यों और महत्वपूर्ण तथा उपयोगी बातोंके नोट उसने उसी समय ले लिये हों परन्तु यात्रा-विवरणमें केवल एक बार बुख़ारा नगरमें प्रसिद्ध विद्वानोंको समाधि-पर लगे हुए शिला-लेखोंकी नकलें उतारनेका ही उल्लेख आता है और फिर यह सामग्री भी भारतीय समुद्री डाकुओंने उससे छीन ली थी; इसके इस प्रकार नष्ट हो जाने पर फिर यदि मोराको सुलतान अपने अनुग्रहसे यह समस्त यात्रा-विवरण लेखबद्ध न कराते तो समस्त संसार नहीं तो कमसे कम भारतवासी अवश्य इस अमूल्य सामग्रीसे सदाके लिए वंचित हो जाते। फिर इस देशकी इतिहास रूपी शृंखलाकी इस कड़ीका पुनः ठीक ठीक बनाना असंभव नहीं तो दुःसाध्य अवश्य हो जाता।

यह ठीक है कि यात्राकी समाप्ति पर केवल स्मृतिसे ही इस विवरणकी प्रत्येक घटना लिपिबद्ध करानेके कारण, इसमें अशुद्धियाँ भी हो गयी हैं। कहीं पर यदि नगरोंके क्रम उलट गये हैं या उनके नामोच्चार भ्रष्ट रूपसे लिख दिये गये हैं तो कहीं दृश्योंके वर्णनमें भी भ्रम सा हुआ दीखता है (उदाहरणार्थ अबोहरको ही मुलतान और पाकपट्टनके बीच-

में लिख दिया गया है परन्तु वह वास्तवमें पाक-पट्टन और दिल्लीके बीचमें है; और कुतुब मीनारकी सीढ़ियाँ इतनी चौड़ी बतायी हैं कि हाथी चढ़ जाय, जो वास्तवमें यथार्थ नहीं है) इसी प्रकार प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओंमें भी—उनके विश्वस्त सूत्रपर अवलंबित होते हुए भी, जनश्रुतिके आधार-पर लिखी जानेके कारण, त्रुटियाँ रह गयी हैं। और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। बड़े बड़े ऐतिहासिक ग्रंथोंतकमें कभी कभी ऐसा हो जाता है, परन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि असंख्य नगरों तथा पुरुषोंके नामोंका उल्लेख होने पर भी इस वृहत्कथामें अशुद्धियोंकी मात्रा इतनी न्यून क्यों है। इसमें वर्णित कथाको अन्य समसामयिक तथा प्रामाणिक ग्रन्थोंसे मिलान करने पर सभ्य संसारने इस वृत्तांतको प्रधान रूपसे ठीक ही पाया। और प्रत्येक घटना तथा विवरणको छानबीन करनेके पश्चात् सत्य समझ कर शुद्ध मतिसे उल्लेख करनेके कारण (जो गुण मध्यकालीन लेखकोंमें कुछ कम दृष्टिगोचर होता है) वर्त्तमान कालीन विद्वान् बतूताको आदरको दृष्टिसे देखते हैं।

बतूताके आगमनके समय दिल्लीमें तुग़लक़ वंशीय सम्राट् इतिहास-प्रसिद्ध मुहम्मद तुग़लक़का राज्य था। सिंधुनदसे लेकर पूर्वमें बङ्गाल पर्य्यंत, और हिमाचलसे लेकर दक्षिणमें कर्नाटक (कारोमंडलतट) पर्य्यंत, काश्मीर, पूर्व आसाम तथा मदरास प्रेसीडेंसीके कुछ भागोंको छोड़कर प्रायः समस्त आधुनिक भारतवर्ष उस समय इसी सम्राट्की अधीनतामें था। विदेशोंसे आये हुए मुसलमानोंको अत्यंत प्रेम और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखनेके कारण सम्राट्ने बतूतापर भी अनु-ग्रह कर उसको दिल्लीमें क़ाज़ीके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया।

इस प्रकार लगभग नौ वर्ष पर्य्यंत राज-सेवकके रूपमें रह कर, यहाँके प्राचीन मुसलमान-राजवंश, तत्कालीन सम्राट्, राज-दर्बार, शासन-पद्धति, प्रसिद्ध घटनाओं, व्यापार, और विविध नगरों तथा प्रजाजनके संबंधमें जो कुछ इस मोराको-निवासी-ने देखा और सुना, उसका यह विस्तृत वर्णन यथेष्ट रोचक होनेके साथ साथ अत्यन्त महत्वपूर्ण भी है।

ईसाकी चौदहवीं शताब्दीके भारतकी वास्तविक दशा—और उसमें भी मुहम्मद तुग़लककी शासनप्रणालीको, जो प्रधान रूपसे मध्ययुगीय मुसलमान-शासनका उदाहरण स्वरूप थी,—सच्चे रूपमें जाननेके लिए ज़ियाउद्दीन बरनीके तथा पश्चात्-कालीन अन्य इतिहासोंके होते हुए भी बतूताका विवरण ही कई कारणोंसे, जिनका स्पष्ट करना यहाँ व्यर्थ सा प्रतीत होता है, सबसे अधिक माननीय है। इतिहास फिर भी इतिहास ही है। कालविशेषकी घटनाओंका अत्यंत विस्तारसे वर्णन कर देने पर भी, उनमें प्रायः कुछ ऐसे आव-श्यक अंगोंकी पूर्त्ति, शेष रह ही जाती है कि जिससे समस्त वर्णन निर्जीव सा प्रतीत होता है। परन्तु इस कलामें सिद्ध-हस्त होनेके कारण बतूता यहाँ पर भी बाजी मार ले गया है; इसकी वर्णन-शैली कुछ ऐसी मनोमोहक है कि लेखनी रूपी तूलिकासे चित्रित होने पर ऐतिहासिक पात्र सजीव पुरुषों-की भाँति हमारे संमुख चलते फिरते दृष्टिगोचर होने लगते हैं। मोराकोके प्रसिद्ध यात्रीकी यह विशेषता एक अपनी निजी सम्पत्ति सी है।

प्रसिद्ध अँगरेज़ी साहित्यिक श्री वालटर रैलेने अपने शेक्सपियर नामक ग्रन्थमें एक स्थलपर, शेक्सपियरकी वर्त्तमान कालीन आलोचनाओंकी नीलामसे उपमा दी है,

अर्थात् नीलाममें जिस प्रकार सबसे अधिक बोली बोलनेवाला व्यक्ति ही वस्तु पानेका अधिकारी होता है, प्रोफेसर महोदय-की सम्मतिमें ठीक उसी प्रकार शैक्सपियरकी अत्यंत प्रशंसा करनेवाला ग्रन्थ इस समय सर्वोत्तम कहलाता है और उसका लेखक उच्च कोटिका समालोचक। मेरी तुच्छ मतिमें कुछ कुछ यही वातावरण यहाँपर इस समय मध्यकालीन भारत-सम्राटोंके संबंधमें भी होता जा रहा है, और प्रसिद्ध इतिहास-लेखक तक, प्रायः प्रत्येक ही, सम्राट्को यथासंभव सर्वगुण-संपन्न चित्रित करनेका भीष्म प्रयत्न करते दिखाई देते हैं; यदि ऐसी दशामें मुहम्मद तुग़लक सरोखे सम्राट्की संकीर्ण-हृदयतापर ध्यान न दे, उसको 'आदर्शवादी' बता प्रशंसामें पृष्ठ पर पृष्ठ लिख कर, बादशाहकी धर्मांधता तथा पक्षपातको उदारता, धूर्त्तताको निष्पक्षता, दुर्बलताको सहनशीलता, और क्रूरता, धन-लोलुपता तथा मानसिक विकारोंको राजनीतिक-प्रयोगोंके पर्देमें छिपाकर अन्तमें (सम्राट्के) संपूर्ण शासनको असफल होता देख उसको "अभागा" कह कर बचानेका प्रयन्त किया जाय तो आश्चर्य ही क्या है ? परन्तु बतूताका आँखों-देखा वृत्तान्त पढ़ने पर, जो आगे विस्तृत रूपसे दिया गया है, पाठक स्वयं देखेंगे कि इस सम्राट्-के शासन-कालमें, (इसके) पूर्वजोंके शासनकालकी ही तरह, हिन्दुओंपर खूब कठोरता की जाती थी; पर प्रजाको, भारतमें रहते हुए भी राजधर्म स्वीकार न करनेपर 'जज़िया' देना पड़ता था, विना धार्मिक टैक्स दिये देवालय तक न बन सकते थे, सम्राट्का युद्धमें सामना करके प्राण गँवानेवाले राजाओंके पुत्र, पराजित होकर आत्मसमर्पण करने पर, मुसलमान बना लिये जाते थे, और उनकी बहू-बेटियोंको ईदके अवसरपर

दर्बारमें नृत्य एवं गानके लिए विवश करनेके उपरान्त सम्राट्के बंधु-बाँधवों तथा राजपुत्रोंमें लूटकी अन्य वस्तुओंकी भाँति बाँट दिया जाता था।

सम्राट्के धार्मिक विक्षेप तथा मानसिक संकीर्णता या पक्षपातका यहींपर अन्त हुआ न समझिये। व्यापार सम्बन्धी नियमोंमें भी वह इसी तरह लागू होता था—उदाहरणार्थ विदेशसे सामान आने पर मुसलमानोंकी अपेक्षा विधर्मियोंसे अधिक आयात-कर लिया जाता था। ऐसी दशामें हिन्दुओंके राज्यशासनमें भाग न लेनेकी अपेक्षा भाग लेना ही अधिक आश्चर्यकारक होता। वतूताने सुदीर्घ काल पर्य्यंत भारतमें रह कर राज-दर्बारकी आंतरिक दशाके साथ ही साथ नगरों और प्रांतोंमें घूम फिर कर खूब सैर की थी और सभी स्थानोंपर वह सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता था—परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी उसने न तो राज-दर्बारमें और न किसी प्रान्तमें किसी उच्च पदाधिकारी हिन्दूका नाम लिखा है; उसके वर्णनमें सर्वत्र ही मुसलमान और उनमें भी अधिकतया विदेशी ही दृष्टिगोचर होते हैं।

हाँ, धर्म-परिवर्त्तन करने पर उच्च कुलोद्भूत हिन्दुओंको भी यह पद प्राप्त हो जाते थे, और वतूताने 'कवूला' तथा कंपिल-राजपुत्रों इत्यादिके कुछ एक नाम भी ऐसे वताये हैं जो धर्म-परिवर्त्तनके कारण दर्बारमें प्रतिष्ठित पदोंपर नियुक्त किये गये थे। केवल 'राजा रतन (सिंह ?)' नामक एक व्यक्तिके सैवस्तान तथा उसके आस-पासकी भूमिका शासक होनेका अवश्य पता चलता है; परन्तु यह बात वतूताके आगमनसे प्रथम की है और उसने एक तो इसका उल्लेख ही जनश्रुतिके आधारपर किया है, दूसरे यह विवरण इतना

सूक्ष्म है कि उसके आधारपर कोई कल्पना नहीं की जा सकती और न कोई ठीक ठीक निष्कर्ष ही निकाला जा सकता। यह 'रतन' (?) नामक व्यक्ति किसी प्राचीन हिन्दू राजकुलमें उत्पन्न हुआ था अथवा साधारण प्रजावर्गसे ही इस प्रकार उन्नति कर उच्च पदपर पहुँचा था? और सम्राट् द्वारा सम्मानित होनेसे प्रथम यह कहींका शासक था या नहीं, इस सम्बन्धमें बतूता सर्वथा मौन है। जो हो, केवल इस एक अस्पष्ट घटनाके आधारपर ही सम्राट् हिन्दुओंको भी बेरोक टोक उच्चपद देता था—यह सिद्धान्त प्रतिपादन करना कुछ वर्त्तमान कालीन राजाओंके नामोंके आगे उच्च सैनिक उपाधियाँ देख भविष्यके किसी इतिहासकारके अंग्रेजोंकी सैन्यनीतिमें साधारण प्रजाके साथ उदार-नीतिका व्यवहार करनेका निष्कर्ष निकालनेके समान ही भयंकर होगा।

इसी प्रकार सम्राट्की बहुश्रुत उदारता भी विदेशी मुसलमानोंतक ही परिमित थी। आजकल समय समय पर ब्रिटिश जनताको भारतमें नौकरी करनेके लिए विविध प्रकारसे प्रोत्साहन देनेवाली गवर्नमेण्टके समान उस समयके शासक भी ताज़ा वलायत! मुसलमानोंके प्रति कुछ कुछ वैसी ही नीति बरतते थे। खुरासान, मध्य एशिया और अरब इत्यादि देशोंसे सह-धर्मियोंके भारतमें पदार्पण करते ही—जिसकी सूचना सम्राट्को नियमानुसार दी जाती थी—सम्राट्की ओरसे उनकी अभ्यर्थना प्रारंभ हो जाती थी और द्रव्योपहार आदिके नाना प्रलोभनों द्वारा उनको भारतमें ही रोकनेका प्रयत्न किया जाता था। बतूताके वर्णनसे पता चलता है कि कुछ एक तो इनमें ऐसे अयोग्य थे कि स्वदेशमें रहने पर शायद उनको भीख ही माँगनी पड़ती। परन्तु भारत-सम्राट् उनको

भी मुक्त-हस्त हो दान देता था। यही नहीं, बहुतोंने तो स्वदेशमें अपने घर बैठे हुए सम्राट्से पर्याप्त दक्षिणाएँ पायी थीं। इसी कारण आदर-सत्कार उचित सीमासे बढ़ जाने और राजकोष-से असीम धन पात्रापात्रका विचार किये विना ही दे डालने-से मुहम्मद तुग़लककी दानशीलताकी उस समय समस्त मुसलिम देशोंमें धूम मची हुई थी परन्तु भारतीयोंको इससे लेश मात्र भी लाभ न होता था।

यही दशा सम्राट्के न्याय-प्रियता आदि अन्य प्रसिद्ध गुणोंकी भी समझिये। अकारण ही पुरुषोंको दंड देना और निर्मूल आरोप लगाकर यन्त्रणाओंके भयसे उसको स्वीकार कराना और फिर अन्तमें उनका प्राणापहरण कर लेना उसके बायें हाथका खेल था। जहाज़ टूट जानेके कारण, चीन-सम्राट्के लिए जानेवाले उपहारोंके नष्ट हो जाने पर, स्वयं बतूताको ही पुनः तुग़लकके निकट लौट कर जानेमें प्राणोंका भय हुआ था, यहाँ तक कि एक कौड़ी तक पास न रहने पर भी दिल्ली न जाकर उसने अन्य देशोंमें घूम कर भाग्य परखना ही अधिक अच्छा समझा।

सम्राट् तथा उसके शासनके सम्बन्धमें फैले हुए 'चीनकी चढ़ाई' आदि वर्तमान-कालीन भ्रमोंको दूर करनेके अतिरिक्त बतूताने तत्कालीन भारतीय इतिहासकी कुछ अन्य बातोंपर भी प्रकाश डाला है; कुतुबउद्दीन ऐबककी दिल्ली-विजय-तिथि, बङ्गालके मुसलमान गवर्नरोंका शासन-काल, तुग़लक वंशका तुर्क-जातीय होना, क़ारोमंडलतटके मुसलिम शासकोंका वृत्त और तत्कालीन भारतीय मुद्रा आदि विषयोंकी जानकारीके सम्बन्धमें इस विवरणसे यथेष्ट सहायता मिली है। बतूता भारतीय अनाजोंके भावके साथ ही साथ यदि

यहाँके मजदूरोंका दैनिक वेतन भी लिख देता तो तत्कालीन भारतीय आर्थिक इतिहासके समझनेमें और भी सुगमता होती। ख़ैर, उसके अभावमें हमको इतनेपर ही संतुष्ट होना चाहिये।

भारतमें बहुत दिनों तक निवास करनेके कारण बतूताके हृदयपर कुछ गहरी छाप लगी थी और यही कारण है कि अन्य देशोंका विवरण देते हुए भी यत्रतत्र वह उनकी एतद्देशीय अनुभवोंसे तुलना कर बैठता है; इस प्रकार भारत सम्बन्धी अन्य बातोंकी भी बहुत कुछ जानकारी हो जाती है और अन्य स्थानोंकी अपेक्षा भूमिकामें ही उनको स्थान देना अधिक उचित समझ कर हम उन्हें यहीं लिख रहे हैं।

आज कलकी भाँति गंगा उस समय भी पवित्र समझी जाती थी और मरणोपरान्त हिन्दुओंकी हड्डियाँ इसी नदीमें डालनेकी प्रथा थी। उनको अपना भोजन मुसलमानोंके स्पर्शसे बचाते देखकर बतूताको अत्यंत ही आश्चर्य हुआ था; वह कहता है कि यदि छोटे बच्चे भी मुसलमानोंका छुआ भोजन खा लेते थे तो उनको भी गोबर खिलाकर शुद्ध किया जाता था। सती होनेके लिए सम्राट्की आज्ञा लेनी पड़ती थी और वह इसको कभी अस्वीकार न करता था।

भारतवासी तब साधारणतया सरसोंका तेल शिरमें डालते थे और बालोंको रेहसे धोते थे। एक दूसरेसे मिलने पर तांबूल द्वारा आदर किया जाता था और उच्चवर्गीय पुरुषों-को पाँच पानकें बीड़े दिये जाते थे। ज्वार, बाजरा और मक्का आदि मोटा अनाज एतद्देशवासियोंका प्रधान आहार था और कोयलेका व्यवहार न जाननेके कारण लोग लकड़ियों द्वारा ही अग्नि प्रज्वलित कर भोजन इत्यादि बनाते थे।

राज-दर्बारमें प्रवेश करनेसे पहले पुरुषोंकी तलाशी ली जाती थी कि कहीं कोई चाकू आदि अस्त्र तो नहीं छिपा हुआ है। कोई व्यक्ति, सम्राट्की आज्ञा विना, झंडा ले डंकेपर चोट करता हुआ राहमें न चल सकता था, और बादशाहके अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्तिके द्वारपर नौवत नहीं झड़ सकती थी।

मालावारके कालीकट और क्विलोन तथा खंबायत आदि अन्य बन्दर-स्थानोंसे भारतीय जहाज़ सीलोन, सुमात्रा, जावा और अरव, अदन तक जाते थे। यह काठके बने होते थे परन्तु तूफानमें टूट जानेके भयसे काठके इन तख्तोंको कीलोंसे न ठोक कर नारियलकी बनी हुई रस्सियोंसे ही जकड़ कर बाँध देते थे। चीन जानेके लिए उसी देशके जहाज़ भारतीय बन्दर-गाहोंपर मिल जाते थे और उन्हींमें अधिक सुभीता भी होता था।

शीघ्रगामी घोड़े यमनसे और भारवाही उत्तम घोड़े तुर्की-से सहस्रोंकी संख्यामें आते थे और पाँच सौसे लेकर पाँच हज़ार दीनार तक विकते थे। मालद्वीपसे नारियलकी रस्सी और कौड़ियाँ आती थीं। कौड़ियोंका भाव चार लाख प्रति सुवर्ण मुद्राके हिसाबसे था।

इनके अतिरिक्त अन्य छोटी छोटी बातोंको विस्तारभयसे यहाँ नहीं लिखा है। पाठक उन्हें यथास्थान पावेंगे।

मदनगोपाल

शुद्धिपत्र ।

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
देरके ...	कुछ देरके ...	९	९
होता है ...	होता है] ...	१२	१
मख़दूने जहाँ ...	मख़दूमे जहाँ ...	२६	२४
वर्षोंमें ...	वर्षमें ...	३३	१
ज़िवह ...	ज़िबह ...	३५	१९
तथा या अन्य ...	तथा अन्य ...	३९	१४
सहस्र ...	सहस्र ...	४६	२३
कुबत-उल-इसलाम ...	कुव्वत-उल-इसलाम	४८	१४
प्रात काल ...	प्रातःकाल ...	६१	८
साम्राज्ञी ...	सम्राज्ञी ...	६२	१४,१६
'लिक' ...	'मलिक' ...	११०	२०
अस्त्रके ...	अस्त्र ...	१२०	६
सुनहरी ...	सुनहरे ...	१२१	१०
१७ ...	१६ ...	१३७	१२
गन्नाती ...	ग़रनाती ...	१३८	१५
निवासी ...	निवासी) ...	१३८	१६
तोड़कर ...	ताड़कर ...	१४४	१८
खुदवा कर; ...	खुदवा कर ...	१५९	१२
आरफीनका वध ...	आरफीनके पुत्रोंका वध	१६५	१७
कोपल ...	कोयल ...	१६५	१९
सैनिक, दास ...	सैनिकों, दासों ...	१८४	१०
मुक़विलके ...	मुक़ाबिलके ...	२०४	२०
रुकूअ (...	रुकूअमें (...	२१३	१०
आतिथ्यके सम्राटका...	सम्राटके आतिथ्यका	२१६	२६
दिलशाह ...	दिलशाद ...	२७८	४
खचरावाँ ...	खज़रावाँ ...	२९२	१४
उसने ··· उसको ...	उन्होंने ··· उनको ...	३५१	५,७
सफउद्दीन ...	सैफउद्दीन ...	३५१	१८
उत्तराराधिकारी ...	उत्तराधिकारी ...	३६२	१४

इनके अतिरिक्त कुछ मात्राएँ टूट गयी हैं और नुक़ते भी छूट गये हैं, पाठक कृपया ठीक कर लें ।

काराचील
(हिमालय पर्वत)
सिन्धु न.
उजह
मनोहर
सरस्वती
हाँसी
दिल्ली
कोल
कन्नौज
गंगा न.
जमुना न.
ग्वालियर
चन्देरी
खजराओ
भक्कर
सैवस्तान
लाहरी
खम्बायत
धार
उज्जैन
काठियावाड़
कोका
दौलताबाद
गोदावरी न.
बंगाल
लखनौती
कामरू
सिलहट
हबनक
गौर
सुनार गाँव
सतगाँव
सदकाँवा
(चिटगाँव)
सन्दापुर
(गोवा)
हनोर
मालाबार
फाकनौर
मंजौर
हीली
फन्दरैना
कालीकट
शालियात
मदुरा
कोलम
फत्तन (पत्तन)
सरनद्वीप
(लंका)
धिवदमहल
(माल द्वीप)
कनानुस महल

बतूता का यात्रामार्ग

इब्नबतूताकी भारतयात्रा

या

[चौदहवीं शताब्दीका भारत]

पहला अध्याय

सिंधु-देश

१—सिंधुनद

सन् ७३४ हिजरीमें मुहर्रम उलहरामकी पहिली तारीख-को हम सिन्धुनद[1] पर पहुँचे। इसका दूसरा नाम पंजाब[2] (पंचनद) भी है। संसारके बड़े बड़े नदोंमें इसकी गणना की जाती है। नील नदीके समान इसमें भी ग्रीष्मऋतुमें बाढ़ आती है, और मिश्र देशवासियोंकी भाँति सिन्धु देशवासियों-का जीवन भी नदीकी बाढ़पर ही अवलंबित है। भारतसम्राट्

---

(१) नदीके नामसे देशका नाम भी प्रसिद्ध हो गया। धीरे धीरे देशका नाम तो 'हिन्द' हो गया पर नदीका नाम 'सिंधु' ही रहा।

(२) जबतक 'सिंधु' नदमें पाँचों नदियाँ नहीं मिलतीं, वह 'पंजाब' अर्थात् पंचनदके नामसे ही पुकारा जाता है। मुग़ल सम्राटोंके पहले केवल 'सिंधुनद' को ही 'पंजाब' कह कर पुकारते थे, देशका नाम 'पंजाब' नहीं था। नासिर-उद्दीन कबाचहके 'सिन्धु' में डूबकर मरनेके पश्चात् बदाऊनी लिखता है—"नासिर उद्दीन दर पंजाब ग़रीक़ बहर फ़ना गश्त।"

मुहम्मदशाह तुग़लकका राज्य भी यहींसे प्रारंभ होता है। यहाँपर आते ही सम्राट्के समाचार-लेखक हमारे पास आये और उन्होंने हमारे आगमनकी सूचना भी तुरन्त ही मुलतानके हाकिम कुतुब-उल-मुल्कके पास भेज दी। इन दिनों सम्राट्की ओरसे सरतेज[1] नामक व्यक्ति इस देशका अमीर था। यह सम्राट्का दास भी था और सेनाका बख्शी भी। हमारे इस प्रदेशमें आनेके समय अमीर 'सेविस्तान' नामक नगरमें था।

(वेतन) वेतन बाँटनेवाला कर्मचारी

२—डाकका प्रबन्ध

सेविस्तानसे मुलतानकी राह दस दिनकी है, और मुलतानसे राजधानी दिल्लीकी राह पचास दिनकी। अखबारनवीसों (समाचारलेखकों) के पत्र सम्राट्के पास डाक द्वारा पाँच ही दिनमें पहुँच जाते हैं। इस देशमें डाकको 'बरीद'[2] कहते हैं। यह दो प्रकारकी होती है—एक तो घोड़ेकी, दूसरी पैदलकी। घोड़ेकी डाकको 'औलाक़' कहते हैं। प्रत्येक चार कोसके पश्चात् घोड़ा बदला जाता है; घोड़ोंका प्रबन्ध सम्राट्की ओरसे होता है।

दो मीलकी दूरी,

पैदल डाकका प्रबन्ध इस भाँति होता है कि एक मीलमें, जिसको इस देशमें 'क्रोह'[3] कहते हैं, हरकारोंके लिए तीन

(१) इमादुल-मुल्क सरतेज़ जातिका तुर्कमान था। यह सम्राट्का जामाता भी था और सेनापति भी। दक्षिणमें हसन गंगोह बहमनी द्वारा किये गये बलवेका दमन करते समय वह एक युद्धमें (सन् ७४६ हिजरीमें) मारा गया।

(२) अरबीमें दूत, और १२ मीलकी दूरीको 'बरीद' कहते हैं। बोलचालमें इसे डाकचौकी कहते हैं।

(३) 'क्रोह' और 'कोस' एक ही शब्दके भिन्न भिन्न रूप हैं।

चौकियाँ बनी होती हैं। इनको 'दावह'¹ कहते हैं। प्रत्येक ⅓ मील की दूरीपर गाँव बसे हुए हैं जिनके बाहर हरकारोंके लिए बुर्जियाँ बनी होती हैं। प्रत्येक बुर्जीमें हरकारे कमरकसे बैठे रहते हैं। प्रत्येक हरकारेके पास दो गज लंबा डंडा होता है जिसमें छोरपर तांबेके घुँघरू बँधे होते हैं। नगरसे डाक भेजते समय हरकारेके एक हाथमें चिट्ठी होती है और दूसरेमें डंडा। वह अपनी पूरी शक्तिसे दौड़ता है। दूसरा हरकारा घुँघरूका शब्द सुन कर तैयार हो जाता है और उससे चिट्ठी लेकर तुरंत दौड़ने लग जाता है। इस प्रकार इच्छानुसार सर्वत्र चिट्ठियाँ भेजी जा सकती हैं। यह डाक घोड़ोंकी डाकसे भी शीघ्र जाती हैं। कभी कभी खुरासान तकके ताजे मेवे थालोंमें रखकर बादशाहके पास इसी डाक द्वारा पहुँचाये जाते हैं और भीषण अपराधियोंको भी खाटपर डाल कर एक चौकीसे दूसरी चौकी होते हुए इसी प्रकार पकड़ ले जाते हैं। जब मैं दौलताबादमें था तब सम्राट्के लिए 'गंगाजल' भी इसी प्रकार वहाँ

---

(१) दावह—बदाऊनीने इस शब्दको 'धावा' लिखा है। इब्न बतूताने डाकियेके डंडे और घुघँरूका जो मनोहर वृत्त लिखा है उसका दृश्य अब भी देहातोंके डाकखानोंमें दृष्टिगोचर हो जाता है। मसालिक उल अबसारके लेखक शहाबुद्दीन दमिश्की बतूताके सम-सामयिक थे। इन्होंने सिराजुद्दीन उम्र शिबलीकी ज़बानी जो डाकका वर्णन किया है, वह भी प्रायः ऐसा ही है, किंतु वह इतना अधिक लिखते हैं कि प्रत्येक चौकीपर मसजिद, तालाब और दूकानें भी होती थीं। दौलताबादसे दिल्लीतक बड़े बड़े नगरोंके द्वार खुलने और बंद होनेका समय तथा किसी असाधारण घटनाके घटित होनेका समाचार इस भाँति मालूम हो जाता था कि प्रत्येक चौकीपर नगाड़े रखे होते थे, एक नगाड़ेका शब्द सुन कर दूसरा बजता था। इस प्रकार थोड़े ही समयमें सम्राट्को समाचार मिल जाते थे।

भेजा जाता था। गंगा नदीसे दौलताबादकी राह चालीस दिनकी है।

समाचार-लेखक प्रत्येक यात्रीका व्यौरेवार समाचार लिखते हैं। आकृति, वस्त्र, दास, पशु तथा रहनसहन, इत्यादि—सब कुछ लिख लेते हैं। कोई बात शेष नहीं रखते।

३—विदेशियोंका सत्कार

आगे जानेके लिए जबतक सम्राट्की आज्ञा न मिल जाय, और भोजन आदि आतिथ्यका उचित प्रबन्ध न हो जाय, तब तक प्रत्येक यात्रीको मुलतान (सिंधु प्रान्तकी राजधानी) में ही ठहरना पड़ता है और उस समयतक प्रत्येक विदेशीके पद, मानमर्य्यादा, देश, कुल इत्यादिका ठीक ठीक ज्ञान न होनेके कारण, आकृति, वेश-भूषा, भृत्य, ऐश्वर्य्यादि लक्षणोंके अनुसार ही उसका सत्कार होता है। भारत-सम्राट् मुहम्मद-शाह तुग़लक विदेशियोंका बहुत आदर सत्कार करते हैं, उनसे प्रेम करते हैं और उन्हें उच्च पदोंपर नियुक्त भी करते हैं। बादशाहके उच्च पदस्थ भृत्य, सभासद, मंत्री क़ाजी और जामाता सब विदेशी ही हैं। उनकी आज्ञा है कि परदेशीको मित्र कहकर पुकारो। तदनुसार विदेशी पुरुष मित्रके ही नामसे संबोधित किये जाते हैं।

सम्राट्की वंदना करते समय भेंट देना भी आवश्यक है और यह भी सबको मालूम है कि बादशाह उपहार पानेपर उसके मूल्यसे द्विगुण, त्रिगुण मूल्यका पारितोषिक प्रदान करते हैं, अतएव सिंधु-प्रान्तके कुछ व्यापारियोंने तो यह व्यवसाय ही प्रारंभ कर दिया है कि वे सम्राट्की वंदना करनेके लिए जानेवाले पुरुषको, सहस्रों दीनार ऋणके तौरपर

दे देते हैं, ऊँट तैयार करा देते हैं, भृत्यों तथा घोड़ोंका प्रवन्ध कर देते हैं और उनके सामने भृत्यवत् खड़े रहते हैं। सम्राट्के वंदना स्वीकार करनेके पश्चात् पारितोषिक मिलनेपर यह ऋण चुकता कर दिया जाता है। इस तरहसे ये व्यापारी वहुत लाभ उठाते हैं। सिंधु पहुँचनेपर मैंने भी यही किया और व्यापारियोंसे घोड़े, ऊंट तथा दास मोल लिये और तकरीत[1] निवासी मुहम्मद दौरी नामक ईराकके व्यापारीसे गज़नीमें तीरों (वाणों) के फलकोंसे लदा हुआ एक ऊँट तथा तीस घोड़े मोल लिये,—क्योंकि ऐसी ही वस्तुएं वादशाहको भेंटमें दी जाती हैं। खुरासानसे लौटनेपर इस व्यापारीने अपना ऋण वापस माँगा और खूब लाभ उठाया। मेरे ही कारण यह बहुत बड़ा व्यापारी बन बैठा। बहुत वर्ष पीछे यह व्यक्ति मुझे हलब नामक नगरमें मिला। उस समय यद्यपि काफ़िरोंने मेरे वस्त्रतक लूट लिये थे, तिसपर भी इसने मेरी तनिक भी सहायता न की।

४—गैंडेका वृत्तान्त

सिंधुनदको पार करनेके उपरांत हमारी राह एक बाँसके वनमें होकर जाती थी। यहाँ हमने (प्रथम वार) गैंडा[2] देखा।

---

(१) बगदादके निकटस्थ एक क़स्बेका नाम है।

(२) फ़ारसीमें इसको 'करकदन' कहते हैं। यह दो प्रकारका होता है— एक श्रृंगवाला तथा दो श्रृंगोंवाला था। द्वितीय प्रकारका पशु वैसे है तो सुमात्रा और जावाका परन्तु ब्रह्म देश तथा चटगाँवमें भी पाया जाता है। एक श्रृंगवाला अब तो ब्रह्मपुत्र नदीके तटपर तथा अफ्रीका महाद्वीपमें ही पाया जाता है। श्रृंग चौदह इंचसे अधिक लम्बा नहीं होता। शिर तथा श्रृंग-वर्णनमें इब्न बतूताने अत्युक्तिसे काम लिया

यह भीमकाय पशु कृष्ण वर्णका होता है। इसका शिर बहुत बड़ा होता है—किसी किसीका छोटा भी होता है—; इसीलिए (फ़ारसीमें) "करकदन सर बेबदन"की कहावत प्रचलित है। हाथीसे छोटा होनेपर भी इस पशुका शिर उससे कहीं बड़ा होता है। इसके मस्तकपर दोनों नेत्रोंके मध्यमें एक सींग होता है जो तीन हाथ लम्बा तथा एक बालिश्त चौड़ा होता है। ज्यों ही गैंडा वनमें दिखाई पड़ा, त्यों ही एक सवार संमुख आगया। परन्तु गैंडा घोड़ेको सींग मारकर तथा उसकी जंघा चीरकर और उसे पृथ्वीपर गिराकर वनमें ऐसा लुप्त हुआ कि फिर कहीं उसका पता न लगा। इसी राहमें एक दिन फिर असर (नमाज़ जो संध्याके चार बजे पढ़ी जाती है) के पश्चात् मैंने एक और गैंडेको घास खाते हुए देखा। हम लोग इसको मारनेका विचार कर ही रहे थे कि यह भाग गया।

इसके उपरान्त मैंने एक बार फिर एक गैंडा देखा। इस समय हम सम्राट्की सवारीके साथ एक बाँसके वनमें जा रहे थे। सम्राट् एक हाथीपर सवार थे और मैं दूसरेपर।

है। फिर भी शेष देहसे तुलना करनेपर शिर बड़ा ही दीखता है। इस पशुका चर्म बहुत कड़ा होता है—कहते हैं कि तीक्ष्णसे तीक्ष्ण चाकू या तलवार भी उसपर असर नहीं करती। प्राचीन कालमें इसके चर्मकी ढालें बनायी जाती थीं। कौलविन महाशय लिखते हैं कि इस पशुके श्रृंगके बने हुए प्याले विष या विषाक्त पदार्थ रखनेपर तुरंत फट जाते हैं; और इसके श्रृंगके दस्तेवाले चाकू या छुरीके निकट रखनेपर विषाक्त पदार्थके विषका प्रभाव जाता रहता है। नहीं कह सकते कि यह कथन कहाँतक सत्य है। सम्राट् बाबरने भी इस पशुका अपनी तुज़ुक (रोज़-नामचे) में वर्णन किया है।

इस बार अश्वारोहियों तथा पदातियोंने घेरकर गैंडेको मार डाला और शिर काटकर शिविरमें ले आये।

५—जनानी (नगर)

हम दो पड़ाव चले थे कि जनानी[1] नामक नगर आ गया। यह विस्तृत एवं रम्य नगर सिंधु नदीके तटपर बसा हुआ है। यहाँका बाजार भी अत्यंत मनोहर है। 'सोमरह' जाति यहाँ प्राचीन कालसे निवास करती आयी है। लेखकोंका कथन है कि हज्जाज बिन यूसुफके समयमें, सिंधु-विजय होने पर, इस जातिके पूर्व-पुरुष इस नगरमें आ बसे थे। मुलतान निवासी शैख रुक्न उद्दीन् (पुत्र शैख शम्स-उद्दीन पुत्र शैख़ बहाउलहक़) ज़करिया कुरैशी मुझसे कहते थे कि उनके पूर्व-पुरुष मुहम्मद इब्न क़ासिम कुरैशी, सिंध-विजयके समय, हज्जाज द्वारा भेजे हुए ऐराक़ी (आधुनिक मैसोपोटामिया) सैन्य दलके साथ आकर यहाँ बस गये थे। इसके पश्चात् उनकी संतानकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी। इन्हीं शैख रुक्न-उद्दीनसे मिलनेके लिए शैख़ बुरहानउद्दीन ऐरजने ऐलक्जैन्ड्रियामें मुझसे कहा था। इस जाति (सोमरह) के पुरुष न तो किसीके साथ भोजन करते हैं और न भोजन करते समय इनकी ओर कोई देख सकता है। विवाह-सम्बंध भी ये किसी अन्य जातिसे

---

(१) जनानी—इस नामके नगरका न तो अब पता चलता है और न अबुल फ़ज़लने ही आईने-अकबरी में कुछ उल्लेख किया है। 'सय्यमा' जातिकी राजधानी 'सामी' नामक नगर ठट्ठासे तीन मीलकी दूरीपर था, परन्तु उसको तो जामजूनाने बहुत पीछे बसाया है। 'सोमरह' जातिका बड़ा नगर 'मुहम्मदतूर' ठट्ठहके निकट ऊछह और सक्करके मध्यवर्त्ती देशमें, सिंधुनदके दक्षिणी तटपर, था।

नहीं करते। इस समय 'वनार' नामक सज्जन इस जातिके सरदार थे जिनका वर्णन मैं आगे चलकर करूँगा।

(६) सैवस्तान (सैहवान)

जनानी (नामक नगर) से चल कर हम 'सैवस्तान'[१] नामक नगरमें पहुँचे। यह विस्तृत नगर मरुभूमिमें है जहाँ कीकड़के अतिरिक्त अन्य किसी वृक्षका चिन्हतक नहीं है। वहाँ (जनानीमें) तो नदीके किनारे ख़रबूज़ोंके अतिरिक्त कोई दूसरी चीज़ ही नहीं बोयी जाती थी, परंतु यहाँके निवासी ज़ुलवान (बोलचाल मशंग) अर्थात् काबुली मटर की रोटी खाते हैं। मछली तथा भैंसके दूधकी यहाँ बहुतायत है। नागरिक सकनकूर अर्थात् रेग[२] नामक मछली भी खाते हैं। कहनेको तो यह मछली है पर वास्तवमें यह जन्तु गोह

---

१ सैवस्तान—आजकल इसका नाम 'सैहवान' है। यह कराँचीके जिलेमें एक ताल्लुका है और वहाँसे १९२ मीलकी दूरीपर स्थित है, इसकी जनसंख्या सन् १८९१ में लगभग ५००० थी। शहवाज़ नामक साधुका प्रसिद्ध मठ भी यहींपर बना हुआ है। सन् १३१६ ई० में इसका निर्माण हुआ था। लोग कहते हैं कि इस नगरका दुर्ग महान्-सिकन्दरने बनवाया था। इसका प्राचीन नाम सिंदिमान है। यूनानी इसी प्रकारसे इसका उच्चारण करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन सिन्धु-स्थान अथवा सैंधव-वनम् नामक संस्कृत नामसे बिगड़ कर यह नाम बना है। आर्यकालमें यहाँपर सैंधव जाति निवास करती थी। सिकन्दरने यहाँ 'साबुस' नामक राजाका सामना किया था।

२ रेगमाही—यह फारसी भाषाका शब्द है। हिन्दीमें इसे बन-रोहू कहते हैं। यह स्थलीय जन्तु गोहसे मिलता जुलता है और आकारमें साँडेसे कुछ बड़ा होता है।

सरीखा होता है। इसके पूंछ नहीं होती और पैरोंके बल चलता है। बालू खोद कर इसे बाहर निकालते हैं। इसका पेट फाड़ कर आँते इत्यादि निकाल लेते हैं और केसरके स्थानमें हलदी भर देते हैं। लोगोंको इसे खाते देख मुझे बड़ी घृणा हुई। (अतएव) मैंने इसे खाना अस्वीकार कर दिया। जब हम यहाँ पहुँचे तो गरमी प्रचंड रूपसे पड़ रही थी, मेरे साथी नंगे रहते थे और एक बड़ा रूमाल पानीमें भिगोकर तहबन्द (बोलचाल-तैमद) के स्थानमें बाँध लेते थे और दूसरा कंधोंपर डाल लेते थे। देरके बाद इन रूमालोंके सूख जानेपर इनको फिर गीला कर लेते थे। इसी प्रकार निरंतर होता रहता था। इस नगरका खतीब (जामेमस-जिदका इमाम) शैबानी है। उसने मुझे खलीफा अमीरुल मोमनीन (मुसलमानोंके नायक) उमर इब्न अब्दुल अज़ीज, (परमेश्वर उनपर कृपा रखे) का आज्ञापत्र दिखाया, जो इसके पितामहको खतीब बनाते समय प्रदान किया गया था।

यह आज्ञापत्र इनके पास वंशक्रमानुगत दायभागकी भाँति चला आता है। इसके ऊर्ध्व भागमें 'हाज़ा मा अमरा बही अब्दुल्ला अमीरउल मोमनीन उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ बफ़लां (अर्थात् अब्दुल्ला अमीरुल मोमनीन-उमर बिन अब्दुल अजीजने अमुकको आज्ञा दी) लिखा हुआ है। इसकी लेखन-तिथि सन् ९९ हिजरी है और इसपर अलहम्दि लिल्लाह वहदऊ (अर्थात् धन्यवाद है उस परमेश्वरको जो एक है) लिखा हुआ है। खतीब कहता था कि ये शब्द स्वयं ख़लीफ़ाके हाथके लिखे हुए हैं। इस नगरमें मुझे शैख मुहम्मद बग़दादी नामक एक ऐसा वृद्ध व्यक्ति मिला जिसकी अवस्था एकसौ

चालीस वर्षसे भी अधिक बतायी जाती थी। यह शैख उस्मान् 'मरन्दी' के मठमें रहता था। किसी व्यक्तिने तो मुझसे यह कहा था कि चंगेज़ खाँके पुत्र हलाकू खाँ द्वारा, अब्बासी वंशके अंतिम ख़लीफ़ा—ख़लीफ़ा[1] मुस्तअसम बिल्लाह—के वधके समय यह पुरुष बग़दाद में था। इतनी अवस्था बीत जानेपर भी इसके अंग-प्रत्यंग खूब दृढ़ बने हुए थे, और यह भलीभाँति चल फिर सकता था। 'सामरह' जातिका उपर्युक्त सरदार इस नगरमें रहता था और अमीर क़ैसर रूमी भी। ये दोनों सम्राट्के सेवक थे और इनके अधीन १८०० सवार थे। 'रत्न' नामक एक हिन्दू भी इसी नगरमें रहता था। गणित तथा लेखनकला विषयक इसका ज्ञान अपूर्व था। किसी अमीर (कुलीन) द्वारा इसकी पहुँच सम्राट्तक हो गयी थी। उन्होंने इसका मान तथा प्रतिष्ठा बढ़ानेके विचारसे इसको इस देशके प्रधान अधिकारी (हाकिम) के पदपर नियत किया और नगाड़े तथा ध्वजा रखनेकी आज्ञा प्रदान की जो केवल महान् अधिकारियोंको ही दी जाती है। सेवस्तान तथा उसके निकटके स्थान जागीरके तौरपर दे दिये गये। जब यह अपने नगरमें (यहाँ) आया तो वनार और क़ैसरको एक हिन्दूकी दासता असह्य प्रतीत हुई और इन दोनोंने इसके वध करनेकी मन्त्रणा की।

'रत्न' के नगरमें आनेके बाद कुछ दिन बीत जानेपर इन्होंने

---

१ मुस्तअसम बिल्लाह—यह अब्बास वंशका अंतिम खलीफा था। चंगेज़ख़ाँके पौत्र हलाकूखाँने सन् ६५६ हिजरीमें, कम्बलोंमें लपेट कर गदा-प्रहार द्वारा इसका वध कर डाला। परन्तु तारीखे खलीफामें पाद-प्रहार द्वारा इसका प्राणापहरण होना लिखा हुआ है। इसकी मृत्युके साथ ही बग़दादके ख़लीफ़ाओंका ५२० वर्ष पुराना राज्य समाप्त हो गया।

उससे स्वयं चलकर जागीरका निरीक्षण करनेका निवेदन किया और आप भी साथ साथ चलनेको उद्यत हो गये। वह इनके साथ चला गया। रात्रिको सब डेरोंमें पड़े सो रहे थे कि सहसा वन्यपशुके आनेका सा शब्द सुनाई दिया। इस बहानेसे इनके आदमियोंने शिविरमें घुसकर उसका वध कर डाला और नगरमें आकर सम्राट्का कोष, जिसमें १२ लाख दीनार[1] थे, लूट

१ दीनार—मुसलमानोंके भारतमें प्रथम आगमनके समय यहाँ 'दिल्लीवाल' नामक सिक्केका अधिक प्रचार था। यह सिक्का 'जेतल' के बराबर होता था। तबक़ाते नासिरीका लेखक जेतल और टंक दोनों शब्दोंको (समानवाची अर्थोंमें) व्यवहार करता है। सुलतान महमूदके हिजरी सन् ४१८ के सिक्कोंपर अरबी भाषामें 'दिरहम' शब्द लिखा हुआ है और संस्कृतमें 'टंकः', जिससे यह प्रतीत होता है कि यह शब्द (टंक) संस्कृतका है, तुर्कीका नहीं जैसा कि कुछ लोगोंका अनुमान है।

प्राचीन कालमें सोने, तथा चाँदीके 'टंक' १०० रत्तीभर होते थे, परन्तु सुलतान मुहम्मद तुग़लकने एक ऐसे चाँदीके टंकका प्रचार किया था जो केवल ८० रत्ती भर था। ऐसा प्रतीत होता है कि इब्नबतूता इस विशेष सिक्केको 'दिरहमी दीनार' के नामसे पुकारता था और प्राचीन साधारण चाँदीके टंकको केवल 'दीनार' के नामसे।

मसालिक उल अबसारके लेखकका कथन है कि एक सुवर्ण टंक ३ मशकालके बराबर होता है। और चाँदीके टंककी ८ हश्तगानियाँ आती हैं। इसका पैमाना इस भाँति है—

४ फ़लोस = १ जेतल।

२ जेतल — १ सुलतानी।

४ सुलतानी = १ हश्तगानी।

८ हश्तगानी = १ टंक।

इस प्रकार १ टंकमें ६४ जेतल होते थे। (पृष्ठ १२ देखिये)

लिया [हिन्दके दस सहस्र स्वर्ण दीनार एक लाख (रौप्य दीनार ?) के बराबर होते हैं और हिन्दका एक स्वर्ण दीनार

सम्राट् अकबरके समयका 'जेतल' एक भिन्न वस्तु था। उस समय एक रुपयेके सहस्रांशको जेतल कहते थे।

'तबकाते अकबरी' में 'स्याह टंक' नामक एक और सिक्केका भी उल्लेख पाया जाता है। सम्राट् मुहम्मद तुग़लकके दान-वर्णनमें लिखा है कि "ध्यान रखना चाहिये कि इससे यहाँ उस चाँदीके टंकसे अभिप्राय है जिसमें १ टुकड़ा (भाग) तांबेका भी होता है और यह आठ कृष्ण (स्याह) टंकके बराबर होता है।

सम्राट् मुहम्मद तुग़लकके सिक्कोंमें एक ऐसा सिक्का भी मिला है जिसमें तांबा तथा चाँदी दोनोंका मिश्रण है। यह सिक्का ३२ रत्ती अर्थात् ४ माशेका है। टंक भी चारमाशेका बताया जाता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि 'स्याह टंक' से उक्त लेखकका अभिप्राय इसी सिक्केसे था।

निष्कर्ष यह निकला कि इब्नबतूताके समयमें भारतमें तीन प्रकारके टंक प्रचलित थे।

१ श्वेत टंक (सफ़ेद टंक)—शुद्ध रजत (चाँदी) का १०० अथवा ८० रत्तीका होता था। ८० रत्तीवाला 'अदली' भी कहलाता है। इब्नबतूता इसको सदा 'दीनार' कहकर पुकारता है और अदलीको वह 'दिरहमी दीनार' कहता है।

२ रक्त टंक (सुर्ख़ टंक)—शुद्ध सोनेका ११२ या १०० रत्ती भर होता था। इब्नबतूता इसको 'टंक' कहता है।

३ कृष्ण टंक (स्याह टंक)—३२ रत्तीका होता था; इसमें चाँदी तथा तांबा दोनोंका मिश्रण होता था। इब्नबतूता इसका उल्लेख नहीं करता। 'दिरहम' शब्दका वह प्रयोग तो करता है परन्तु इससे उसका अभिप्राय 'हश्तगानी' नामक सिक्केसे है जो आधुनिक 'दो-अन्नी' के बराबर होता था। इब्नबतूता स्वयं इस सिक्केको शाम

मु० तुग़लकशाहके सिक्के, पृ० १२




सोनेका सिक्का, दिल्ली
हिजरी सं० ७२७, ७२८, ७२९



तांबेका सिक्का,
दौलताबाद, ७३० हि०



पीतलका सिक्का,
दौलताबाद
७३१, ७३२ हि०

पश्चिमके २½ स्वर्ण दीनारके बराबर होता है] और 'वनार'※ को अपना अधिपति नियत किया। उसने अब 'मलिक-फीरोज़' की उपाधि धारण की और यह सब कोष सैनिकोंमें बाँट दिया।

(सीरिया) तथा मिश्रके दिरहमके बराबर बतलाता है और मसालिक उल अबसारके रचयिताकी भी सम्मति यही है।

'रुपया' शब्दका प्रचार तो सम्राट् शेरशाहके समयसे हुआ है। और इसीने विशुद्ध तांबेके सिक्कोंका सर्वप्रथम प्रचार किया। इससे पहले तांबेके सिक्कों तकमें थोड़ी बहुत चाँदी अवश्य ही मिलायी जाती थी। सम्राट् बाबर तथा बहलोल लोदी नामक पठान सम्राट्के समयमें एक टंक (कृष्ण) दो 'बहलोली' (सिक्का-विशेष) के बराबर होता था और एक बहलोलीका 'वज़न' १ तोला ८ माशा ७ रत्ती होता था।

उस समय १ श्वेत टंक के ४० 'बहलोली' आते थे। सम्राट् अकबरने इसी बहलोलीका नाम बदल कर 'दाम' कर दिया था।

※ वनार—प्राचीन ऐतिहासिकोंने 'सोमरह' तथा 'सय्यमा' वंशके वृत्तान्त एक दूसरेसे इतने भिन्न लिखे हैं कि इनके संबंधमें कोई बात निश्चित रूपसे नहीं लिखी जा सकती। केवल इतना कहा जा सकता है कि अब्दुल रशीद गज़नवीके राज्य-कालमें, ई० सन् १०५१ के लगभग, 'इब्ने समार' ने सोमरह वंशका राज्य स्थापित किया जो लगभग ३०० वर्षतक स्थिर रहा। इस कालमें यह वंश कभी कभी दिल्लीके सम्राटोंके अधीन हो जाता था और कभी कभी स्वतंत्र। कहते हैं कि सन् १३५१ ई०में इस वंशका अंत हो गया और सय्यमा वंशका राज्य सिंधु-देशमें स्थापित हुआ। परन्तु हमको इसमें कुछ संदेह है। कारण यह है कि सन् १३६१ में फीरोज़ तुग़लक़के सिंधपर चढ़ाई करते समय वहाँपर सय्यमा वंशका राज्य होना पाया जाता है क्योंकि वहाँके अमीरका नाम जामे बअंबिया था। सन् १३५१ ई० में जब मुहम्मद तुग़लकने सिंधु-प्रदेश पर चढ़ाई की तो उस समय ठट्टेमें सोमरह वंशका वर्णन आता

परन्तु अब स्वदेश तथा स्वजाति दूर होनेके कारण वनार-का हृदय भयभीत होने लगा। इस कारण वह तो अपने साथियों सहित अपने ज्ञातिवालोंकी ओर चल दिया और शेष सेनाने 'क़ैसर रूमी' को अपना अधिपति बना लिया।

इस घटनाका समाचार मिलते ही सरतेज़ इमादुलमुल्कने मुलतानमें सेना एकत्र कर जल तथा थल, दोनों मार्गोंसे इस ओर बढ़ना प्रारंभ किया। यह सुन कर क़ैसर भी सामना

है। सन् १३३४ ई० में इब्न बतूता भी सोमरह वंशका ही वर्णन करता है। परंतु कठिनता यह है कि उनके सरदारका नाम 'वनार' बताता है जो वास्तवमें 'सय्यमा' वंशका प्रथम जाम था। वगलर-नामहका लेखक सय्यमा वंशका उत्थान सन् १३३४ ई० से बतलाता है और यही ठीक मालूम होता है।

सोमरह वंश सिंधु देशपर बहुत समयसे शासन कर रहा था। 'सय्यमा' वंशका राज्य उस समयतक भली भाँति स्थापित भी नहीं हुआ था। मालूम होता है, इसी कारण इब्न बतूताने इसका उल्लेख नहीं किया। सर हेनरी इलियट कहते हैं 'सय्यमा' वंशके राजा सन् १३५१ ई० में मुसलमान हुए। परन्तु इब्नबतूताके वर्णनसे पता चलता है कि उनकी सम्मति भ्रमपूर्ण है; क्योंकि मुसलमान होनेके कारण ही तो 'वनार' हिन्दू 'रतन' की अधीनतामें नहीं रहना चाहता था।

हमारी सम्मति तो यह है कि कुछ काल पहिलेसे ही सोमरह वंशकी शक्ति क्षीण हो चली थी, इब्नबतूताके समयमें तो समस्त सिन्धुदेश पर मुहम्मद तुग़लकका आधिपत्य था। इस वंशमें तो 'अमीर' पद भी न रह गया था। सन् १३३४ व १३५१ के विप्लव 'सय्यमा' वंशके समयमें हुए, ऐसा समझना चाहिये और इनका ही बड़ी कठोरतासे दमन किया गया था जैसा कि बतूता लिखता है। वैसे तो जाम वनार और जामजूनाके समयसे ही (सन् १३३३ ई० में) उत्तरीय सिंधु-देशसे दिल्ली सम्राट्के अधिका-

करने आया परन्तु पराजित हो दुर्गके भीतर बंद हो गया। सरतेजने भी बड़ी दृढ़तासे घेरा डाल दिया और मंजनीक[१] लगा दी। चालीस दिन पश्चात् कैसरने क्षमा चाही परन्तु जब क्षमाके भरोसे उसके सैनिक बाहर आये तो सरतेजने उनके साथ कपटपूर्ण व्यवहार किया। उनका माल लूट लिया और सबका वध कर डाला। वह प्रतिदिन किसीकी गर्दन काटता, किसीको खड्गसे दो टूक करता और किसी किसीकी खाल खिंचवा कर और उसमें भूसा भरवा कर नगरके प्राचीरपर लटकवाता जाता था। उसने बहुतोंकी यही दशा की। इन शवोंको देखकर भयके मारे हृदय काँप उठता था। उनकी खोपड़ियोंका नगरके मध्यस्थानमें ढेर लगा दिया था। इस घटनाके बाद ही मैं इस नगरमें पहुँचा और एक बड़ी पाठशालामें उतरा। मैं इस पाठशालाकी छतपर सोता था, जहाँसे ये लटकते हुए शव दृष्टिगोचर होते थे। प्रातःकाल उठते ही इन शवोंपर दृष्टिपात होनेसे मेरा चित्त बिगड़ उठता था। अन्तमें मैं यह पाठशाला छोड़कर दूसरे मकानमें चला गया।

रियोंको निकाल बाहर करने पर सम्मा वंशका प्रादुर्भाव हो चला था परंतु सन् १३६१ ई० में तुग़लक-सम्राट् फीरोज़के सिंधु राज्यपर धावा करनेसे जामवअंबियाके समयसे ही सम्मा वंशका राज्य स्थायी हुआ।

यह 'सोमरे' और सोम या सिम्मे, प्राचीन सिन्धुदेश-निवासी राजपूत थे। चाटुकारोंने इनको अरब एवं 'जमशेद' की सन्तान सिद्ध करनेका असफल प्रयत्न किया है। नवानगरके राना तथा लुसबेलाके नवाब अब भी जाम कहलाते हैं। कच्छ-भुजके जारिजा राजपूत भी सिम्मे हैं।

१ मंजनीक—इसके विषयमें तीसरे अध्यायके विषय नं० १ में दिया हुआ नोट देखिये।

७—लाहरी बन्दर

क़ाज़ी अलाउलमुल्क फ़सोहुद्दीन खुरासानी क़ाज़ी हिरात धर्मशास्त्रके ज्ञाता और प्रसिद्ध विद्वान् थे। कुछ काल पूर्व यह अपना देश छोड़ बादशाह (भारत सम्राट्) की नौकरी करने चले आये थे। सम्राट्ने इनको सिन्धु-प्रान्तमें लाहरी नामक नगर - इलाके सहित—जागीरमें दे दिया।

यह महाशय भी अपना दलबल लेकर सरतेज़की सहायता करने आये थे। असबाब इत्यादिसे भरे हुए पन्द्रह जहाज इनके साथ सिन्धु नदमें आये थे। मैंने भी इन्हींके साथ 'लाहरी' जाना निश्चित किया।

क़ाज़ी अलाउलमुल्कके पास एक जहाज़ था जिसको 'अहोरा' कहते थे। यह हमारे देश (मोराक्को) की 'तरीदा' नामक नौकाके सदृश होता है; भेद केवल इतना ही है कि यह उससे अधिक लम्बा चौड़ा होता है। इस जहाजके अर्ध भागको सीढ़ियाँ बनाकर ऊँचा कर दिया गया था और काठके तख्ते पड़े होनेसे यह बैठने योग्य भी हो गया था। दाँये बाँये तथा संमुख भृत्यादिसे परिवेष्टित हो काज़ी महोदय इसी स्थानपर बैठा करते थे।

इस नौकाको चालीस माँझी खेते थे, और इसके साथ चार छोटी छोटी डोंगियाँ भी रहती थीं—दो दाहिनी ओर और दो बाँई ओर। दोमें तो नगाड़े, पताका, सरनाई इत्यादि होते थे और दोमें गवैये बैठते थे। नौका चलनेके समय कभी तो नौबत झड़ती थी और कभी गवैये राग अलापते थे। प्रातःकालसे लेकर चाश्त (अर्थात् प्रातःकालीन नमाज़) के पश्चात् १० बजे भोजन

करनेके समयतक इसी प्रकार गाते बजाते चले जाते थे। भोजनका समय होते ही समस्त पोतोंके एकत्र हो जाने पर दस्तरख़्वान (वह वस्त्र जिसपर थाली इत्यादि रखकर भोजन करते हैं) बिछाया जाता था। उस समय भी जबतक अला-उलमुल्क भोजन समाप्त न कर लेते थे, यह लोग इसी प्रकार गाते बजाते रहते थे। सबके भोजनोपरान्त, स्वयं भोजन कर ये अपनी डोंगियोंमें चले जाते थे। रात्रि होनेपर जहाज नदीमें खड़े कर दिये जाते थे और तटपर, अमीर अलाउलमुल्कके सुखसे विश्राम करनेके लिए, डेरे लगा दिये जाते थे। निशा-कालमें, समस्त दलबलके भोजन करने तथा इशाकी नमाज़ पढ़ने (अर्थात् ८-९ बजे रात्रि) के उपरान्त प्रत्येक प्रहरी अपनी बारी समाप्ति करते समय उच्च स्वरसे प्रार्थना करता था कि अय अख़वन्द मुल्क (हे देश-सेव्य स्वामी) इतने प्रहर रात्रि व्यतीत हो चुकी है।

प्रातःकाल होते ही फिर नौबत झड़ने लगती और नगाड़े बजने लगते थे। प्रातःकालीन नमाज़के पश्चात् भोजन समाप्त होनेपर जहाज चल पड़ते थे। अमीर यदि नदी द्वारा यात्रा करना चाहते थे तो पोतमें आ बैठते थे और यदि इनका विचार स्थल-मार्गसे चलनेका होता तो सबसे आगे नौबत और नगाड़े होते थे और इनके पश्चात् 'हाजिब' (अर्थात् पर्दा उठानेवाला)। इन हाजिबोंके आगे छः घोड़े होते थे; जिनमें तीनपर तो नगाड़े होते थे और तीनपर शहनाई-वाले। किसी गाँव या ऊँचे स्थलपर पहुँचने पर तबले और नगाड़े बजाये जाते थे। दिनमें भोजनके समय विश्राम होता था।

इस प्रकार, मैं अमीर अला-उल-मुल्कके साथ पाँच दिन

रहा । और अन्तिम दिवस हम सब लोग लाहरी[1] नगर पहुँच गये ।

यह सुन्दर नगर समुद्र-तटपर वसा हुआ है। इसीके निकट सिन्धु नद समुद्रमें गिरता है। यह नगर बड़ा बन्दर-गाह (पट्टन) है। यमन (अरबका प्रान्तविशेष), फारिसके पोत तथा व्यापारियोंके अधिक संख्यामें आनेके कारण यह नगर बहुत ही समृद्धिशाली है।

अमीर अलाउलमुल्क मुझसे कहते थे कि इस बन्दरसे साठ लाख दीनार करके रूपमें वसूल होता है और उनको इसका बीसवाँ भाग मिलता है। सम्राट् भी इसी प्रमाणमें अपने कार्यकर्ताओंको इलाके देते हैं।

एक दिन मैं अमीर अलाउलमुल्कके साथ नगरके बाहर

---

(१) लाहरी—श्री हंटर महोदय अपने गैज़ेटियरमें इसका नाम लाहौरी बंदर लिखते हैं। यह अब कराँचीके जिलेमें केवल एक गाँवके रूपमें अवशिष्ट है और सिन्धु नदकी पश्चिमीय शाखापर जिसको दिवाली भी कहते हैं समुद्रसे बीस मीलकी दूरीपर स्थित है। शाखाके बहुत कुछ सूख जानेके कारण नगर भी उजड़ गया है। परंतु इब्न-बतूताके समय यह सिन्धु-प्रान्तका सबसे बड़ा बंदर समझा जाता था। आइने-अकबरीमें भी लाहरी बंदरका उल्लेख है। उस समय इसकी आय एक लाख अस्सी हज़ार रुपयेकी थी। इससे मालूम पड़ता है कि उस समय भी यह अच्छा खासा नगर रहा होगा। अठारहवीं शताब्दीके अंततक यहाँपर ईस्ट इंडिया कंपनीकी एक कोठी थी, इसके पश्चात् १९वीं शताब्दीमें तो करांचीने इसे बिल्कुल दबा दिया। इससे प्रथम 'देवल' बंदरकी खूब ख्याति थी। यह स्थान लाहरी बंदरसे ५ मीलकी दूरीपर था। गिब्जके अनुसार लाहरी बन्दर करांचीसे २८ मील दूर है।

सात कोसकी दूरीपर तारना[1] (तारण?) नामक स्थल देखने गया। यहाँपर पशुओं तथा पुरुषोंकी ठोस पाषाणकी असंख्य टूटी मूर्तियाँ और गेहूँ चना आदि अनाज तथा मिश्री आदि अन्य वस्तुएँ भी पत्थरोंमें बिखरी हुई पड़ी थीं। नगर-प्राचीर, और भवन-निर्माणकी यथेष्ट सामग्री भी फैली हुई थी। इन भग्नावशेषोंके मध्यमें एक खुदे हुए पत्थरका घर भी था, जिसके मध्यमें एक पाषाणकी वेदी बनी हुई थी। उस वेदीपर एक पुरुषकी मूर्ति थी, जिसका शिर कुछ अधिक लम्बा, और एक ओरको मुड़ा हुआ था और दोनों हाथ कमरसे कसे हुए थे। इस स्थानके जलाशयोंमें जल सड़

(१) तारना—जनरल सर कनिंगहमके अनुसंधानके अनुसार यह खंडहर सिंधुकी प्राचीन राजधानी देवलके थे जो लाहरी बंदरसे केवल पांच मीलकी दूरीपर था। इसकी पुष्टि तुहफतुलअकरामसे भी होती है। उसमें लाहरी बंदरका प्राचीन नाम 'देवल' लिखा है। फ़रिश्ता तथा अबुल फ़ज़ल 'ठट्ठा' और 'देवल' दोनोंको एक ही नगर मानते हैं परंतु यह उनका भ्रम है। ठट्ठा तो अलाउद्दीन ख़िलजीके समयमें स्थापित हुआ था। इसको कुछ लोग 'देवल—ठट्ठा' कहकर पुकारते हैं (बहुत संभव है कि यह भ्रम इसी कारण उत्पन्न हो गया हो)।

कुछ लोग 'करांची' नगरके दीपस्तंभ (Light-house) के निकट देवलकी स्थिति बतलाते हैं परंतु यह अनुमान भी मिथ्या है। 'अलिफ़लैला'में ज़ुबैदाकी एक कथा इस प्रकार है कि बसरासे चलकर जहाज़ द्वारा यात्रा करनेपर यह स्त्री भारतदेशके एक ऐसे नगरमें पहुँची जहाँके समस्त पुरुष तथा नृपतिगण तक पाषाणमें परिवर्तित हो गये थे। बहुत संभव है कि इस कथाके लेखकका इस वर्णनमें इसी नगरकी ओर संकेत हो। वर्तमान समयमें इस नगरका सर्वथा लोप हो गया है। 'पीर-पाथो' की दरगाहके निकट यह नगर बसा हुआ था।

रहा था। यहाँपर मैंने दीवारोंपर हिन्दी भाषामें कुछ खुदा हुआ भी देखा। अमीर अला-उलमुल्क कहते थे कि इस प्रान्तके इतिहासज्ञोंका ऐसा अनुमान है कि वेदी-स्थित मूर्त्ति इस भग्नावशेष नगरके राजाकी है। लोग इस समय भी इस घर को 'राज-भवन' कह कर पुकारते थे। दीवारके लेखोंसे यह पता चलता है कि इसका विध्वंस हुए लगभग एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

मैं अमीर अलाउलमुल्कके पास पाँच दिवस पर्य्यन्त रहा। इस बीचमें उन्होंने मेरा बहुत ही अधिक आतिथ्य एवं सम्मान किया और मेरे लिये ज़ादराह (अर्थात् यात्राके लिये आवश्यक भोजन, द्रव्य इत्यादि) भी तैयार करा दिया।

८—भक्कर (बक्खर ?)

यहांसे मैं भक्कर[1] पहुँचा। यह सुन्दर नगर भी सिंधुनदकी एक शाखाके मध्यमें स्थित है। इसका वर्णन मैं आगे चलकर करूँगा। इस शाखाके मध्यमें एक मठ बना हुआ है जहाँपर यात्रियोंको भोजन मिलता है। यह मठ कशलूख़ांने (जिनका वर्णन अन्यत्र किया जायगा) अपने शासनकालमें निर्माण

(१) भक्कर—वर्त्तमान कालमें रोड़ी तथा 'सक्खर' के मध्यमें सिंधुनदकी धारामें बने हुए गढ़का नाम 'भक्कर' है। यह केवल गढ़ मात्र-ही है और सदासे ऐसा ही रहा होगा। गढ़ तथा सक्खरकी मध्यवर्त्ती नदीकी धारा तो २०० गज़ चौड़ी है परंतु गढ़ तथा रोड़ीकी मध्यवर्त्ती शाखाका विस्तार ४०० गज़से कम न होगा। यह द्वितीय शाखा बहुत गहरी है।

हमारा अनुमान यह है कि इब्न-बतूताके समयमें आधुनिक सक्खर-का नाम ही भक्खर रहा होगा। रोड़ी नामक नगरकी स्थापना १२९७ हि०

कराया था। इस नगरमें मैं इमाम अब्दुल्लाहनफ़ी, नगरके क़ाज़ी अबू-हनीफ़ा और शम्स-उद्दीन मुहम्मद शीराज़ीसे मिला। अन्तिम महाशयने मुझको अपनी अवस्था एक सौ बीस वर्षकी बतायी।

६—ऊछा

भक्करसे चलकर मैं ऊचह[1] (ऊछा) पहुँचा। यह बड़ा नगर भी सिन्धु नदपर बसा हुआ है। यहाँके हाट सुन्दर तथा मकान दृढ़ बने हुए हैं।

इस समय यहाँके सर्वोच्च अधिकारी (हाकिम) प्रसिद्ध पराक्रमी तथा दयावान् सय्यद जलालउद्दीन केजी थे। घनिष्ठ मित्रता हो जानेके कारण मैं इनसे बहुधा मिला करता था। दिल्लीमें भी हम दोनों फिर मिले। सम्राटके दौलताबाद चले जाने पर यह महाशय भी उनके साथ वहाँ चले गये थे। जाते समय, आवश्यकता पड़ने पर, अपने गाँवोंको आय भी व्यय करनेकी मुझे आज्ञा दे गये। पर अवसर आ पड़ने पर मैंने केवल पाँच सहस्र दीनार ही व्यय किये।

में होनेके कारण उधरका तो विचार ही त्याग देना चाहिये। यहींपर (सक्खरमें) तारीख़ (इतिहास) 'मअसूमी' के लेखक मीर मुहम्मद मअसूम भक्करीकी समाधि एवं मीनार है। ऐसा प्रतीत होता है कि बतूताने 'भक्कर' नामक गढ़ तथा "सक्खर" नामक नगर दोनोंको एक ही समझ कर यह लिखा है कि सिन्धु नदकी शाखा इसके बीचसे होकर जाती है। वर्त्तमानकालीन गढ़से सटकर उत्तरकी ओर बने हुए ख्वाजा ख़िज़रके (नामसे प्रसिद्ध) मठको ही कशलू ख़ांने बनवाया होगा।

(१) ऊचह, ऊछह—अब यह नगर मुलतानसे सत्तर मीलकी दूरी-पर, भावलपुर राज्यमें, 'पञ्चनद' के तटपर बसा हुआ है। (पृ० २२ देखो)

इस नगरमें मैं सय्यद जलालउद्दीन[1] अलवीकी सेवामें भी उपस्थित हुआ और उन्होंने कृपा कर मुझको अपना ख़िरक़ा (चोग़ा) प्रदान किया।

इनका दिया हुआ ख़िरक़ा (चोग़ा), हिन्दू डाकुओं द्वारा समुद्रयात्रामें लूटे जानेके समयतक, मेरे पास रहा।

१०—मुलतान

ऊचहसे चलकर मैं सिन्धु-प्रान्तकी राजधानी—मुलतान[2]—आया। इस प्रान्तका गवर्नर (अमीर-उल-उमरा) भी इसी नगरमें रहता है।

प्राचीन कालमें पंजाबकी पाँचों नदियाँ ऊछाके पास सिन्धुनदसे मिलती थीं परन्तु इस समय चालीस मील नीचेकी ओर मिठ्ठन-कोटके पास मिलती हैं। मध्यकालमें यहाँ यौधेय नामक राजपूत जाति निवास करती थी।

श्री कनिंगहम साहबके मतमें यह नगर एलैक्ज़ेण्डर द्वारा बसाया गया था। नासिर-उद्दीन कबाचहके समयमें यह सिन्धु-प्रान्तकी राजधानी थी।

बुखारा और गीलानके सय्यद यहाँ बसे हुए हैं। सय्यद जलाल-बुखारी तथा मख़दूम जहानियाँकी समाधियाँ भी यहाँ ही बनी हुई हैं परन्तु वे चित्ताकर्षक न होनेके कारण दर्शन योग्य नहीं हैं। समाधि-द्वारपर इनके कालनिर्णायक पद (शैर) भी लिखे हुए हैं, जिनसे पता चलता है कि बतूताके आगमनके समय श्री मख़दूम जहानियाँकी अवस्था २७ वर्षकी थी। उनके दादा श्री जलाल-उद्दीनका देहावसान बहुत दिन पहिले हो चुका था।

(१) यह जलालउद्दीनके पोते थे। इन्होंने ही फीरोज तुगलककी जाम बअंबियासे सन् १३६१ में सन्धि करायी थी।

(२) मुलतान बहुत प्राचीन नगर है। सिकंदरके भारतमें आनेके समय यह नगर 'माहंन्स' जातिकी राजधानी था। जनरल

नगर पहुँचनेसे दस कोस प्रथम एक छोटी परन्तु गहरी नदी पड़ती है जिसे नावोंकी सहायता बिना पार करना अस-

कनिंगहम साहबकी सम्मतिमें 'सूर्य-भगवान्' के मंदिरके कारण इसकी प्रसिद्धि हुई। सन् ६४१ ई० में प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन् संग जब भारतमें आया तो उस समय भी इस मंदिरका अस्तित्व था और यह पाँच मीलके घेरेमें बसा हुआ था। बिलादुरी भी (८७५ ई० में) इस मूर्तिका वर्णन करते हुए लिखता है कि समस्त सिंधु-प्रान्तके यात्री यहाँ आकर सिर तथा दाढ़ी इत्यादि मुँड़ा मंदिरकी परिक्रमा करते हैं। अबूज़ैद तथा मसऊदीने भी (९२० ई०) में इसका वर्णन किया है। इब्न हौक़ल (९७६ ई०) का कथन है कि एक पुरुषाकार मूर्ति वेदीपर बनी हुई थी। इसकी आँखोंमें हीरे लगे हुए थे और शरीर रक्त चर्मसे आच्छादित था। यह पता नहीं चलता कि यह मूर्ति किस वस्तुसे बनायी गयी थी। इब्न-हौक़लके कुछ काल पश्चात् 'क़रामतह' ने इस नगरको जीत लिया और मूर्ति तोड़कर उस स्थानमें एक मसजिद बनवा दी। अबूरिहानके समय यह मूर्ति न थी। औरंगज़ेबके राज्यकालमें एक फ्रांसीसी यात्री यहाँ आया था और उसका भी इस मूर्तिके संबंधमें दिया हुआ वर्णन इब्न हौक़लके वर्णनसे ठीक मिलता है, परन्तु लोग कहते थे कि औरंगज़ेबने मंदिर तोड़कर क़िलेमें मसजिद बनवा दी है। सिक्खकालमें मूलराजके समय यह मसजिद मुलतानके घेरे जानेपर, मैगज़ीनके काममें लायी जाती थी और अग्नि-लग जानेके कारण एक दिन उड़गयी। जनरल कनिंगहम साहबने इसके खंडहर (सन् १८५३ में) खुदवा कर देखे थे और वह गढ़के मध्य-भागमें मिले जिससे पश्चिमीय यात्रियोंके इस कथनकी पुष्टि होती है कि मंदिर बाज़ारके मध्यमें बना हुआ था। बहुत संभव है कि नगरसे पाँच मील दूर बनेहुए वर्त्तमान 'सूर्यकुंड' का इस मंदिरसे कुछ संबंध हो।

इस नगरमें शाह रुक्न आलमकी समाधि भी बनी हुई है। कहा जाता है कि गयासउद्दीन तुग़लकने यह अपने लिए बनवायी थी परंतु मुहम्मद-

म्भव है। यहींपर पार जानेवालोंकी तथा उनके माल असबाबकी जाँच पड़ताल होती है। पहिले तो प्रत्येक व्यापारीके मालका चौथाई भाग कर-रूपमें लिया जाता था और प्रत्येक घोड़ेके पीछे सात दीनार देने पड़ते थे, परन्तु मेरे भारत-आगमनके दो वर्ष पश्चात् सम्राट्ने यह सभी कर उठा लिये। अब्बास वंशीय खलीफाका शिष्यत्व स्वीकार कर लेनेके पश्चात् तो उश्र[1] और ज़कातके[2] अतिरिक्त कोई कर ही नहीं रह गया।

शाह तुग़लकने इसे शाहरुक्न आलमको प्रदान कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि इब्नबतूताने नगरसे दस मील पहिले जिस नदीको पार करनेका उल्लेख किया है वह 'रावी' थी। यदि रावी, चिनाब और झेलम इन तीनों नदियोंको पार करता तो छोटी नदी न लिखता। सन् ७१४ई० में मुहम्मद क़ासिम सक़फ़ीके मुल्तान-विजय करनेके समय व्यास नदी इस जिलेके दक्षिण-पूर्व कोणमें बहती थी और रावी नदी ज़िलेके नीचे नगरके बीचसे जाती थी। तैमूरके समयतक रावी नदी नगर तथा क़िलेके दोनों ओर बहती रही। कुछ लोगोंके मतमें महाराज श्रीकृष्णचंद्रके पुत्र साँबका कुष्ट-रोग भी इसी स्थानपर सूर्यकी उपासनाके कारण जाता रहा था। इस मंदिरकी स्थापना भी उन्हींके समयमें शाकद्वीपी ब्राह्मणों द्वारा यहाँपर हुई और सूर्य-पूजा भारतमें प्रचलित हुई। सिकन्दरने भी भारतमें इसी स्थान तक विजय की थी। इसके पश्चात् वह सिन्धुकी ओर चला आया।

(१) उश्र—यह एक कर है, जो $\frac{१}{१०}$ के बराबर होता है। मुसलमान राज्यमें वस्तुओंका $\frac{१}{१०}$ भाग अथवा उसका मूल्य सर्कारी ख़ज़ानेमें जमा होता था। इसे उश्र कहते थे। सम्राट् द्वारा किसी पुरुषको नक़द रुपया उपहार स्वरूप मिलने पर भी उसका $\frac{१}{१०}$ भाग काट कर शेष $\frac{९}{१०}$ ही वास्तवमें उसको दिया जाता था।

(२) 'ज़कात'—मुसलमान धर्मानुसार समस्त व्यय करनेके उपरांत शेष आयमें से $\frac{१}{४०}$ वाँ भाग दान करना पड़ता है। यह ज़कात कहलाता

मेरा असबाब वैसे तो बहुत दीखता था परन्तु उसमें था कुछ नहीं, अतएव मुझे बड़ी चिन्ता हो रही थी कि कहीं कोई खुलवा न दे। ऐसा होने पर तो सारा भरम ही खुल जाता। मुलतानसे कुतुब-उल-मुल्कके एक सेनानायकको यह आदेश देकर भेज देनेके कारण कि मेरा सामान खुलवाया न जाय, मेरा सामान किसीने छुआ तक नहीं और इस कारण मैंने ईश्वरको बार बार धन्यवाद दिया।

हम रातभर नदीके किनारे ही टिके रहे। प्रातःकाल होते ही 'दहक़ाने-समरकन्दी' नामक सम्राट्का प्रधान डाक-अधिकारी तथा अख़बार-नवीस मेरे पास आया। मैं उससे मिला और उसीके साथ मुलतानके हाकिमके पास, जिनको कुतुब-उल-मुल्क कहते थे, गया। यह बड़े विद्वान् एवं धनाढ्य थे और इन्होंने मेरा बहुत आदर-सत्कार किया। मुझे देखते ही खड़े हो गये, हाथ मिलाया और अपने बराबर स्थान दिया। मैंने भी एक दास, एक घोड़ा और कुछ किशमिश, बादाम उनकी भेंट किये। ये दोनों मेवे इस देशमें उत्पन्न नहीं होते—खुरासानसे आते हैं—इसी कारण इनकी भेंट दी जाती है।

यह अमीर महोदय फ़र्श बिछे हुए बड़ेसे चबूतरेपर बैठे हुए थे। 'सालार' नामक नगरके क़ाज़ी और 'ख़तीब'—जिनका नाम मुझे स्मरण नहीं रहा, इनके पास बैठे हुए थे। इनके बाम तथा दाहिनी ओर सेनाके नायक बैठे थे और पीछेकी ओर सशस्त्र सैनिक खड़े थे। सामने सैन्य-संचालन होता था। बहुतसे धनुष भी यहाँपर पड़े हुए थे जिनको खींचकर कोई कोई मनचले पदाति अपनी शूरता दिखाते थे। घुड़-

---

है। परन्तु समस्त व्यय करनेके बाद यदि किसी व्यक्तिके पास ४० ६० या इससे कुछ कम धन शेष रह जाय तो कुछ भी ज़कातमें नहीं देना पड़ता।

सवारोंके लिए दौड़कर बर्छेसे छेदनेके निमित्त दीवारमें एक छोटासा नगाड़ा रखा हुआ था। घोड़ा दौड़ा कर भालेकी नोकपर उठा कर ले जानेके लिए एक अंगूठी लटक रही थी। घोड़ा दौड़ा कर चौगान खेलनेके लिए एक गेंद भी पड़ा हुआ था। इन कार्योंमें हस्त-लाघव, तथा कुशलता प्रदर्शित करने-पर ही प्रत्येककी पदोन्नति निर्भर थी।

मेरे उपर्युक्त विधिसे कुतुब-उल-मुल्कका अभिवादन करने पर उन्होंने मुझको शैख़ रुक्न-उद्दीन कुरैशीके परिवारके साथ नगरमें रहनेकी आज्ञा दी। यह परिवार हाकिमकी आज्ञा बिना किसीको अपने यहाँ अतिथि रूपमें नहीं रहने देता था।

इस समय इस नगरमें अन्य बहुतसे ऐसे श्रद्धेय बाह्य पुरुष भी ठहरे हुए थे जो सम्राट्की सेवामें दिल्ली जा रहे थे। इनमें तिरमिज़के काज़ी खुदावंदज़ादह कवामउद्दीन (और उनका परिवार), उनके भ्राता इमादउद्दीन, ज़ियाउद्दीन तथा बुरहान-उद्दीन, मुबारकशाह नामक समरक़न्दके एक धनाढ्य व्यक्ति, अखबग़ा बुखाराका एक अधिपति, खुदावन्दज़ादहका भानजा मलिक ज़ादा, और बद्र-उद्दीन फ़स्साल मुख्य थे। प्रत्येकके साथ इष्टमित्र तथा दास आदि अन्य पुरुष भी थे।

मुलतान पहुँचनेके दो मास पश्चात् सम्राट्का हाजिब (पर्दा उठानेवाला) और मलिक मुहम्मद हरवी कोतवाल तीन दासोंके साथ खुदावन्दज़ादह क़वाम-उद्दीनकी अभ्यर्थना-को आये। खुदावन्दज़ादहकी पत्नीके शुभागमनके निमित्त राज-माता मख़दूमेजहाँ (जगत्-सेव्या) ने इनको खिलअत सहित भेजा था। और इन्होंने खुदावन्दज़ादह और उनके पुत्रोंको सरापा भेंट किये। मैंने अख़वन्देआलम (संसारसेव्य) अर्थात्

सम्राट्की सेवा करनेका विचार प्रकट किया (सम्राट्को यहां पर इसी नामसे पुकारते हैं)।

बादशाहका आदेश था कि यदि खुरासानकी ओरसे आने वाले किसी व्यक्तिका इस देश (भारत) में ठहरनेका विचार न हो तो उसको यहाँसे आगे न बढ़ने दिया जाय। इस देशमें ठहरनेका विचार प्रकट करनेके कारण काज़ी तथा साक्षीको बुला मुझसे एक अहदनामा लिखवा लिया गया; परन्तु मेरे कुछ साथियोंने दस्तख़त करना अस्वीकार कर दिया। इन कार्योंसे निपट मैंने दिल्लीको प्रस्थान करनेकी तैयारी प्रारंभ कर दी। मुलतानसे दिल्लीतक चालीस दिनका मार्ग है और बीचमें बराबर आबादी चली गयी है।

११—भोजन-विधि

हाजिब (पर्देदार) और उसके साथियोंने खुदावन्द ज़ादहके भोजनका प्रबन्ध मुलतानसे ही कर लिया था। इन लोगोंने बीस रसोइये साथ ले लिये थे, जो एक पड़ाव आगे चलते थे और खुदावन्दज़ादहके वहाँ पहुँचनेके पहिले ही भोजन तैयार हो जाता था।

जिन पुरुषोंका मैंने ऊपर वर्णन किया है वे सब ठहरते तो पृथक् पृथक् डेरोंमें थे परन्तु भोजन खुदावन्दज़ादहके साथ एक ही दस्तरख़्वान (भोजनके नीचेका वस्त्र) पर करते थे। मैं केवल एक बार इस भोजमें सम्मिलित हुआ। भोजनका क्रम इस प्रकार था। सर्व प्रथम तो बहुत पतली रोटियाँ आती थीं जिनको चपाती कहते हैं और बकरीको भून कर उसके चार या पाँच टुकड़े प्रत्येकके संमुख धरते थे। इसके पश्चात् घीमें तली हुई रोटियाँ (पूरियाँ) आती थीं और इनके मध्यमें

'हलुआ साबूनिया' भरा होता था। प्रत्येक टिकियाके ऊपर 'ख़िश्ती' नामक एक प्रकारकी मीठी रोटी रखते थे, जो आटा, घी तथा शर्करा द्वारा तैयार की जाती है। इसके पश्चात् चीनीकी रकाबियोंमें रखकर क़लिया (सूप-रसयुक्त मांस) लाते थे। यह मांसविशेष घी, प्याज़ तथा अद्रक आदि पदार्थ डालकर बनाया जाता है। इसके पश्चात् 'समोसा' आता था—यह बादाम, पिस्ता, जायफल, प्याज़ तथा गरममसाले मांसमें मिला कर रोटियोंमें लपेट घीमें तल कर तैयार किया जाता है। प्रत्येक पुरुषके सम्मुख ४-५ समोसे रक्खे जाते थे। इसके पश्चात् घीमें पके हुए चावल आते थे और उनपर मुर्गका मांस होता था। इसके अनन्तर लुक़ीमात अलक़ाज़ी अर्थात् हाशमी नामक पदार्थ आता था और इसके अनन्तर क़ाहरिया लाते थे।

भोजन प्रारम्भ होनेके पहले हाजिब दस्तरख़्वानपर खड़ा हो जाता है और वह तथा एकत्र हुए सभी पुरुष सम्राट्की अभ्यर्थना करते हैं। इस देशमें खड़े होकर शिरको रुकूअ़ (नमाज़ पढ़ते समय हाथ बाँधकर शिरको आगेकी ओर झुकानेकी मुद्रा) की भाँति नीचे झुका कर अभ्यर्थना की जाती है। इसके पश्चात् दस्तर-ख़्वानपर बैठते हैं। भोजनके पहले सोने, चाँदी अथवा काँचके प्यालोंमें गुलाबका शरबत पिया जाता है जिसमें मिश्री मिली होती है। इसके पश्चात् हाजिबके 'बिस्मिल्लाह' कहने पर भोजन प्रारम्भ होता है। फिर फ़िक्क़ाअ़[1] के प्याले आते हैं। उसको पान कर लेनेके अनन्तर पान-सुपारी

(१) फिक्क़ाअ—यह एक प्रकारकी मदिरा होती है। फ़ारसी भाषाका शब्दकोष देखनेसे पता चलता है कि यह अनार तथा अन्य फलोंके अर्कसे तैयार की जाती थी।

आती है और फिर हाजिबके बिस्मिल्लाह कहने पर सब उठ खड़े होते हैं और भोजन शुरू होनेके पहलेकी तरह फिर अभ्यर्थना की जाती है। इसके पश्चात् सब विदा होते हैं।

दूसरा अध्याय

मुलतानसे दिल्लीकी यात्रा

(१) अबोहर

मुलतानसे चलकर हम अबोहर[1] नामक नगरमें पहुँचे जो (वास्तवमें) भारतवर्षका सर्व-प्रथम नगर है। छोटा होनेपर भी यह नगर (बहुत) रमणीक है और मकान भी सुन्दर बने हुए हैं। नहरों तथा वृक्षोंकी भी यहाँ बहुतायत

---

(१) अबोहर—'इब्नबतूता' इस नगरकी स्थिति मुलतान और पाकपट्टनके मध्यमें अजोधनसे तीन पड़ाव मुलतानकी ओर बताता है, जो आधुनिक फीरोज़पुर जिलेकी फ़ाज़लका नामक तहसीलमें है। यह वास्तवमें पाकपट्टन और सिरसेकी सड़कपर 'पाक-पट्टन' से ६० मील (अर्थात् तीन पड़ावकी दूरी) पर दिल्लीकी ओर दक्षिणीय पञ्जाब रेलवेपर स्थित है। इब्नबतूताको समुद्री डाकुओंने मालाबार तटपर लूट लिया था और उसी समय इसका हस्तलिखित यात्रा-विवरण भी जाता रहा था। आधुनिक विवरण तो उसने २५ वर्ष उपरान्त अपनी स्मृतिके आधार-पर लिखवाया है। इसीलिये कहीं कहीं नगरोंकी स्थिति भ्रमवश आगे पीछे हो गयी है। यहाँपर भी इसी कारणसे यह नगर 'दिल्लीकी ओर तीन पड़ाव' लिखनेके स्थानमें 'मुलतानकी ओर' लिख दिया गया है। इसी प्रकारसे इब्नबतूताने इसी स्थलके दुर्गम पर्वतोंमें हिन्दुओंका निवासस्थान

है। अपने देशके वृक्षोंमें तो हमको केवल 'वेर' ही दीख पड़ा, परन्तु उसका फल हमारे देशके फलोंसे (कहीं) अधिक बड़ा और सुस्वादु था; आकारमें वह माजू-फलके बराबर था।

(२) भारतवर्षके फल

इस देशमें 'आम'[१] नामक एक फल होता है जिसका वृक्ष होता तो नारंगीकी भाँति है परन्तु डीलमें उससे कहीं अधिक बड़ा होता है और पत्ते खूब सघन होते हैं; इस वृक्षकी छाया खूब होती है परन्तु इसके नीचे सोनेसे लोग आलसी हो जाते हैं। फल अर्थात् आम 'आलू बुख़ारे' से बड़ा होता है। पकनेसे पहले यह फल देखनेमें हरा दीखता है। जिस प्रकार हमारे देश (मोराक्को) में नीबू तथा खट्टेका अचार बनाया

लिख दिया है परन्तु अबोहरके पास तो दो दो सौ मीलकी दूरीतक भी कोई पर्वत नहीं है। सम्भव है कि रेतके पर्वतोंमें ही किसीने हिन्दुओंका वास बतूताको बतला दिया हो।

अबोहरमें पुराना गढ़ भी बना हुआ है। इब्नबतूताके समयसे कुछ ही काल पहिले अबोहरके तिलोंडी नामक स्थानविशेषमें यहीं राजपूतोंके वंशज राजा रानामल (रणमल) का निवासस्थान था, जिसकी पुत्री सालार रजब अर्थात् मुहम्मद तुग़लक़ (सम्राट्) के चाचा को व्याही गयी थी। और उसके गर्भसे फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ उत्पन्न हुआ। उस समय अबोहर-में सम्राट् अलाउद्दीन ख़िलजीकी ओरसे सिराज अफ़ीफ़का चाचा 'अमलदार' था। इससे भी यही प्रतीत होता है कि अबोहर उन दिनोंमें अवश्य ही प्रसिद्ध नगर रहा होगा।

१ 'लुक़मा न रवद ज़ेर गर अचार न याबी' अमीर खुसरोकी इस उक्तिसे भी इस कथनकी पुष्टि होती है। खुसरोका देहांत हिजरी सन् ७२५ में अर्थात् बतूताके भारत आनेके ९ वर्ष पहिले होगया था।

जाता है, उसी प्रकार कच्ची दशामें पेड़से गिरने पर इस फलका भी नमक डालकर लोग अचार बनाते हैं। आमके अतिरिक्त इस देशमें अद्रक और मिर्चका भी अचार बनाया जाता है। अचारको लोग भोजनके साथ खाते हैं; प्रत्येक ग्रासके पश्चात् थोड़ा सा अचार खानेकी प्रथा है। ख़रीफमें आम पकनेपर पीले रंगका हो जाता है और सेवकी भाँति खाया जाता है। कोई चाकूसे छील कर खाता है तो कोई यों हीं चूस लेता है। आमकी मिठासमें कुछ खट्टापन भी होता है। इस फलकी गुठली भी बड़ी होती है। खट्टेकी भाँति आमकी भी गुठली बो देनेपर वृक्ष फूट निकलता है।

कटहल—(शकी; बरकी) इसका वृक्ष बड़ा होता है: पत्ते अखरोटके पत्तोंसे मिलते हैं और फल पेड़की जड़में लगता है। धरातलसे मिले हुए फलको बरकी कहते हैं। यह खूब मीठा और सुस्वादु होता है। ऊपर लगनेवाले फलका चकी कहते हैं। इसका आकार बड़े कद्दूकी तरह और छिलका गायकी खालके सदृश होता है। खरीफमें इसका रंग खूब पीला पड़ जाने पर जब लोग इसको तोड़ते हैं तो प्रत्येक फलमें खीरेके आकारके १०० या २०० कोये निकलते हैं। कोयोंके मध्यमें एक पीले रंगकी झिल्ली होती है। प्रत्येक कोयेके भीतर बाक़लेकी भाँति गुठली होती है, भूनकर या पकाकर खानेसे इसका स्वाद भी बाक़लेका सा प्रतीत होता है।

बाक़ला इस देशमें नहीं होता। लाल रंगकी मिट्टीमें दबा कर रखनेसे यह गुठलियाँ अगले वर्षतक भी रह सकती हैं। इसकी गणना भारतवर्षके उत्तम फलोंमें की जाती है।

तेंदू—आबनूसके पेड़का फल है। यह रंग और आकारमें खुबानीके समान होता है। यह बहुत ही मीठा होता है।

जम्मू—(जामुन) इसका पेड़ बड़ा होता है। फल ज़ैतून की भाँति होता है। रंग कुछ कलौंस लिये होता है और इसके भीतर भी जैतूनकी सी गुठली होती है।

नारंगी—(शीरीं नारंज) इस देशमें बहुत होती है। नारंगियाँ अधिकतया खट्टी नहीं होतीं। कुछ कुछ खटास लिये, एक प्रकारकी मीठी नारंगियाँ मुझे बड़ी प्रिय लगती थीं और मैं उनको बड़े चावसे खाया करता था।

महुआ[१]—इसका पेड़ बहुत बड़ा होता है। पत्ते भी अखरोटके पत्तोंकी भाँति होते हैं, केवल उनके रंगमें कुछ ललौंही और पीलापन अधिक होता है। फल छोटे आलू बुख़ारे के समान होता है और बहुत मीठा होता है। प्रत्येक फलके मुख पर एक छोटा किशमिशकी भाँति मध्यमें दाना होता है, जिसका स्वाद अंगूरका सा होता है। इसके अधिक खानेसे सिरमें दर्द हो जाता है। सूख जाने पर यह अंजीरके समान हो जाता है और मैं अंजीरके स्थानमें इसका ही सेवन किया करता था। अंजीर इस देशमें नहीं होता। महुएके मुखपरके छूटे दानेको भी अंगूर कहते हैं। भारतमें अंगूर बहुत ही कम होता है। दिल्ली तथा अन्य कतिपय स्थानोंके अतिरिक्त शायद ही कहीं होता हो। महुएके पेड़ सालमें दो बार फलते हैं। इसकी गुठलीका तेल निकाल कर दीपोंमें जलाया जाता है।

कसेहरा (कसेरू) धरतीसे खोदकर निकाला जाता है। यह क़सतल (फल विशेष) की भाँति होता है और बहुत मीठा होता है।

---

१ 'बतूता' महुएके फूल और फलमें भेद न समझ सका। जिसको उसने अंगूरके समान लिखा है वह वास्तवमें फूल है। उसके गिर जानेपर फल निकलते हैं।

हमारे देशके फलोंमेंसे अनार भी यहाँ होता है और वर्षमें दो बार फलता है। माल-द्वीपसमूहमें अनारके पेड़में मैंने बारहो महीने फल देखे।

(३) भारतके अनाज

यहाँ सालमें दो फ़सलें होती हैं। गर्मी पड़ने पर वर्षा होती है और उस समय ख़रीफ़की फ़सल बोयी जाती है। यह फसल बोनेके ६० दिन पीछे काटी जाती है। अन्य अनाजोंके अतिरिक्त इसमें निम्नलिखित अनाज भी उत्पन्न होते हैं—कज़रु,[१] चीना, शामाख़ अर्थात् साँवक जो चीनासे छोटा होता है और विरक्तों, साधुओं, संन्यासियों तथा निर्धनोंके खानेके काममें आता है। एक हाथमें सूप और दूसरे हाथमें छोटी छड़ी लेकर पौदेको झाड़नेसे साँवकके दाने (जो बहुतही छोटे होते हैं) सूपमें गिर पड़ते हैं। धूपमें सुखा कर काठकी ओखली में डालकर कूटनेसे इनका छिलका पृथक् हो जाता है और भीतरका श्वेत दाना निकल आता है। इसकी रोटी भी बनायी जाती है और खीर भी पकाते हैं। भैंसके दूधमें इसकी बनी हुई खीर रोटीसे कहीं अधिक स्वादिष्ट होती है। मुझे यह खीर बहुत प्रिय थी, और मैं इसको बहुधा पका कर खाया करता था।

माश—(फ़ारसी भाषामें मूँगको कहते हैं) यह भी मटरकी एक क़िस्म है। परन्तु मूँग कुछ लंबी और हरे रंगकी होती है। मूँग और चावलका कशरी (खिचड़ी) नामक भोजन

(१) कज़रु—आइने-अकबरीमें इसका नाम कदरुं और कुदरम लिखा है। जनसाधारण इसको कोदो कहते हैं। मुफ्त शिक्षा पाकर भी जिसको कुछ न आया हो उसे हिन्दीकी कहावतमें कहते हैं कि 'कोदो देकर पढ़ा है।' अर्थात् पढ़ाईपर कुछ भी खर्च नहीं किया।

विशेषतः बनाया जाता है। जिस प्रकार हमारे देश (मोराक्को) में प्रातःकाल निहारमुख (सर्व-प्रथम) हरीरा लेनेकी प्रथा है, उसी प्रकार यहाँपर लोग घी मिलाकर खिचड़ी खाते हैं।

लोभिया—यह भी एक प्रकारका बाक़ला है।

मोठ—यह अनाज होता तो कज़रुके समान है परन्तु दाना कुछ अधिक छोटा होता है। चनेकी भाँति यह अनाज भी घोड़ों तथा बैलोंको दानेके रूपमें दिया जाता है। यहाँके लोग जौको इतना बलदायक नहीं समझते; इसी कारण चने अथवा मोठको दल लेते हैं और पानीमें भिगोकर घोड़ोंको खिलाते हैं। घोड़ोंको मोटा करनेके लिए हरे जौ खिलाते हैं। प्रथम दस दिन पर्यन्त उसको प्रतिदिन तीन या चार रत्तल (१½ सेर = ३ रत्तल) घी पिलाया जाता है। इन दिनोंमें उससे सवारी नहीं ली जाती, और इसके पश्चात् एक मासतक हरी मूँग खिलाते हैं। उपर्युक्त अनाज खरीफ़की फसलके थे। इसके अतिरिक्त तिल और गन्ना भी इसी फसलमें बोया जाता है।

ख़रीफकी फसल बोनेके ६० दिन पश्चात् धरतीमें रबीकी फसलका अनाज—गेहूँ, चना, मसरी, जौ इत्यादि बो दिये जाते हैं। यहाँकी धरती सब अच्छी और सदा फूलती फलती रहती है। चावल तो एक वर्षमें तीन बार बोया जाता है। इसकी उपज भी अन्य अनाजोंसे कहीं अधिक होती है।

(४) अबी बक्खर

अबोहरसे चलकर हम एक जंगलमें पहुँचे जिसको पार करनेमें एक दिन लगता है। इस जंगलके किनारे बड़े बड़े दुर्गम पहाड़ हैं, जिनमें हिन्दुओंका वासस्थान बना हुआ है। इनमेंसे कुछ लोग डाके भी डालते हैं। हिन्दू, सम्राटकी ही

प्रजा हैं और उन्हींकी अनुकम्पाके कारण गाँवोंमें मुसलमान हाकिमोंकी अधीनतामें रहते हैं। बादशाह जिसको गाँव या नगरविशेष जागीरमें दे देता है, वही जागीरदार या 'आमिल' इस मुसलमान हाकिमका अफसर होता है। सम्राट्‌की आज्ञा-की अवहेलना कर बहुतसे हिन्दू इन्हीं दुर्गम पर्वतोंको अपना वासस्थान बना, स्वयं सम्राट्‌से लड़ने अथवा डाका डालने-को सदा उतारू रहते हैं। और लोग तो अबोहरसे प्रातः काल ही चल दिये परंतु मैं कुछ लोगोंके साथ अभी वहीं ठहरा रहा और दोपहरके पश्चात् आगे चला। हमारे साथ अरब तथा फारस दोनों देशोंके कुल मिलाकर बाइस सवार थे। जंगलमें पहुँचनेपर अस्सी पैदल तथा दो सवारों (हिं-दुओं) ने हमारे ऊपर धावा बोल दिया। हमारे साथी भी खूब शूरवीर और उत्साही थे, इसलिये जी तोड़ कर लड़े। अंतमें विपक्षियोंके बारह पैदल और एक सवार कुल मिला-कर तेरह खेत रहे। मेरे घोड़ेके और मेरे दानोंके ही, एक-एक तीर लगा, परंतु इन लोगोंके तीर बहुत ही तुच्छ थे। हमारी ओरका भी एक घोड़ा घायल हुआ। विपक्षियोंका घोड़ा हमने अपने साथी को दे दिया और घायल घोड़ेको हमारे तुर्क साथी ज़िबह कर चट कर गये। विपक्षियोंके मृतकोंके शिर काट ले जाकर हमने अबी बक्खरके[1] गढ़में

---

(१) अबी बक्खर—पाक पट्टनसे लगभग एक पड़ावकी दूरीपर ज़िले मुलतानमें मैलसी नामक तहसीलके धालू नामक गाँवमें अबू-बकर नामक प्राचीन, प्रतिष्ठित महात्माका मठ बना हुआ है। बहुत संभव है कि उपर्युक्त स्थान यहीं रहा हो। यदि हमारा अनुमान ठीक हो तो बड़े आश्चर्यकी बात है कि बतूता जैसे अरब यात्रीने इस प्रसिद्ध महापुरुषके मठका वर्णन क्यों नहीं किया।

प्राचीरपर लटका दिये। अबी बक्कर हम आधी राततक पहुँच सके। और वहाँसे चलकर दो दिनमें अजोधन पहुँचे।

(५) अजोधन[1]

यह छोटासा नगर शैख़ फ़रीद-उद्दीन (बदाऊनी) का है। शैख बुरहान-उद्दीन इस्कन्दरी (एलेक्जैण्ड्रिया-निवासी) ने चलते समय मुझसे कहा था कि शैख़[2] फ़रीद-उद्दीनसे तेरी मुलाक़ात होगी। ईश्वरको अनेक धन्यवाद है कि अब मैं इनसे

---

(१) अजोधन—पाकपट्टनका प्राचीन नाम है। बाबा फ़रीदका मठ यहाँपर होनेके कारण सम्राट् अकबरकी आज्ञानुसार इसका नाम बदल कर पाकपट्टन कर दिया गया। पहिले इसको फ़रीदपट्टन कहा करते थे। अब यह नगर सतलज नदीसे उत्तरकी ओर दस मीलकी दूरी-पर मॉंटगूमरी जिलेकी एक तहसीलका प्रधान स्थान है। बाबा फरीदकी समाधिपर अब भी प्रत्येक वर्ष बड़ा भारी मेला लगता है और प्रत्येक पुरुष भिश्तीकी खिड़कीसे निकलनेका प्रयत्न करता है। आईने-अकबरीमें इस नगरका नाम केवल 'पट्टन' लिखा है। और फरिश्तामें 'पट्टन बाबा फरीद'। यह नगर प्राचीन कालमें सतलज नदीपर बसा हुआ था और कनिंगहम साहबके कथनानुसार 'अयोधन' नामक किसी हिंदू संत अथवा राजाने इसको बसाया था। मध्यकालमें 'सुराक' (अर्थात् मद्यपान करने-वाली एक जातिविशेष) इस प्रांतमें बसी हुई थी और सिकन्दरके विजय-कालतक यहीं रहती थी। तैमूर आदि प्राचीन महापुरुषोंने यहींपर सतलज पार कर भारतमें प्रवेश किया था।

(२) शैख़ फ़रीद-उद्दीन—बतूताने यहाँ ग़लती की है। सम्राट्के गुरुका नाम था अलाउद्दीन। इन्हीं महाशयके पुत्रोंके नाम मुईजउद्दीन व इल्मउद्दीन थे। सम्राट् मुहम्मद तुग़लकने अपने इन गुरु महाशयकी समाधिपर एक बड़ा भव्य गुम्बद बनवाया।

मिला। यह भारत-सम्राट्के गुरु हैं, और सम्राट्ने यह नगर इनको प्रदान किया है। शैख महाशय बड़े ही संशयी जीव हैं, यहाँतक कि न तो किसीसे मुसाफ़ा (अपने दोनों हाथोंसे दूसरे पुरुषके हाथोंको प्रेमपूर्वक पकड़ कर अभिवादन करना) करते और न किसीके निकट आकर ही बैठते हैं। वस्त्रतक छू जाने पर धोते हैं। मैं इनके मठमें गया, और इनसे मिलकर शैख बुरहान-उद्दीनका सलाम कहा तो ये बड़े आश्चर्यका भाव दिखाकर बोले कि 'किसी औरको कहा होगा'। इनके दोनों पुत्रोंसे भी मैं मिला। दोनों हीं बड़े विद्वान् थे। इनके नाम मुईज़उद्दीन और इल्मउद्दीन थे। मुईज़उद्दीन बड़े थे और पिताकी मृत्युके उपरान्त सज्जादानशीन हुए। इनके दादा शैख फ़रीद-उद्दीन बदाऊनीकी समाधिके भी मैंने जाकर दर्शन किये। बदाऊँ नामक नगर संभलके इलाक़ेमें है। यहाँसे चलते समय इल्मउद्दीनने अपने पूजनीय पितासे मिलनेके लिए मुझसे कहा। उस समय वह श्वेत वस्त्र पहिने सबसे ऊँची छतपर विराजमान थे और सिरपर बँधे हुए बड़े साफ़ेका शमला उनके एक ओर लटक रहा था। उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया और मिश्री तथा बताशे प्रसाद रूपमें भेजे।

(६) सती-वृत्तांत

मैं शैख महाशयके मठसे लौटने पर क्या देखता हूँ कि जिस स्थानपर हमने डेरे लगाये थे उस ओरसे लोग भागे चले आते हैं। इनमें हमारे आदमी भी थे। पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि एक हिन्दूका देहांत हो गया है, चिता तैयार की गयी है और उसके साथ उसकी पत्नी भी जलेगी। उन

दोनोंके जलाये जानेके उपरांत हमारे साथियोंने लौट कर कहा कि वह स्त्री तो लाशसे चिपट कर जल गयी।

एक बार मैंने भी एक हिन्दू स्त्रीको बनाव-सिंगार किये घोड़ेपर चढ़कर जाते हुए देखा था। हिन्दू और मुसलमान इस स्त्रीके पीछे चल रहे थे। आगे आगे नौबत बजती जाती थी, और ब्राह्मण (जिनको यह जाति पूजनीय समझती है) साथ साथ थे। घटनाका स्थान सम्राट्की राज्यसीमाके अन्तर्गत होनेके कारण बिना उनकी आज्ञा प्राप्त किये जलाना संभव न था। आज्ञा मिलने पर यह स्त्री जलायी गयी।

कुछ काल पश्चात् मैं 'अबरही'[1] नामक नगरमें गया, जहाँके निवासी अधिक संख्यामें हिन्दू थे पर हाकिम मुसलमान था। इस नगरके आसपासके कुछ हिन्दू ऐसे भी थे जो बादशाहकी आज्ञाकी सदा अवहेलना किया करते थे। इन्होंने एक बार छापा मारा, अमीर (नगरका हाकिम) हिन्दू मुसलमानोंको लेकर इनका सामना करने गया तो घोर युद्ध हुआ और हिंदू प्रजामें सात व्यक्ति खेत रहे। इनमेंसे तीनके स्त्रियाँ भी थीं। और उन्होंने सती होनेका विचार प्रकट किया। हिंदुओंमें प्रत्येक विधवाके लिए सती[2] होना आवश्यक नहीं है परन्तु पतिके साथ स्त्रीके जल जानेपर वंश प्रतिष्ठित गिना जाता है और उसकी भी पतिव्रताओंमें गणना होने लगती है।

---

(१) अबरही—संभवतः यह सिंधु प्रांतके रोड़ी नामक ज़िलेमें आधुनिक 'उबाउस' नामक तहसीलका प्राचीन नाम है।

(२) सती—अबुल फज़लका मत है कि उस समय स्त्रियाँ, लज्जा, भय तथा परंपराके कारण, अस्वीकार न कर सकती थीं और लाचार हो कर सती हो जाती थीं। लार्ड विलियम बैंटिंकके समयमें सन् १८२९ से यह कुप्रथा बंद कर दी गयी।

सती न होनेपर विधवाको मोटे मोटे वस्त्र पहिन कर महा कष्टमय जीवन तो व्यतीत करना पड़ता ही है, साथ ही वह पतिपरायणा भी नहीं समझी जाती।

हाँ, तो फिर इन तीनों स्त्रियोंने तीन दिन पर्यंत खूब गाया बजाया और नाना प्रकारके भोजन किये, मानो संसारसे विदा ले रही थीं। इनके पास चारों ओरकी स्त्रियोंका जमघट लगा रहता था। चौथे दिन इनके पास घोड़े लाये गये और ये तीनों बनाव सिंगार कर, सुगंधि लगा उनपर सवार हो गयीं। इनके दाहिने हाथमें एक नारियल था, जिसको ये बराबर उछाल रही थीं और बायें हाथमें एक दर्पण था जिसमें ये अपना मुख देखती थीं। चारों ओर ब्राह्मणों तथा संबंधियोंकी भीड़ लग रही थी। आगे आगे नगाड़े तथा नौबत बजती जाती थी। प्रत्येक हिन्दू आकर अपने मृत माता, पिता, बहिन, भाई, तथा या अन्य संबंधी या मित्रोंके लिए इनसे प्रणाम कहनेको कह देता था और ये "हाँ हाँ" कहती और हँसती चली जाती थीं। मैं भी मित्रोंके साथ यह देखनेको चल दिया कि ये किस प्रकारसे जलती हैं। तीन कोसतक जानेके पश्चात् हम एक ऐसे स्थानमें पहुँचे जहाँ जलकी बहुतायत थी और वृक्षोंकी सघनताके कारण अंधकार छाया हुआ था। यहाँपर चार गुम्बद (मंदिर) बने हुए थे और प्रत्येकमें एक-एक देवताकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। इन चारों (मंदिरों) के मध्यमें एक ऐसा सरोवर (कुंड) था जिसपर वृक्षोंकी सघन छाया होनेके कारण धूप नामको भी न थी।

घने अंधकारके कारण यह स्थान नरकवत् प्रतीत हो रहा था। मंदिरोंके निकट पहुँचने पर इन स्त्रियोंने उतर कर स्नान किया और कुंडमें एक डुबकी लगायी। वस्त्र आभूषण आदि

(जल) जल में डूबने की क्रिया या भाव

उतार कर रख दिये, और मोटी साड़ियाँ पहन लीं। कुंडके पास नीचे स्थलमें अग्नि दहकायी गयी। सरसोंका तेल डालने पर उसमें प्रचंड शिखाएँ निकलने लगीं। पन्द्रह पुरुषोंके हाथोंमें लकड़ियोंके गट्ठे बंधे हुए थे और दस पुरुष अपने हाथोंमें बड़े बड़े लकड़ीके कुन्दे लिये खड़े थे। नगाड़े, नौबत और शहनाई बजानेवाले स्त्रियोंकी प्रतीक्षामें खड़े थे। स्त्रियोंकी दृष्टि बचानेके लिए लोगोंने अग्निको एक रजाईकी ओटमें कर लिया था परंतु इनमेंसे एक स्त्रीने रजाईको बलपूर्वक खींच कर कहा कि क्या मैं जानती नहीं कि यह अग्नि है, मुझे क्या डराते हो? इतना कह कर यह अग्निको प्रणाम कर तुरंत उसमें कूद पड़ी। बस नगाड़े, ढोल, शहनाई और नौबत बजने लगी। पुरुषोंने अपने हाथोंकी पतली लकड़ियाँ डालनी प्रारंभ कर दीं, और फिर बड़े बड़े कुंदे भी डाल दिये जिसमें स्त्रीकी गति बंद हो जाय। उपस्थित जनता भी चिल्लाने लगी। मैं यह हृदयद्रावक दृश्य देख कर मूर्च्छित हो घोड़ेसे गिरनेको ही था कि मेरे मित्रोंने संभाल लिया और मेरा मुख पानीसे धुलवाया। (संज्ञा लाभ कर) मैं वहाँसे लौट आया।

इसी प्रकारसे हिंदू नदियोंमें डूबकर प्राण दे देते हैं। बहुतसे गंगामें जा डूबते हैं। गंगाजीकी तो यात्रा होती है; और अपने मृतकोंकी राखतक हिंदू इस नदीमें डालते हैं। इनका विश्वास है कि यह नदी स्वर्गसे निकली है। नदीमें डूबते समय हिंदू उपस्थित पुरुषोंसे कहता है कि सांसारिक कष्टों या निर्धनताके कारण मैं नदीमें डूबने नहीं जा रहा हूँ। वरन् मैं तो गुसाईं (ईश्वर) की इच्छा पूर्ण करनेके लिए अपना प्राण विसर्जन करता हूँ। इन लोगोंकी भाषामें 'गुसाईं' ईश्वरको कहते हैं। नदीमें डूबकर मरनेके उपरान्त शव पानीसे

निकाल कर जला दिया जाता है और राख गंगा नदीमें डाल दी जाती है।

(७) सरस्वती

अजोधनसे चलकर हम सरस्वती (सिरसा[1]) पहुँचे। यह एक बड़ा नगर है। यहाँ उत्तम कोटिके चावल बहुतायतसे होते हैं और दिल्ली भेजे जाते हैं। शमस-उद्दीन बोशञ्जी नामक दूतने मुझे इस नगरके करकी आय बतायी थी, परंतु मैं भूल गया। हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि वह थी बहुत अधिक।

(८) हाँसी

यहाँसे हम हाँसी[2] गये। यह नगर भी सुन्दर और दृढ़ बना हुआ है। यहाँके मकान भी बड़े हैं और नगरका प्राचीर

---

(१) सिरसा—प्राचीन ऐतिहासिकोंने "सिरसा"का नाम 'सरस्वती' ही लिखा है। प्राचीन नगरके खँडहर वर्तमान बस्तीके दक्षिण-पश्चिमकी ओर अब भी मिलते हैं। प्राचीन कालमें यहाँपर गक्खर (अर्थात् सरस्वती नदीकी शाखा) बहती थी। परंतु अब वह सूख गयी है। बतूताके समय यहाँपर एक सूबेदार रहता था।

(२) हाँसी—यह नगर फीरोज तुग़लक़ द्वारा स्थापित, वर्तमान हिंसारके ज़िलेमें एक तहसीलका प्रधान स्थान है। कहा जाता है कि तोमरवंशीय अनंगपालने इस नगरकी नींव डाली थी। इब्नबतूताने भ्रम वश 'तोमर' या 'तोर' को ही किसी राजाका नाम समझ लिया है। संभव है, राय पिथौराको ही उसने लक्षित कर यह 'तोरा' शब्द लिखा हो क्योंकि उन्होंने पुराने क़िलेकी दुबारा पूरी मरम्मत करायी थी। हिसारके आबाद होनेसे पहिले यहाँपर भी एक हाकिम रहा करता था। महमूद गजनवी और सुलतान ग़ोरीके समयमें यहाँका गढ़ बड़ा मजबूत समझा जाता था।

भी ऊँचा बना हुआ है। कहा जाता है कि 'तोरा' नामक हिंदू राजाने इस नगरकी स्थापना की थी। इस राजाकी बहुतसी कहावतें भी लोग जहाँ तहाँ कहते हैं। भारतवर्षके क़ाज़ियोंके प्रधान (क़ाज़ी-उल-कुज़्ज़ात) क़ाज़ी कमालउद्दीन सद्रे-जहाँ-के भाई एवं बादशाहके शिक्षक, कतलू खाँ और मक्काको चले जानेवाले शम्स-उद्दीन खाँ दोनों इसी शहरके रहनेवाले हैं।

(६) मसऊदाबाद और पालम

फिर दो दिनके पश्चात् हम मसऊदाबाद[1] पहुँचे। यह नगर दिल्लीसे दस कोस इधर है। यहाँ हम तीन दिन ठहरे। हाँसी और मसऊदाबाद दोनों ही स्थान होशंग इब्न मलिक कमाल गुर्गकी जागीरमें हैं।

जब हम यहाँ आये तो सम्राट् राजधानीमें न थे, क़न्नौजकी ओर, जो दिल्लीसे दस पड़ावकी दूरीपर है, गये हुए थे। राज-माता, मख़दूमे-जहाँ, और मंत्री अहमद बिन अयाज़ रूमी जिन्हें ख़्वाजेजहाँ भी कहते थे, दिल्लीमें थे। मंत्री महोदयने व्यक्तिगत मान-मर्यादानुसार, हममेंसे प्रत्येक व्यक्तिकी अभ्यर्थनाके लिए कुछ मनुष्य भेजे। मेरी अभ्यर्थनाके लिए परदेशियोंके हाजिब शरीफ़ मज़िन्दरानी, शैख बुस्तामी और धर्मशास्त्रके ज्ञाता अलाउदीन क़न्नरा मुलतानी आये थे। मंत्रीने हमारे आगमनकी सूचना सम्राटके पास डाक द्वारा भेजी। उत्तर

---

(१) मसऊदाबाद—सम्राट् अकबरके समयतक इस क़सबेमें खूब बस्ती थी। आईने अकबरीमें लिखा हुआ है कि उस समय यहाँपर ईंटों-का बना हुआ एक प्राचीन दुर्ग भी वर्तमान था। यह स्थान नजफ गढ़से एक मील पूरबकी ओर है और पालमके स्टेशनसे छः मील पश्चिमोत्तर दिशामें इसके खँडहर मिलते हैं।

आनेमें तीन दिन लग गये। इसी कारण हमको तीन दिनतक मसऊदाबादमें ठहरना पड़ा। तीन दिनके पश्चात् क़ाज़ी धर्मशास्त्रके ज्ञाता शैख तथा उमरागण हमारी अभ्यर्थनाको आये। जिन पुरुषोंको मिश्र देशमें अमीरके नामसे व्यक्त किया जाता है उनको इस देशमें मलिक कहते हैं। इनके अतिरिक्त सम्राट्के परम श्रद्धेय मित्र शेख़ जहीरउद्दीन ज़िन्ज़ानी भी हमारा स्वागत करनेके लिए आये थे।

मसऊदाबादसे चलकर हम पालम[1] नामके एक गाँवमें ठहरे। यह सैयद शरीफ़ नासिरउद्दीन मुताहिर ओहरीकी जागीरमें है। सैयद साहिब भी सम्राट्के मुसाहिबोंमेंसे हैं और सम्राट्की दानशीलताके कारण इनको बहुत लाभ हुआ है।

तीसरा अध्याय

दिल्ली

१—नगर और उसका प्राचीर

दोपहरके समय हम राजधानी दिल्ली[2] पहुँचे। इस महान् नगरके भवन बड़े सुन्दर तथा दृढ़ बने हुए हैं। नगरका सुदृढ़ प्राचीर भी संसारमें अद्वितीय समझा जाता है। पूर्वीय देशोंमें, इसलाम या अन्य मतावलम्बी, किसीका भी,

---

(१) पालम—दिल्लीसे रेवाड़ी जानेवाली रेलवे लाइनपर इस समय भी यह गाँव वर्तमान दिल्ली नगरसे बारह मीलकी दूरीपर बसा हुआ है।

(२) दिल्ली नगरकी जनसंख्या उस समय चार स्थानोंमें विभक्त थी। पुरानी, हिन्दुओंकी दिल्लीसे इब्नबतूताका राय पिथौराके दुर्ग तथा

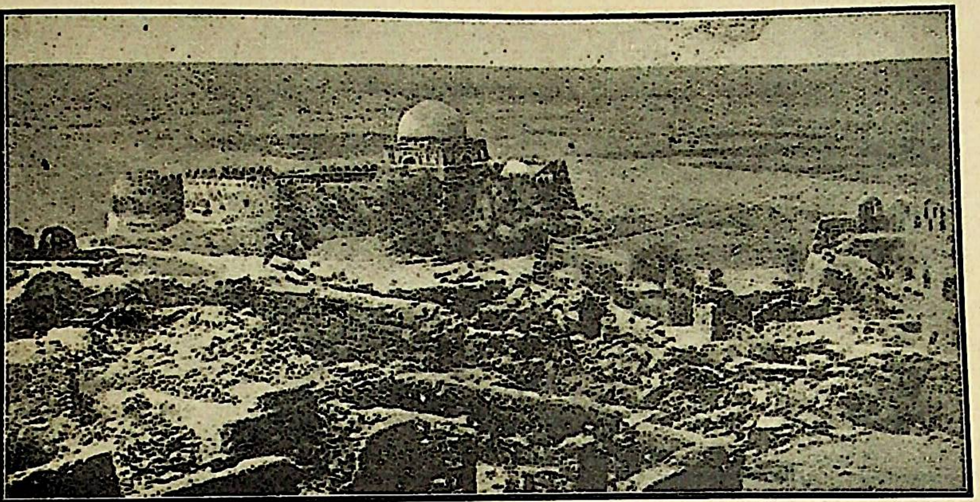
ऐसा ऐश्वर्य्यशाली नगर नहीं है। यह नगर खूब विस्तृत है और पूरी तौरसे बसा हुआ है।

यह नगर वास्तवमें एक नहीं है, वरन् एक दूसरेसे मिलकर बसे हुए चार नगरोंसे बना है। इनमें सर्वप्रथम दिल्ली है। यह प्राचीन नगर हिन्दुओंके समयका है और हिजरी सन् ५८४ में मुसलमानोंने इसको जीता था। दूसरा नगर सीरी[1] है। इसको दारुल ख़िलाफ़ा (राजधानी) भी कहते हैं। जिस समय ग़यासउद्दीन ख़लीफ़ा मुस्तन सरुल अब्बासी (विजय-सूचक उपाधिविशेष) के पोते दिल्लीमें रहते थे, उस समय यह नगर सम्राट्ने उनको दे दिया था। तीसरा नगर तुग़लक़ाबाद[2] है, जिसको सम्राट्के पिता ग़यासउद्दीन तुग़लक शाहने बसाया था। (कहा जाता है कि) एक दिन ग़यासउद्दीनने

लाल क़िलेकी जनसंख्यासे तात्पर्य है, इन्द्रपत या अनंगपालकी पुराने क़िलेकी बस्तीसे नहीं; जो आधुनिक नगरसे तीन मीलकी दूरीपर मथुराकी सड़कपर बसी हुई है। लालकोट अनंगपालने १०५२ ई० में बनवाया था और लोहेकी लाटपर यह तिथि अंकित भी है। राय पिथौराने नगरको विस्तृत कर लालकोटको गढ़की भाँति नगरके मध्यमें कर लिया था। लालकोटकी दीवारें अब भी कहीं कहीं अवशिष्ट हैं। इसका घेरा सवा दो मील था और दीवारें ३० फीट मोटी और खाईसे चोटीतक ६० फीट ऊँची थीं। पृथ्वीराजके क़िलेका घेरा तो साढ़े चार मील था परंतु दीवारें लालकोटसे आधी थीं।

(१) 'सीरी' का गढ़ और नगर अलाउद्दीन ख़िलजीने अपने शासन-कालमें बनवाया था। 'कुतुब साहब'को आते समय मार्गमें बाईं ओर इसके भग्नावशेष अब भी दृष्टिगोचर होते हैं। बोलचालमें लोग इसको एक अलादलका क़िला कहते हैं।

(२) तुग़लक़ाबाद—मथुराकी सड़कपर कुतुब साहबसे चार मील पूर्वकी ओर एक पहाड़ी पर क़िला और नगर अर्धचंद्राकार बसा हुआ



ग़यासुद्दीन तुग़लकशाहकी समाधि तथा क़िला, पृ० ९५

सुलतान कुतुब-उद्दीन खि़लजीकी सेवामें उपस्थितिके समय यह प्रार्थना की कि उस स्थानपर एक नया नगर बसाया जाय। इसपर बादशाहने ताना मार कर कहा कि यदि तू बादशाह हो जाय तो ऐसा करना। दैवगतिसे ऐसा ही हुआ। तब उसने यह नगर अपने नामसे बसाया। चौथा नगर जहाँपनाह[1] था। इसका कुल घेरा ३ मील ७ फर्लांग है। यहाँपर बंद बाँध कर एक झील बनायी गयी थी। गढ़की दीवारें पहाड़की चट्टानें काट कर बनायी गयी हैं और मैदानसे ९० फुट ऊँची हैं। दक्षिण-पश्चिम कोणमें गढ़ और राज-महल बने हुए थे। इनके निकट ही लाल पत्थर तथा स्फटिककी बनी हुई ग़यासउद्दीन तुग़लक शाहकी समाधि है। यह नीचेसे लेकर गुम्बदकी चोटीतक ८० फुट ऊँची है। गुम्बदकी परिधि बाहरसे ४.४ फुट है। कहा जाता है कि पिता और पुत्र एक ही समाधि-भवनमें शयन कर रहे हैं। यदि यह ठीक है तो सम्राट् मुहम्मद बिन तुगलक शाहके शवको—उनके मृत्यु-स्थान ठट्ठे (सिन्धु) से लोग दिल्लीमें अवश्य ले आये होंगे। परन्तु ज़िया-उद्दीन बरनी लिखता है कि सुलतान फीरोज़ने उन पुरुषोंकी संतानसे जिनको मुहम्मदशाह तुग़लकने बिना किसी अपराधके बध किया था, क्षमापत्र लेकर उन्हें समाधिपत्र, दारुउल अमनमें रखवा दिया। दारुलअमन उस स्थानको कहते हैं जहाँ ग़यासउद्दीन बळबनका समाधिस्थान है। तुग़लक शाहके गढ़में अब गूजरोंकी बस्ती है और मकबरेमें मुसलमान ज़मींदार रहते हैं।

ये अपनेको तुग़लकका वंशधर बताते हैं और नगरमें लकड़ियाँ बेचते हैं। सुनते हैं कि अन्तिम मुग़ल सम्राट् बहादुरशाहके राज्यकालमें भी ये लोग दिल्लीके वर्तमान दुर्गमें लकड़ियाँ बेचने जाना कभी स्वीकार न करते थे, चाहे कुछ ही मूल्य क्यों न मिले।

(१) तुग़लकका नगर 'जहाँपनाह' दिल्ली और सीरीके मध्यमें था और वहाँ उसके सहस्रस्तम्भ नामक भवनके भग्नावशेष इस समय भी विद्यमान हैं।

है जिसमें वर्तमान सम्राट् मुहम्मदशाह तुग़लक रहते हैं और यह उन्हींका बसाया हुआ है। सम्राट्का विचार[1] था कि इन चारों नगरोंको मिलाकर इनके चारों ओर एक प्राचीर बनवा दें, और इस विचारके अनुसार कुछ प्राचीर भी बनवाया गया परन्तु अधिक व्यय होते देख कर अधूरा ही छोड़ दिया गया।

नगरका यह अद्वितीय प्राचीर ग्यारह हाथ चौड़ा है। चौकीदारों तथा द्वारपालोंके रहनेके लिए इसमें कोठरियाँ और मकानात भी बने हुए हैं। अनाज रखनेके लिए खत्तियाँ भी (जिनको अवांरी भी कहते हैं) इसी प्राचीरमें बनी हुई

---

(१) दिल्ली और सीरीके दक्षिण और पश्चिममें पहाड़ी थी, और उत्तर और पूर्वमें मुहम्मद तुग़लकने नगर-प्राचीर बना कर दोनों नगरोंको मिला दिया था। उस समय यह नगर बड़ा ही समृद्धिशाली था। इब्न बतूता इसी नगर-प्राचीरके भीतर तुग़लकाबादकी स्थिति भी बतलाता है परन्तु यह ग़लत है।

इब्न बतूता तथा मुहम्मद तुग़लकके पश्चात् फीरोजशाह तुग़लकने फीरोज़ाबाद नामक नया नगर बसाया था, जो हुमायूँकी समाधिसे लेकर आधुनिक नगरके उत्तरकी ओर पहाड़ोतक चला गया था। काली मसजिद तथा रजियाकी समाधिवाले आधुनिक नगरका भाग भी इसीमें सम्मिलित था। दिल्ली दरवाजेके बाहर, जहाँ अब फीरोज़शाहकी लाट खड़ी हुई है, इस नगरका दुर्ग बना हुआ था।

इब्नबतूताका समसामयिक मसालिक-उल-अबसारका लेखक लिखता है कि इस नगरमें इस समय एक सहस्र पाठशालाएँ, दो सहस्र छोटी बड़ी मसजिदें और सत्तर औषधालय (शफ़ाख़ाने) थे। लोग तालाबोंका पानी पीते थे। कुओंपर रहट लगते थे और पानी केवल सात हाथ नीचे था।

हैं। मञ्जनीक¹ तथा युद्धका अन्य सामान भी इसमें बने हुए गोदामोंमें रखा रहता है। कहा जाता है कि यहाँपर भरा हुआ अनाज सब प्रकारसे सुरक्षित रहता है, उसका रंगतक नहीं बदलता। मेरे संमुख यहाँसे कुछ चावल निकाले जा रहे थे, उनका बाह्यरंग तो कुछ कालासा पड़ गया था, परन्तु स्वादमें निस्सन्देह कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ था। मक्का, जुआर भी मेरे सामने निकाली जा रही थीं। लोग कहते थे कि सम्राट् बलबनके समयमें, जिसको अब नब्वे वर्ष बीत गये, यह अनाज भरा गया था। गोदामोंमें प्रकाश पहुँचानेके लिए नगरकी ओर तावदान (रौशनदान) बने हुए हैं। प्राचीरके ऊपर कई सवार तथा पैदल सैनिक नगरके चारों ओर घूम सकते हैं। प्राचीरका निचला भाग पत्थरका बना हुआ है और ऊपरका पक्की ईंटोंका। बुर्जोंकी संख्या भी अधिक है और ये एक दूसरेसे बहुत समीप बने हुए हैं।

नगरके अट्ठाइस द्वार हैं। इनमेंसे हम केवल कुछ एकका ही वर्णन करेंगे। बदाऊँ दरवाज़ा बड़ा है और बदाऊँ नामक नगरके नामसे प्रसिद्ध है। मन्दवी दरवाज़ेके आगे खेत हैं। गुल-दरवाज़ेके आगे बाग़ हैं। नजीब दरवाज़ा, कमाल दरवाज़ा विशेष व्यक्तियोंके नामपर बने हैं। गज़नी दरवाज़ेके

(१) मंजनीक—यह युद्धके काममें आनेवाला एक यन्त्र है। तोपके आविष्कारके पहिले ईसाकी सोलहवीं शताब्दीतक इससे दुर्गकी दीवारोंको तोड़ने तथा दुर्गके भीतर जलती हुई तथा दुर्गन्धि युक्त सड़ी हुई वस्तुएँ फेंकनेका यूरोप, चीन तथा अन्य मुसलमान प्रदेशोंमें, काम लिया जाता था। ज़ियाउद्दीन बरनी लिखता है कि अलाउद्दीन ख़िलज़ीने इनके द्वारा दिल्ली नगरमें सोना, चाँदी फिकवा कर नगर-निवासियोंको लालच दे कर नगरद्वार खुलवाये थे।

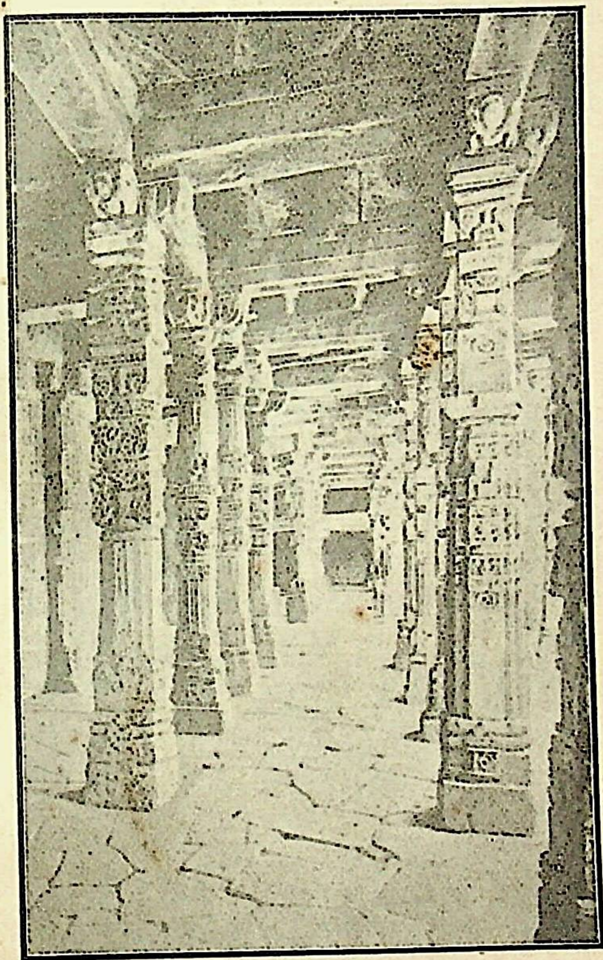
बाहर ईदगाह और कुछ क़ब्रिस्तान बने हुए हैं। पालम दरवाज़ा पालम गाँवकी ओर बना हुआ है। बजालसा दरवाजे के बाहर दिल्लीके समस्त कब्रिस्तान हैं, जो सब सुन्दर बने हुए हैं। यदि किसी कब्रपर गुम्बद न भी हो तो मिहराब अवश्य ही होगी और इनके बीच बीचमें गुलशब्बो, रायबेल, गुलनसरीं तथा अन्य प्रकारकी फुलवाड़ी लगी रहती है।

(२) जामे-मसजिद, लोहेकी लाट और मीनार

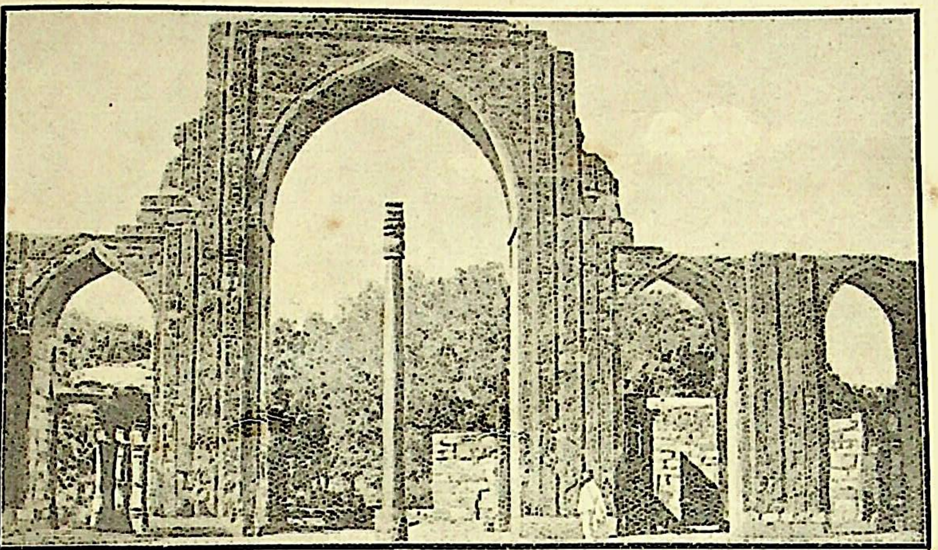
नगरकी जामे[1] मसजिद बहुत विस्तृत है। इसकी दीवारें, छत, और फर्श सब कुछ श्वेत पत्थरोंका बना हुआ है। ये पत्थर सीसा लगाकर जोड़े गये हैं। लकड़ी यहाँपर नामको भी नहीं है। मसजिदमें पत्थरके तेरह गुम्बद हैं, और मिम्बर भी (वह सिंहासन जिसपर खड़े होकर इमाम उपदेश देते हैं) पत्थरका ही है। इस चार चौककी मसजिदके मध्यमें

---

(१) जामेमसजिद—इसका यथार्थ नाम कुवत-उल-इसलाम था। यहाँपर पहिले पृथ्वीराजका मंदिर था। मुअज़उद्दीन मुहम्मद बिन सामने, जिसको शहाबुद्दीन ग़ोरी भी कहते हैं, अपने गुलाम सेनापति कुतुबउद्दीन ऐबक द्वारा इस मसजिदकी नींव ५८९ हिजरीमें दिल्ली-विजयके उपरांत रखवायी। हिजरी ५९४ में इसमें ५ दर थे। और वहाँपर यही साल अंकित भी है। फिर ६२७ हिजरीमें शमसउद्दीन अल्तमशने तीन तीन दरके दो भाग और निर्मित कराये। इब्नबतूताके समय चौथा भाग भी बना हुआ था परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें केवल दो दर ही थे और कुछ न था, क्योंकि बतूता केवल तेरह गुम्बद बताता है। यदि चौथा भाग भी पूरा होता तो गुम्बदकी संख्या चौदह होती। अलाउद्दीन ख़िलजीने (आसार उस्सनादीदमें देखो) पांचवा और चौथा भाग भी बनवाना प्रारंभ किया था (हि० ७११), परन्तु वे पूरे नहीं बन



पृथ्वीराजका मन्दिर, पृ० ४८



कुव्वत-उल-इस्लाम मसजिद तथा लोहेकी लाट, पृ० ५९

एक लाट[1] खड़ी है। मालूम नहीं, यह किस धातुसे बनायी गयी है। एक आदमी तो मुझसे यह कहता था कि सातों धातुओंके मिश्रणको खौला कर यह लाट बनायी गयी है। किसी भले मानुसने इसको एक अंगुलके लगभग छील भी डाला है और वह भाग बहुत ही चिकना हो गया है। इसपर लोहेका भी कोई प्रभाव नहीं होता। यह तीस हाथ ऊँची है। अपनी पगड़ी खोल कर नापा तो इसकी परिधि आठ हाथकी निकली। मसजिदके पूर्वीय द्वारके बाहर तांबेकी दो बड़ी बड़ी मूर्तियाँ पत्थरमें जड़ी हुई धरातलपर पड़ी हैं। मसजिदमें आने जानेवाले इनपर पैर रखकर आते जाते हैं।

मसजिदके स्थानपर पहिले मंदिर बना हुआ था। दिल्ली-विजयके उपरान्त मंदिर तुड़वा कर मसजिद बनवायी गयी। मसजिदके उत्तरीय चौकमें एक मीनार[2] खड़ी है जो समस्त

सके। बतूताके समय पाँचवेंका चिन्ह मात्र भी न था। फीरोज़ने इसकी मरम्मत करा दी थी, जिससे यह नयी सी लगने लगी थी। उस समय इसमें तीन बड़े दर थे और आठ छोटे। बड़ी मेहराब ५३ फुट ऊँची और २२ फुट चौड़ी है।

मसजिदके द्वारपर पड़ी हुई मूर्त्तियाँ विक्रमाजीतकी थीं जिनको अल्तमश उज्जैन-विजयके उपरान्त महाकालके मन्दिरसे उठाकर दिल्ली ले आया था।

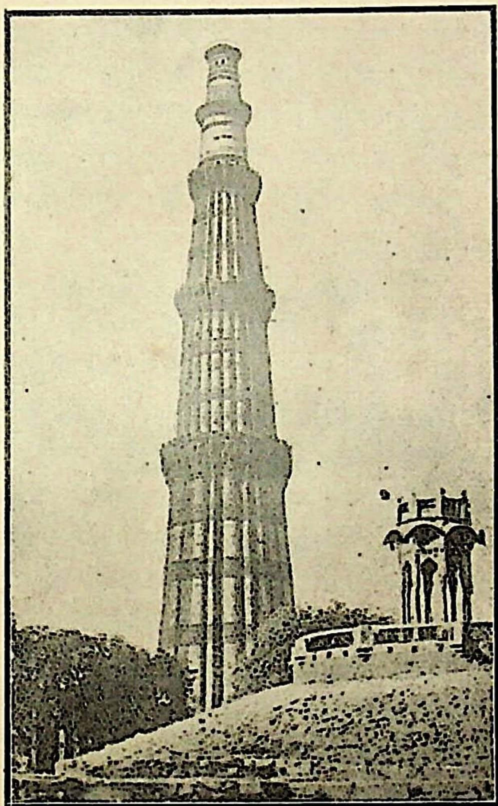
(१) लाट—परीक्षासे अब यह सिद्ध हो गया है कि यह लाट लोहेकी है। इसके संबंधमें यह किंवदन्ती है कि राजा अनंगपालने इसको, एक ब्राह्मणके आदेशानुसार, शेषनागके मस्तकमें इस स्थानपर ठोका था।

(२) कुतुबमीनार—मुसलमान इतिहासकारोंका मत है कि यह मीनार कुव्वत-उल-इसलाम नामक उपर्युक्त मसजिदके दक्खिन पूर्वीय कोणमें शुक्रवारकी अज़ान देनेके लिए बनवायी गयी थी। इसको भी कुतुबउद्दीन

मुसलिम जगत्‌में अद्वितीय है। मसजिद तो श्वेत पाषाणकी है। परन्तु यह लाल पत्थरकी बनी हुई है और उसपर खुदाई हो रही है। मीनारके शिखरपर विशुद्ध स्फटिकके छत्रमें चाँदीके लड्डू लगे हुए हैं। भीतरसे सीढ़ियाँ भी इतनी चौड़ी है कि हाथीतक ऊपर चढ़ जाता है। एक सत्यवादी पुरुष मुझसे कहता था कि मीनार बनते समय मैंने हाथियोंको उसके ऊपर पत्थर ले जाते हुए अपनी आखों देखा था। यह मीनार मुअज़्ज़उद्दीन बिन नासिर-उद्दीन बिन अल्तमशने बनवायी थी। कुतुबउद्दीन खिलज़ीने मसजिदके पश्चिमीय चौकमें इससे भी बड़ी और ऊँची मीनार बनानेका विचार किया था और ऐसी एक मीनार[1] तृतीयांशके लगभग बनकर तैयार भी हो गयी थी कि इतनेमें उसका वध कर दिया गया और कार्य अधूरा ही

ऐबकने सम्राट् मुअज़्ज़उद्दीन बिन सामकी आज्ञासे नर्मित कराया था। ७०७ हिजरीमें फीरोज़शाह तुग़लकने और ९०९ हिजरीमें बहलोल लोदीने इसकी मरम्मत करायी थी। सन् १८०३ में भूकम्पके कारण इसके ऊपर-की छतरी गिर पड़ी थी और सारी मीनार मरम्मत तलब हो गयी थी। ईस्ट इंडिया कंपनीने सन् १८३८ के लगभग इसकी मरम्मत करवायी। इस समय यह पाँच खनोंकी है और इसकी ऊँचाई २३८ फुट है। प्रथम खन ९५ फुट ऊँचा है और पाँचवाँ २१ फुट ४ इंच। इसमें ३७८ सीढ़ियाँ हैं। बतूताने इसको मुअज़्जउद्दीन कैकुबाद द्वारा निर्मित बताया है। ऐसा प्रतीत होता है मुअज़्ज़उद्दीन बिन साम और मुअज़्ज़उद्दीन कैकुबाद नामोंसे उसे भ्रम हो गया है। इसी प्रकार हाथियोंके सीढ़ीपर चढ़नेकी बात भी कुछ भ्रमोत्पादक है।

(१) अधूरी लाट—इस मीनारसे ४२५ फुटकी दूरीपर बनी हुई है। अलाउद्दीन ख़िलजीने इसका निर्माण कराया था। यह अधूरी लाट केवल ८७ फुट ऊँची है। यह किसी कारणवश पूरी न हो सकी। लोग



कुतुब मीनार, पृ० ५०

रह गया। सुलतान मुहम्मद तुग़लकने इसे पूरा करना चाहा परन्तु उसको अनिष्ट समझ कर फिर अपना विचार बदल दिया, नहीं तो संसारके अत्यंत अद्भुत पदार्थोंमें अवश्य उसकी गणना होती। वह भीतरसे इतनी चौड़ी है कि तीन हाथी बराबर उसपर चढ़ सकते हैं। इस तृतीयांशकी ऊँचाई उत्तरीय चौकवाली मीनारकी ऊँचाईके बराबर है। एक बार इसपर चढ़ कर मैंने नगरकी ओर देखा तो नगरकी ऊँचीसे ऊँची अट्टालिकाएँ भी छोटी दृष्टिगोचर होती थीं और नीचे खड़े हुए मनुष्य तो बालकोंकी भाँति प्रतीत होते थे। चौड़ी होनेके कारण यह अधूरी मीनार नीचे खड़े होकर देखनेसे इतनी ऊँची नहीं प्रतीत होती।

क़ुतुबउद्दीन ख़िलजीने एक ऐसी ही मसजिद 'सीरी' में बनानेका विचार किया था परन्तु एक दीवार और मेहराबको छोड़ कर और कुछ न बना सका। यह मसजिद श्वेत, रक्त, हरित, और कृष्ण पाषाणोंसे बनवायी जा रही थी। यदि पूर्ण हो जाती तो संसारमें अद्वितीय होती। मुहम्मदशाह तुग़लक़ इसको भी पूर्ण करना चाहता था। जब उसने राज और कारीगरोंको बुला कर पूछा तो उन्होंने ३५ लाख रुपयेका व्यय कूता। इतनी प्रचुर धनराशिका व्यय देख कर सम्राट्ने अपना यह विचार ही त्याग दिया। परन्तु बादशाहका एक मुसाहिब कहता था कि सम्राट्ने इस कार्यको भी अनिष्टकी आशंका से नहीं किया। कारण यह है कि क़ुतुबउद्दीनने इस मसजिद-को बनवाना प्रारंभ ही किया था कि मारा गया।

कहते हैं कि यह श्वेत स्फटिकसे मढ़ी जानेको थी और स्फटिक भी आ गया था पर इसके काममें न आया। वही कुछ शताब्दी पश्चात् हुमायूंके समाधि-मंदिरमें लगा दिया गया।

(३) नगरके हौज़

हौज़े[१] शमसी दिल्ली नगरके बाहर एक कुंड है जो शम्स-उद्दीन अल्तमशका बनवाया हुआ बताया जाता है। नगर-निवासी इसका जल पीते हैं। नगरकी ईदगाह भी इस स्थान के निकट है। इस कुंडमें वर्षाका जल भर जाता है। यह लगभग दो मील लम्बा और लगभग एक मील चौड़ा है। इसमें पश्चिमकी ओर ईदगाहके संमुख चवूतरोंके आकारके पत्थरके घाट बने हुए हैं। ऐसे बहुतसे छोटे बड़े चबूतरे यहाँ ऊपर नीचे बने हुए हैं। चवूतरोंसे जलतक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। प्रत्येक चवूतरेके कोनेपर एक एक गुम्बद बना हुआ है, जिसमें बैठ कर दर्शकगण खूब सैर किया करते हैं। कुंडके मध्यमें भी एक ऐसा ही नक़ाशीदार पत्थरोंका गुम्बद बना हुआ है परंतु यह दो-खना है। बहुत अधिक जल होनेपर तो लोग गुम्बदतक नावोंमें बैठकर जाते हैं परंतु जल कम होते ही पैरों पैरों वहाँ उतर कर पहुँच जाते हैं। इस गुम्बदमें एक मसजिद भी है जिसमें बहुतसे ईश्वर-प्रेमी साधु-संत पड़े रहते हैं। किनारे सूख जानेपर ककड़ी, कचरे, तरबूज़, ख़रबूजे और गन्ने यहाँपर बो दिये जाते हैं। ख़रबूज़ा छोटा होनेपर भी अत्यंत मीठा होता है।

---

(१) हौज़े शमसी—अल्तमशका बनवाया हुआ यह हौज़ किसी समयमें संपूर्णतया लाल पत्थरका बना हुआ था। परन्तु इस समय तो दीवारोंपर पत्थरोंका चिन्ह तक भी शेष नहीं है। इस समय भी यह तालाव २७६ पुख़्ता बीघे धरती घेरे हुए है। फीरोज़ तुग़लक इसका जल एक झरनेके द्वारा फीरोजाबादतक ले गया था। और उसीने इसमें जल आनेकी राह, जिसे जमीन्दारोंने बन्द कर दिया था, पुनः खुलवायी। यह महरोलीमें अब भी बना हुआ है।

दिल्ली और दारुल ख़िलाफ़ा (राजधानी) के मध्यमें एक और हौज (कुंड) है जिसको हौजे खास[1] कहते हैं। यह हौजे-शमसीसे भी बड़ा है और इसके तटपर लगभग चालीस गुम्बद बने हुए हैं। इसके चारों ओर गानेवाले व्यक्ति रहा करते हैं, जिनको फारसी भाषामें तुरब कहते हैं। इसी कारण यह बस्ती तुरबाबाद कहलाती है। गाने बजानेवाले व्यक्तियों-का यहाँ एक बहुत बड़ा बाज़ार भी है और उसमें एक जामे मसजिद भी बनी हुई है। इसके अतिरिक्त यहाँ और भी मस-जिदे हैं। कहते हैं कि गाने बजानेवाली और जो स्त्रियाँ इस मुहल्लेमें रहती हैं वे रमज़ान शरीफ़में तरावीह (रात्रिके ८ बजे) की नमाज़ पढ़ती हैं जो जमाअतमें होती है। इनके इमाम भी नियत हैं। स्त्रियाँ बहुत अधिक संख्यामें हैं। डोम ढाड़ी इत्यादिकी भी कुछ कमी नहीं है। मैंने अमीर सैफुद्दीन ग़द्दा इब्ने महन्नीके विवाहमें देखा कि अज़ान होते ही प्रत्येक डोम हाथ मुख धोकर पवित्र हो मुसल्ला[2] (नमाजका वस्त्र) बिछा कर नमाज़पर खड़ा हो जाता था।

(४) समाधियाँ

शैख़ उस्स्वालह (सदाचारियोंमें श्रेष्ठ) कुतुबउद्दीन बख़तियार 'काकी' की समाधि अत्यन्त ही प्रसिद्ध है। यह

(१) हौजे ख़ास—यह अलाउद्दीन ख़िलज़ीका बनवाया हुआ है। फ़ीरोज़ तुग़लकने इसकी भी मरम्मत करवायी थी और जल भी स्वच्छ कराया था। इस सम्राट्की समाधि भी यहींपर बनी हुई है। वदीअ मंजिल भी यहींपर है। यह कुण्ड कुतुब साहबके रास्तेमें पड़ता है।

(२) मुसल्ला-यथार्थमें नमाज़ पढ़नेके स्थानको कहते हैं। धीरे धीरे यह शब्द खजूरके पत्तोंकी बनी चटाईका द्योतक हो गया, क्योंकि अरबमें बहुधा

ऐश्वर्यदायिनी समझी जाती है, इसी कारण लोग इसको बड़ी प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखते हैं। ख़्वाजा साहबका नाम 'काकी' इस कारणसे प्रसिद्ध हो गया था कि जब ऋणग्रस्त, या निर्धन पुरुष इनके निकट आकर अपने ऋण या दीनताकी दयनीय दशाका वर्णन करते या कोई ऐसा निर्धन पुरुष आ जाता जिसकी लड़की तो यौवनावस्थामें आ जाती किन्तु उसके विवाहका सामान जिसके पास न होता, तो यह महात्मा उसको सोने या चाँदीका एक काक (टिकिया) दे दिया करते थे।

दूसरी समाधि धर्मशास्त्रके ज्ञाता नूरउद्दीन करलानीकी है, और तीसरी धर्मशास्त्रके ज्ञाता अलाउद्दीन करलानीकी। यह समाधि भी ऋद्धि-सिद्धि-दायिनी है और इसपर सदा (ईश्वरीय) तेज बरसता रहता है। इनके अतिरिक्त यहाँपर और भी अन्य साधु विरक्त पुरुषोंकी समाधियाँ बनी हुई हैं।

(५) विद्वान् और सदाचारी पुरुष

जीवित विद्वानोंमें शैख़ महमूद बड़े प्रतिष्ठित समझे जाते हैं। लोग कहते हैं कि ईश्वर उनकी सहायता करता है। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि प्रकाश्य रूपसे कुछ भी आय न होनेपर भी यह महाशय बहुत ही अधिक व्यय करते हैं। प्रत्येक यात्रीको रोटी तो देते ही हैं, रुपया, अशर्फी, और कपड़े भी खूब बाँटते रहते हैं। इनके बहुतसे अलौकिक कार्य लोगोंमें प्रसिद्ध हैं। मैंने भी कई बार इनके दर्शन कर लाभ उठाया।

इसीपर बैठकर नमाज़ पढ़ते थे। अब बोलचालमें उस वस्त्रको कहते हैं जिसे बिछाकर नमाज़ पढ़ी जाती है।

दूसरे प्रसिद्ध व्यक्ति हैं शैख़ अलाउद्दीन नीली[1]। यह शैख़ निजाम-उद्दीन बदाऊँनीके खलीफ़ा हैं और प्रत्येक शुक्रवारको धर्मोपदेश करते हैं। बहुतसे उपस्थित प्रार्थीजन इनके हाथों पर तौबा (पश्चात्ताप-विशेष) करते हैं और सिर मुँडाकर विरक्त या साधु हो जाते हैं। एक बार जब यह महाशय धर्मोपदेश कर रहे थे, तब मैं भी वहाँ उपस्थित था। क़ारी (शुद्ध पाठ करनेवाला) ने कलामे अल्लाह (ईश्वरीयवाणी, कु़रान) की यह आयत पढ़ी—या अय्यो हन्नासुत्तक़ू रब्बकुम इन्ना ज़ाल ज़ालतस्साअ़ते शैउन अज़ीम। यौ मा तरौ तज़हलो कुल्लो मुरज़अ़तिन् अम्मा अरज़अ़त वतदअ़ो कुल्लो ज़ाते हम लिन हमलोहा व तरन्नासः सुकारा व मा हुम वे सुकारा वला-किन्ना अज़ाब अल्लाहे शदीद[2]। शैख़ महाशयने इसको दुबारा पढ़वाया ही था कि एक साधुने मसजिदके कोनेसे एक चीख़ मारी। इसपर इन्होंने आयत फिर पढ़वायी और साधु एक बार और चीत्कार कर मृतक हो गिर पड़ा। मैंने भी उसके जनाज़ेकी नमाज़ पढ़ी थी।

तीसरे महाशयका नाम है शैख़ सदरउद्दीन कोहरानी।

---

(१) यह महाशय अवधके रहनेवाले थे, इनकी क़ब्र चबूतरे यारान के पास पुरानी दिल्लीमें अबतक बनी हुई है।

(२) सूरह-हज आयत (१) अर्थात् हे मनुष्यो, डरो अपने पालनेवाले से, प्रलयकालका भूकम्प अत्यन्त ही भयानक है। उस दिन तुम देखोगे कि समस्त दूध पिलानेवाली (माताएँ) उनसे हट जायँगी जिनको वे दूध पिलाती हैं (अर्थात् पुत्रोंसे) और गर्भपात तक वहाँ हो जायँगे, मदिरा पान न करनेपर भी पुरुष मदमत्तसे दृष्टिगोचर होंगे। अल्लाहका दण्ड भी अत्यन्त भयानक है। क़ुरानमें यहाँपर प्रलय कालका दृश्य दिखाया गया है।

यह सदा दिनमें रोज़ा रखते हैं और रात्रिको ईश्वर-वंदना करते रहते हैं।

इन्होंने संसारको छोड़सा रखा है। केवल एक कम्बल ओढ़े रहते हैं। सम्राट् और सरदार तथा अमीर इनके दर्शनोंको आते हैं और यह छिपते फिरते हैं। एक बार सम्राट्‌ने इनको कुछ गाँव धर्मार्थ भोजनालयके लिए दान करना चाहा था। परंतु इन्होंने अस्वीकार कर दिया। इसी तरह एक बार सम्राट् इनके दर्शनोंको आये और दस सहस्र दीनार (स्वर्ण मुद्रा) भेंट किये परंतु इन्होंने न लिये। यह शैख़ तीन दिनके पहिले कभी रोज़ा ही नहीं खोलते। किसीने प्रार्थना कर इसका कारण पूछा तो उत्तर दिया कि मुझको इससे प्रथम कुछ भी वेचैनी नहीं होती। इसीसे मैं व्रत भंग नहीं करता। घोर बुभुक्षा तथा बेचैनीमें तो मृतक जीवका भक्षण कर लेना भी धर्मसम्मत है।

चतुर्थ विद्वान् इमाम उस्स्वालह 'यगाने अस्र', 'फरीदे दहर' अर्थात् 'अद्वितीय एवं सर्वश्रेष्ठ' की उपाधि धारण करनेवाले गुफ़ा-निवासी कमालउद्दीन अवदुल्ला हैं।

आप शैख़ निजाम-उद्दीन बदाऊनीके मठके पास एक गुफ़ामें रहते हैं। मैंने तीन बार इस गुफामें जाकर आपके दर्शन किये। मैंने यह अलौकिक लीला देखी कि एक बार मेरा एक दास भाग कर एक तुर्कके पास चला गया। चले जानेपर मैंने उसे फ़िर अपने पास बुलवाना चाहा परन्तु महात्माने कहा कि यह पुरुष तेरे योग्य नहीं है। इसे अपने पास मत बुला। वहीं जाने दे। वह तुर्क भी मुझसे झगड़ना न चाहता था, अतएव मैंने सौ दीनार लेकर दासको उसीके पास छोड़ दिया। छः महीनेके पश्चात् मैंने सुना कि उस दासने अपने स्वामी-

को मार डाला। जब वह बादशाहके सन्मुख लाया गया तो उन्होंने उसको प्रतिशोधके लिए तुर्कके पुत्रोंके ही हवाले कर-दिया। उन्होंने उसका वध कर अपने पिताका बदला चुकाया। इस अलौकिक लीलाको देख शैख़ महाशयपर मेरी असीम भक्ति हो गयी। संसारको छोड़कर मैं उन्हींका सेवक बन गया। उस समय मुझे पता चला कि यह महात्मा दस दस दिन और बीस बीस दिन तक व्रत रखते थे और रात्रिका अधिक भाग ईश्वर-ध्यानमें ही बिता देते थे। जबतक सम्राट्ने मुझे फिर बुला न भेजा मैं इन्हींके पास रहा। इसके पश्चात् मैं पुनः संसारमें आ लिपटा कि ईश्वर मुझे नष्ट कर दे। यह कथा आगे आवेगी।

चौथा अध्याय

दिल्लीका इतिहास

१ दिल्ली-विजय

सुप्रसिद्ध विद्वान्, एवं क़ाज़ी-उल कुज़्ज़ात (प्रधान क़ाज़ी) कमालउद्दीनमुहम्मद बिन (पुत्र) बुरहान उद्दीन, जिनको 'सदरे-जहाँ' की उपाधि प्राप्त है, कहते थे कि इस नगरपर मुसलमानोंने हिजरी सन् ५८४ में विजय[1] प्राप्त

(१) दिल्ली-विजयकी तिथि बतूताने मेहराबपर ठीक ठीक नहीं पढ़ी। वहाँपर एक शब्द ऐसा लिखा है जिसे इतिहासज्ञ भिन्न भिन्न प्रकारसे पढ़ते हैं। कनिंगहम साहबके मतानुसार यह तिथि ५८९ हिजरी निकलती है। सर सय्यद अहमद तथा टॉमस महाशय इसको ५८७ हिजरी पढ़ते

की। यही तिथि स्वयं मैंने भी जामे मसजिदकी मेहराबमें लिखी देखी थी।

ग़ज़नी और ख़ुरासानके सम्राट् शहाबुद्दीन मुहम्मद बिन (पुत्र) साम, ग़ोरी के दास सेनापति कुतुब-उद्दीन ऐबकने यह नगर जीता था। इस व्यक्तिने मुहम्मद बिन (पुत्र) ग़ोरी सुलतान इब्राहीम बिन (पुत्र) सुलतान महमूद ग़ाज़ी (धर्मवीर) के देशपर, जिसने सर्वप्रथम भारतपर विजय प्राप्त की थी, बलपूर्वक अपना आधिपत्य जमाया। जब सम्राट् शहाब-उद्दीनने कुतुब उद्दीनको एक बड़ी सेना देकर भारतकी ओर भेजा तब इसने सर्वप्रथम लाहौरको जीता और वहींपर अपना निवास बना ऐश्वर्यशाली सम्राट् बन गया।

एक बार सम्राट् ग़ोरीके भृत्योंने इसकी निन्दा कर कहा कि सम्राट्की अधीनता छोड़ कर अब यह स्वतन्त्र होना चाहता है। यह बात कुतुब-उद्दीनके कानोंतक भी पहुँची। सुनते ही वह बिना कोई वस्तु लिये अकेला ही रात्रिके समय ग़ज़नीमें आ सम्राट्की सेवामें उपस्थित हो गया और निन्दकोंको इस बातकी बिलकुल ही ख़बर न हुई। अगले दिन राजसभामें कुतुब-

---

हैं। टामस महाशय तो अपनी पुष्टिमें हसन निज़ामी लिखित ताज-उल-मासिर उद्धृत करते हैं। परन्तु इस ग्रन्थको अवलोकन करनेसे पता चलता है कि ग्रन्थकारने दिल्ली-दुर्गकी विजयकी तिथि नहीं दी है। 'तबक़ाते नासिरी' इत्यादि प्राचीन ग्रन्थोंसे यही पता चलता है कि ५८७ हिजरीमें तरावड़ीका प्रथम युद्ध हुआ जिसमें सुलतान ग़ोरीकी पराजय हुई। हि० ५८८ में इसी स्थानपर सुलतानकी विजय हुई। इसके पश्चात् अजमेर तथा हाँसीकी विजय कर, शहाबुद्दीन अपने देशको लौट गया और इसी बीचमें कुतुब-उद्दीनने मेरठ और दिल्ली नगर जीते। इससे यह स्पष्ट है कि कनिंगहम साहब लिखित तिथि ही शुद्ध है।

उद्दीन राजसिंहासनके नीचे लुक कर बैठ गया। सम्राट्ने जब एकत्रित सभासदोंसे कुतुब-उद्दीनका समाचार पूछा, तो उन्होंने पूर्ववत पुनः उसकी निंदा करनी प्रारम्भ कर दी और कहा कि हमको तो अब पूर्णतया निश्चय हो गया है कि वह वास्तवमें स्वतन्त्र सम्राट् बन बैठा है। यह सुनकर सम्राट्ने सिंहासनपर पैर मारा और ताली बजाकर कहा "ऐबक[1]"। कुतुब-उद्दीनने उत्तर दिया। "महाराज, उपस्थित" और नीचेसे निकल भरी सभामें उपस्थित हो गया। इसपर उसके निन्दक बहुत ही लज्जित हुए और मारे भयके धरतीको चूमने लगे। सम्राट्ने कहा कि इस बार तो मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा किया परन्तु अब तुम कभी इसके विरुद्ध मुझसे कुछ न कहना। कुतुब-उद्दीनको भी भारत लौटनेकी आज्ञा दे दी गयी और उसने यहाँ आकर दिल्ली तथा अन्य कई नगर जीते। उस समयसे आजतक दिल्ली नगर निरन्तर इसलामकी राजधानी बना हुआ है। कुतुब-उद्दीनका देहावसान भी इसी नगरमें हुआ।

(२) सम्राट् शम्स-उद्दीन अल्तमश

शम्स-उद्दीन [2]ललमश दिल्लीका प्रथम स्थायी सम्राट् था। पहिले तो यह कुतुब-उद्दीनका दास था, फिर धीरे धीरे

(१) ऐबक—तुर्की भाषामें यह अमीरोंकी एक उपाधि है। फ़रिश्ताका यह अनुमान कि हाथकी उंगलियाँ टूटी होनेके कारण ही वह ऐबक कहलाया, ग़लत है।

(२) कोई तो इस सम्राट्का नाम ऐलतमश कहता है और कोई अल्तमश परन्तु ललमश किसीने नहीं लिखा। यह पुस्तक लिखनेवालेके प्रमादका फल हो सकता है। फ़रिश्ता लिखता है कि कुतुबउद्दीनने इस दासका नाम ख़रीदनेके पश्चात् अलतमश (चन्द्रको लज्जित करनेवाला)

यह सेनाध्यक्ष तथा नायब तक हो गया। कुतुब-उद्दीनका देहान्त होने पर तो इसने स्थायी रूपसे सम्राट् हो कर लोगोंसे राजभक्तिकी शपथ लेना प्रारम्भ कर दिया।

जब (नगरके) समस्त विद्वान् और दार्शनिक, क़ाज़ी वजी-उद्दीन काशानीको लेकर सम्राट्के सम्मुख गये, तब और लोग तो सम्मुख जाकर बैठे परन्तु क़ाज़ी महाशय यथापूर्व सम्राट्के समकक्ष आसनपर जा बैठे। सम्राट्ने उनका विचार तुरन्त ही ताड़ लिया और फ़र्शका कोना उठा एक कागज़ निकाल कर क़ाज़ी महोदयको दे दिया, जिससे पता चला कि कुतुब-उद्दीनने उसको स्वतन्त्र कर दिया था। क़ाज़ी तथा धर्मशास्त्रोंके ज्ञाताओंने उस पत्रको पढ़कर सम्राट्के प्रति राजभक्तिकी शपथ ली।

इसने बीस वर्ष पर्यन्त राज्य किया। यह सम्राट् स्वयं विद्वान् था। इसका चरित्र अच्छा और प्रवृत्ति सदा न्यायकी ओर रहती थी। न्याय करनेके लिए विशेष उत्सुक होनेके कारण इसने आदेश दे दिया था कि जिस पुरुषके साथ अन्याय हो उसे रञ्जित वस्त्र पहन कर बाहर निकलना चाहिये, जिससे सम्राट् उस पुरुषको देखते ही पहचान लें, क्योंकि भारतवर्षमें लोग

रखा; बहुत सम्भव है, अत्यन्त रूपवान् होनेके कारण ही यह नाम रखा गया हो।

अल्तमशने २६ वर्ष पर्यन्त राज्य किया, बतूताने २० वर्ष भ्रमसे लिख दिया है।

(१) कुतुब-उद्दीनका देहान्त हो जाने पर उसके पुत्र आरामशाहने भी कई महीने राज्य किया था परन्तु बतूताने उसका वर्णन नहीं किया है। आरामशाहके सिक्के भी मिले हैं जिनसे उसका सिंहासनासीन होना सिद्ध होता है। उस समय अल्तमश बदायूँका हाकिम था।

साधारणतया श्वेत वस्त्र ही धारण करते हैं। रात्रिके लिए एक दूसरा ही नियम था। द्वार-स्थित बुर्जोंके स्फटिकके बने हुए सिंहोंके गलेमें श्रृङ्खलाएँ डाल कर उनमें घडियाल (बड़े घंटे) बँधवा दिये गये थे। अन्यायपीड़ित व्यक्तिके ज़ञ्जीर हिलाते ही सम्राट्को सूचना हो जाती थी और उसका न्याय तुरन्त किया जाता था। इतना करने पर भी इस सम्राट्को सन्तोष न था। वह कहा करता था कि लोगोंपर रात्रिको अवश्य अन्याय होता होगा, प्रातःकालतक तो बहुत विलम्ब हो जाता है। अतः (दूसरा) आदेश निकाला गया कि न्याया-र्थियोंका फैसला तुरन्त होना चाहिये।

(३) सम्राट् रुक्न-उद्दीन

सम्राट् शमस उद्दीनके तीन पुत्र और एक पुत्री थी। सम्राट्का देहान्त हो जाने पर उसका पुत्र रुक्न-उद्दीन[1] सिंहा-सनासीन हुआ। उसने सर्वप्रथम अपने विमाता-पुत्र रज़िया

---

(१) रुक्न-उद्दीन पिताकी मृत्युके उपरान्त गद्दीपर बैठा। यह ऐश-पसन्द था। राज्यके समस्त अधिकार इसकी माताके हाथमें रहते थे। फरिश्ताके कथनानुसार इसकी माता शाहतरखाँने सम्राट् अल्तमशकी रानियोंका तथा सबसे छोटे पुत्रका बहुत बुरी तरहसे वध करवा डाला था। इसी कारण छोटे, बड़े, सभी लोगोंका चित्त रुक्नउद्दीनकी ओरसे फिर गया था।

फरिश्ता लिखता है कि जब सम्राट् अमीरों (कुलीनों) का विद्रोह शांत करने पञ्जाब गया था, तब कुछ अधिकारी मार्गसे ही लौट आये और उन्होंने रज़ियाको सिंहासनपर बैठा दिया। सम्राट् यह सूचना पाते ही लौट पड़ा परन्तु किलोखड़ी तक ही आ पाया था कि रज़ियाकी सेनाने उसको पकड़ लिया।

के सहोदर-भाई मुअज़्ज़[1]-उद्दीनका वध करवा दिया। जब रज़िया इसपर क्रोधित हुई तो सम्राट्ने उसका भी वध करवाना चाहा।

सम्राट् एक दिन शुक्रवारकी नमाज़ पढ़ने जामे मसजिदमें गया हुआ था कि रज़िया अन्याय-पीड़ितोंके से वस्त्र पहिर कर जामे मसजिदके निकटस्थ प्राचीन राजभवन अर्थात् दौलत-ख़ानेकी छतपर चढ़ कर खड़ी हो गयी और लोगोंको अपने पिताकी न्याय-प्रियता और वत्सलताकी स्मृति दिला कर कहने लगी कि रुक्न-उद्दीन मेरे भाईका वध कर अब मुझको भी मारना चाहता है। इसपर लोगोंने क्रुद्ध हो रुक्न-उद्दीन पर आक्रमण किया और उसको मसजिदमें ही पकड़ कर रज़ियाके सम्मुख ले आये। उसने भी अपने भाईका बदला लेनेके लिए उसको मरवा डाला।

(४) साम्राज्ञी रज़िया

तृतीय भ्राता नासिर-उद्दीनके अल्पवयस्क होनेके कारण, सेना तथा अमीरोंने रज़िया[2] को ही साम्राज्ञी बनाया। इसने

---

(१) मुअज़्ज़-उद्दीन तो रज़ियाके पश्चात् राज-सिंहासनपर बैठा था। मालूम होता है कि बतूताको यहाँ भ्रम हुआ है। फरिश्ताके अनुसार क़ुतुब-उद्दीनका वध हुआ था।

(२) रज़िया—इसमें सम्राटोंके समस्त आवश्यक गुण मौजूद थे। यह आदरपूर्वक क़ुराने शरीफ़का पाठ करती थी। कई विद्याओंका भी इसे पर्याप्त ज्ञान था। पिताके समयमें ही यह मुल्की मुआमलोंमें हस्तक्षेप करने लगी थी। पिताने भी उसको ऐसा करनेसे रोकनेके बजाय और बढ़ावा देनेके लिए ग्वालियर-विजयके उपरांत इसको अपनी युवराज्ञी बना दिया। अमीरोंके विरोध करने पर सम्राट्ने केवल यही उत्तर दिया

चार वर्ष राज्य किया। यह पुरुषोंकी भांति शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित हो घोड़ेपर चढ़ा करती और मुहँ सदा खुला रखती थी। एक हबशी दास[1] से अनुचित सम्बन्ध होनेका लाञ्छन लगाये जानेपर जनताने राजसिंहासनसे उतार कर इसका विवाह एक निकटस्थ संबंधीसे कर दिया।

इसके पश्चात् नासिर-उद्दीन सिंहासनपर बैठा और इसने बहुत वर्ष तक तक राज्य किया।

कुछ दिन बीतने पर रज़िया और उसके पतिने राज-विद्रोह किया और दासों तथा सहायकोंको लेकर मुक़ाबला करनेपर उद्यत हो गये। पर नासिरउद्दीन[2] और उसके पश्चात् सम्राट् होनेवाले उसके नायब 'बलबन' ने रज़ियाकी सेनाको पराजित कर दिया। रज़िया युद्ध[3]-क्षेत्र से भाग गयी। जब यह थक गयी और भूखप्याससे व्याकुल हुई तो एक ज़मींदार-को हल चलाते देख इसने उससे कुछ भोजन माँगा। उसने इसे रोटीका एक टुकड़ा दिया और यह खाकर सो गयी। इस समय यह पुरुषोंके वेशमें थी। इतनेमें ज़मींदारकी दृष्टि इसके

कि 'मेरे पुत्र तो मदिरा पान तथा अन्य व्यसनोंमें ही लिप्त रहते हैं। यह रज़िया ही कुछ योग्य है। आप इसे स्त्री न समझें। यह वास्तवमें स्त्री रूपधारी पुरुष है।' यह पर्देके बाहर आकर, मर्दोंका बाना पहिर (अर्थात् तनमें क़बा और शिरपर कुलाह लगाये हुए) भरे दर्बारमें आकर बैठा करती थी।

(१) इसका नाम जमाल-उद्दीन था।

(२) रज़ियाके पश्चात् मुअज्ज़-उद्दीन बहरामशाह सम्राट् हुआ, जैसा कि ऊपर लिख आये हैं। नासिर-उद्दीनका नाम बतूताने भ्रमसे लिख दिया है।

(३) यह अन्तिम युद्ध कैथलमें हुआ था। बदाऊंनी भी बतूताकी इस कथाका कुछ कुछ समर्थन करता है।

क़बा (एक प्रकारका चोग़ा) पर जा पड़ी। उसने ध्यानपूर्वक देखा तो उसमें टँके हुए रत्न नज़र आये। वह तुरंत समझ गया कि यह स्त्री है। बस सोतेमें ही उसका वध कर उसने वस्त्र-आभूषण उतार लिये, घोड़ा भगा दिया और शवको खेतमें दबाकर स्वयं उसका कोई वस्त्र ले हाटमें बेचने गया। हाट-वाले उसपर सन्देह होनेके कारण उसे पकड़ कर कोतवालके समक्ष ले गये। कोतवालके मारने पीटने पर उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया और शव भी बता दिया। शव वहाँसे निकाल कर लाया गया और स्नान करा कर तथा कफ़न देकर उसी स्थानपर गाड़ दिया गया। उसकी समाधिपर एक गुंबद भी बना दिया गया। इस समय इस समाधिके दर्शनार्थ बहुत लोग जाते हैं। यह ज़ियारत (ईश्वर-भक्ति) की समाधि कहलाती है और यमुना नदीके किनारे नगरसे साढ़े तीन मीलकी दूरीपर है।

५—सम्राट् नासिर-उद्दीन

इसके पश्चात् नासिर-उद्दीन स्थायी रूपसे सम्राट् हुआ। इसने बीस वर्ष राज्य किया। इसका आचरण अत्युत्तम था। यह कुरान-शरीफ़ लिख कर उसकी आयसे निर्वाह करता था। क़ाज़ी कमाल-उद्दीनने इसके हाथका लिखा हुआ कुरान शरीफ़ मुझे दिखाया। अक्षर अच्छे थे। लेखनविधि देखनेसे (सम्राट्) सुलेखक मालूम पड़ता था। फिर नायब, ग़यास-उद्दीन सम्राट्-को मार[1] कर स्वयं सम्राट् बन बैठा।

(१) बलबनके हाथ नासिर-उद्दीनके वधकी बात किसी इतिहास-कारने नहीं लिखी है। फरिश्ता लिखता है कि रोगके कारण सम्राट्का प्राणांत हुआ। बदाऊनीका मत भी यही है।

(६) सम्राट् ग़यास-उद्दीन बलबन

अपने स्वामीका वध कर बलबन[1] स्वयं सम्राट् बन बैठा। राज्यासीन होनेके पहले भी इसने सम्राट्के नायबके पदपर रह कर बीस वर्ष पर्यंत राज्यके सब कार्य किये थे। अब (वस्तुतः) सम्राट् होकर इसने बीस वर्ष और राज्य किया। यह सम्राट् न्यायप्रिय, सदाचारी और विद्वान् था। इसने ए गृह बनवाया था जिसका नाम दार-उल-अमन[2] था। किसी ऋणीके इस गृहमें प्रवेश कर लेने पर सम्राट् स्वयं उसका समस्त ऋण चुका देता था, और अपराध या वध करनेके उपरांत यदि कोई व्यक्ति इस गृहमें आ घुसता था तो वध किये जानेवाले व्यक्तिके और अन्याय-पीड़ितोंके उत्तर धि-कारी प्रतिशोधका द्रव्य देकर संतुष्ट कर दिये जाते थे। मरणो-परांत सम्राट्की समाधि भी इसी गृहमें बनायी गयी। मैंने भी इस (समाधि) को देखा है।

---

(१) बलबन—तबक़ाते नासिरीके लेखकके अनुसार बलबन और अल्तमश दोनों ही राजपुत्र थे। चंगेज़ख़ाँके आक्रमणके समय यह बन्दी बनाये गये और मावरुलनेहरमें 'दास' के रूपमें बेचे गये।

(२) दारउलअमन—फ़तूहात फ़ीरोज़शाहीमें इस गृहका नाम दार-उल-अमान लिखा है और इसके भीतर सम्राटोंकी समाधियाँ बतायी गयी हैं। फ़ीरोज़शाहने इसकी मरम्मत करवा कर द्वारपर चन्दनके किवाड़ लगवाये थे। सर सय्यदके आसारुस्सनादीदमें इस गृहकी स्थिति मैटकाफ साहबकी कोठीके पास मौलाना जमालीकी मसजिदके निकटस्थ खँडहरोंमें बतायी गयी है। इसका पत्थर कुछ तो लखनऊ चला गया और कुछ शाह-जहानाबादके गृहोंमें लग गया। इस समय यह केवल टूटा खँडहर और चूनेका ढेर है।

५

इस सम्राट्के संबंधमें एक अद्भुत कथा कही जाती है। कहते हैं कि बुख़ाराके बाज़ारमें इसको एक साधु मिला। बलबनका क़द छोटा और मुख मिस्तेज एवं कुरूप था ही, (बस) साधुने इसको 'ओ तुरकक' (तुरकड़े) कह कर पुकारा अर्थात् इसके लिए बहुत ही घृणोत्पादक शब्दोंका प्रयोग किया। परन्तु इसने उत्तरमें कहा 'हाज़िर, ऐ खुदाबन्द'। यह सुन साधुने प्रसन्न होकर कहा कि यह अनार मुझे मोल लेकर दे दे। इसने फिर उत्तर देते हुए कहा 'बहुत अच्छा' और जेबसे कुछ पैसे निकाल, अनार मोल लेकर साधुको दे दिया। इन पैसोंके अतिरिक्त इसके पास उस समय और कुछ न था। साधुने अनार ले कर कहा "हमने तुमको भारतवर्ष प्रदान कर दिया।" बलबनने भी अपना हाथ चूम कर कहा "मुझे स्वीकार है"। यह बात उसके हृदयमें बैठ गयी।

संयोगवश सम्राट् शम्स-उद्दीन अलतमशने एक व्यापारीको बुख़ारा, तिरमिज़ और समरक़न्दमें दास मोल लेनेके लिए भेजा। इसने वहाँ जाकर सौ दास मोल लिये जिनमें एक बलबन भी था। जब सम्राट्के सम्मुख दास उपस्थित किये गये तब उसने बलबनके अतिरिक्त और सबको पसंद किया। बलबनके लिए कहा कि मैं इस दासको नहीं लूँगा। यह सुन बलबनने प्रार्थना की "हे अख़वन्द आलम (संसारके स्वामी), इन दासोंको श्रीमान्ने किसके लिए मोल लिया है?" सम्राट्ने कहा 'अपने लिए'। इस पर बलबनने फिर प्रार्थना कर कहा—"निन्यानवे दास तो श्रीमान्ने अपने लिए मोल लिये हैं, एक दास अब ईश्वरके लिए ही मोल ले लीजिये।" सम्राट् अल्तमश यह सुनकर हँस पड़ा और उसने

इसको भी ले लिया। कुरूप होनेके कारण इसको पानी लानेका काम दिया गया।

ज्योतिषियोंने सम्राट्को सूचना दी कि आपका एक दास इस साम्राज्यको लेकर स्वामी बन बैठेगा। ये लोग बहुत दिनोंसे यही बात कहते चले आये थे, परंतु सम्राट्ने अपनी वत्सलता और न्यायप्रियताके कारण इस कथनपर कभी ध्यान नहीं दिया। अंतमें इन लोगोंने सम्राज्ञीसे जाकर यह सब कहा। उसके कहनेपर सम्राट्के हृदयपर जब कुछ प्रभाव पड़ा तो उसने ज्योतिषियोंको बुलाकर पूछा कि तुम उस पुरुषको पहिचान भी सकते हो? वे बोले कि कुछ चिन्ह ऐसे हैं जिनको देखकर हम उसे पहिचान लेंगे। सम्राट्ने अब समस्त दासोंको अपने संमुखसे होकर जानेकी आज्ञा दी। सम्राट् बैठ गया और दासोंकी श्रेणियाँ उसके संमुख होकर गुजरने लगीं। ज्योतिषी उनको देख कर कहते जाते थे कि इनमें वह पुरुष नहीं है। ज़ोहर (एक बजे दिनकी नमाज़) का समय हो गया। सक्कों (भिश्तियों) की अब भी बारी नहीं आयी थी। वे आपसमें कहने लगे कि हम तो भूखों मर गये, (लाओ भोजन बाज़ारसे ही मँगा लें) और पैसे इकट्ठे कर बलबनको बाज़ारमें रोटियाँ लेनेको भेज दिया। इसको निकट-के बाज़ारमें रोटियाँ न मिलीं और यह दूसरे बाज़ारको चला गया जो तनिक दूरीपर था। इतनेमें सक्कोंकी बारी भी आ गयी परन्तु बलबन लौट कर नहीं आया था, अतएव उन लोगोंने एक बालकको कुछ देकर बलबनकी मशक़ और असबाब उसके कन्धेपर रख उसको बलबनके स्थानमें उपस्थित कर दिया। बलबनका नाम पुकारा जाने पर यही बालक बोल उठा और संमुख होकर चला गया पड़ताल पूरी हो गयी

परंतु जिसकी खोज हो रही थी उसको ज्योतिषी न पा सके। जब सक्के सम्राट्के संमुख जाकर लौट आये तब कहीं बलबन वहाँ आया, क्योंकि ईश्वरेच्छा तो पूरी होनेवाली ही थी।

अपनी योग्यताके कारण बलबन अब सक्कोंका अफ़सर हो गया। इसके पश्चात् वह सेनामें भरती हुआ और सरदारके पदपर पहुँचा। सम्राट् होनेके पहले नासिर-उद्दीनने अपनी पुत्रीका विवाह भी इसके साथ कर दिया था[1] और सिंहासनासीन होने पर तो इसको अपना 'नायब' ही बना लिया। बीस वर्षोंतक इस पदपर रहनेके उपरान्त सम्राट्का वध कर यह स्वय सम्राट् बन गया।

बलबनके दो पुत्र थे। बड़ा पुत्र, ख़ाने-शहीद[2] युवराज था और सिंध प्रांतका हाकिम था। इसका निवासस्थान मुल-

---

(१) बलबन शमूस-उद्दीन अल्तमशका जामाता था, नासिरउद्दीनका नहीं।

(२) ख़ाने-शहीद—बलबनका बड़ा पुत्र—विद्वानोंका बड़ा सत्कार करता था और स्वयं भी बड़ा विद्याव्यसनी था। अमीर खुसरो, हसन, देहलवी तथा अन्य बहुतसे विद्वान् इसके यहाँ नौकर थे। शेख़सादी महाशयके पास भी यह युवराज बहुतसी सम्पत्ति उपहारमें भेजा करता था। एक बार तो इसने उनसे भारत आनेकी भी प्रार्थना की थी परन्तु उन्होंने वृद्धावस्था तथा निर्बलताके कारण आनेसे लाचारी प्रकट की और अपनी रचना भेज दी। हलाकू ख़ाँके पौत्रने एक सेना भारतमें भेजी थी, जिसके साथ रावी नदीके तटपर युद्ध करते करते इसका प्राणान्त हुआ। कहा जाता है कि युद्धमें तातारियोंकी पराजय हुई परन्तु एक बाण लग जानेके कारण युवराज गिर पड़ा। अमीर खुसरो भी इस युद्धमें बन्दी हो गया था। उसने युवराजकी मृत्युपर एक बहुत ही हृदयद्रावक 'मरसिया' लिखा है। इसके केवल एक ही पुत्र था।

तानमें था। यह तातारियोंसे युद्ध करते समय मारा गया। इसके कैकुबाद[1] और कैखुसरो नामक दो लड़के थे। बलवनके द्वितीय पुत्रका नाम नासिर-उद्दीन था। पिताके जीवनकालमें यह लखनौती और बंगालका हाकिम था। ख़ाने-शहीदकी मृत्युके उपरान्त बलबनने इस द्वितीय पुत्रके होते हुए भी अपने पौत्र कैखुसरोको युवराज बनाया। नासिरउद्दीनके भी मुअज्ज़-उद्दीन नामक एक पुत्र था जो सम्राट्के पास रहा करता था।

(७) सम्राट् मुअज्ज़-उद्दीन कैकुबाद

गयास-उद्दीन बलबनका रात्रिमें देहावसान हुआ। पुत्र नासिर-उद्दीन (बुग़रा ख़ाँ) के बङ्गालमें होनेके कारण सम्राट्ने अपने पौत्र कैखुसरो[2]को युवराज बना दिया था। परन्तु सम्राट्के नायबने कैखुसरोके प्रति द्वेष होनेके कारण, यह धूर्त्तता की कि सम्राट्का देहान्त होते ही युवराजके पास जा, दुःख एवं समवेदना प्रकट कर एक जाली पत्र दिखाया जिसमें समस्त अमीरोंद्वारा कैकुबादके हाथपर राज-भक्तिकी शपथ

---

(१) कैकुबाद—मुअज्ज़उद्दीनका नाम था। यह ख़ाने-शहीदका पुत्र न था। इसके पिताका नाम नासिरउद्दीन था।

(२) कैखुसरो किस प्रकार निकाला गया, इसका वर्णन केवल बतूताने ही किया है। किसी अन्य इतिहासकारने नहीं। फरिश्ता तो केवल यही लिखता है कि सुलतान मुहम्मदखाँ तथा कोतवाल मलिक मुअज्ज़-उद्दीन में परस्पर द्वेष होनेके कारण मलिकने कतिपय विश्वासयोग्य व्यक्तियोंको एकत्र कर यह कहा कि कैखुसरोंका स्वभाव अत्यन्त ही बुरा है। यदि यह व्यक्ति सम्राट बन गया तो बहुतोंको संसारमें जीवित न छोड़ेगा। संसारकी भलाई इसीमें है कि धैर्य एवं क्षमाशील कैकुबादको ही सम्राट् बनाया जाय।

लेनेकी सम्मिलित योजनाका उल्लेख था। जब युवराज पत्र देख चुका तो इसने कहा कि मुझे आपके जीवनकी आशंका हो रही है। कैख़ुसरोने पूछा "क्या करूँ"? नायबने कहा कि मेरी मतिके अनुसार तो आपको इसी समय सिन्धु प्रांतको चल देना चाहिये। कैख़ुसरोने इसपर, नगर द्वार वंद होनेके कारण, कुछ आपत्ति की परंतु नायबने यह कहा कि कुंजियाँ मेरे पास हैं, आपके निकल जाने पर द्वार फिर बन्द कर लूँगा। कैख़ुसरो (यह सुनकर) बहुत कृतज्ञ हुआ और रात्रिमें ही मुलतानकी ओर भाग गया।

कैख़ुसरोके नगरसे बाहर जानेके उपरांत नायबने मुअज़्ज़-उद्दीनको जा जगाया और कहा कि समस्त उमरा-गण आपके प्रति भक्तिकी शपथ लेनेको तैयार हैं। उसने कहा युवराज (मेरे चाचाका लड़का) तो है ही। मेरे साथ भक्तिकी शपथ लेनेका क्या अर्थ है? नायबने उसको समस्त कथा कह सुनायी और मुअज़्ज़-उद्दीनने उसको अनेक धन्यवाद दिये। रातो रात अमीरों तथा भृत्योंसे सम्राट्की राजभक्तिकी शपथ करा ली गयी। अगले दिवस प्रातःकाल होते ही घोषणा करा दी गयी और सर्वसाधारणने सम्राट्के प्रति राजभक्ति स्वीकार कर ली।

नासिर-उद्दीनको, जब यह सूचना मिली कि पुत्र राज-सिंहासनपर बैठ गया है तो उसने कहा कि सिंहासनपर अधिकार तो मेरा है, मेरे होते हुए पुत्र उसपर नहीं बैठ सकता। बस, सेना सुसज्जित कर उसने हिन्दुस्तानपर धावा बोल दिया। इधर नायब भी सम्राट्को साथ ले सेना सहित उस ओर अग्रसर हुआ। कड़ा[1] नामक स्थानके संमुख

(१) कड़ा—इलाहाबादके ज़िलेमें गंगाके किनारे इलाहाबादसे ४२ मीलकी दूरीपर पश्चिमोत्तर कोणमें स्थित है। अकबरके इलाहाबादमें दुर्ग

गंगा नदीके तटोंपर दोनों ओरकी सेनाओंके शिविर पड़े। युद्ध प्रारंभ ही होनेको था कि ईश्वरकी ओरसे नासिरउद्दीनके हृदयमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि अंतमें तो मुअज्ज़-उद्दीन मेरा ही पुत्र है; मेरे पश्चात् भी वही सम्राट् होगा, फिर जनताका रुधिर बहानेसे क्या लाभ? पुत्रके हृदयमें भी प्रेम उमड़ आया। अंतमें दोनों अपनी अपनी नावोंमें बैठ कर नदीमें मिले। सम्राट्ने पिताके चरण स्पर्श किये। नासिर-उद्दीनने उसको उठा लिया और यह कह कर कि मैंने अपना स्वत्व तुमको ही प्रदान कर दिया, उसके हाथपर भक्तिकी शपथ ली। इस सम्मिलनके ऊपर कवियोंने बहुतसे प्रशंसासूचक पद्य लिखे हैं और इस सम्मिलनका नाम लिक़ा उस्सादैन (दो शुभ ग्रहोंके सम्मिलनका प्रकाश) रखा है।

सम्राट् अपने पिताको दिल्ली[1] ले गया। पुत्रको सिंहासनपर बिठा, पिता सम्मुख खड़ा हो गया। फिर नासिरउद्दीन बङ्गालको लौट गया। कुछ वर्ष राज्य करनेके उपरान्त वहीं उसका प्राणान्त भी हो गया। उसकी जीवित सन्ततिमें केवल ग़यास-उद्दीन[2] नामक पुत्र शूरवीर हुआ जिसको सम्राट्

बनानेके पहले इस इलाकेका हाकिम 'कड़ा' नामक स्थानमें ही रहता था। इस नगरके अनेक गृहोंके पुराने पत्थर नवाब आसफ-उद्दौला लखनऊ ले गये। पहिले यहाँका बना देशी काग़ज़ बहुत प्रसिद्ध था। अब यह रोज़गार तो मारा गया पर कम्बल अब भी अच्छे बनते हैं।

(१) कोई दूसरा इतिहासकार इस कथनका समर्थन नहीं करता कि नासिर-उद्दीन पुत्रके साथ दिल्लीतक गया था।

(२) बतूताने गयासुद्दीनको भ्रमसे नासिरउद्दीनका पुत्र लिखा है। वास्तवमें वह उसका पौत्र था। यही बात बतूताने अध्याय (६-२) में लिखी है।

ग़यासउद्दीनने बन्दी कर रखा था; परन्तु सम्राट् मुहम्मद तुगलक़ने इसको पिताकी मृत्युके उपरान्त छोड़ दिया।

मुअज्ज़-उद्दीनने चार वर्ष तक राज्य किया इस कालमें प्रत्येक दिन ईदके समान व्यतीत होता था और रात्रि शबे-बरातके तुल्य। यह सम्राट् अत्यन्त ही दानशील और कृपालु था। जिन पुरुषोंने इसको देखा था उनमेंसे कुछ मुझसे भी मिले और वे उसके मनुष्यत्व, दयाशीलता तथा दानकी भूरि भूरि प्रशंसा करते थे। दिल्लीकी जामे मसज़िद'की, संसारमें अद्वितीय मीनार भी, इसीने बनवायी थी। विषय-भोग तथा अधिक मात्रामें मदिरापान करनेके कारण इसके एक ओर पक्षाघात भी हो गया जो वैद्योंके घोर प्रयत्न करने पर भी न गया। सम्राट्को इस प्रकार अशक्त हुआ देख नायब जलाल-उद्दीन फीरोज़ने विद्रोह कर दिया और नगरके बाहर जा कुब्बए जैशानी नामक टीलेके निकट अपने डेरे डाल दिये। सम्राट्ने कुछ अमीरोंको उससे युद्ध करनेके लिए भेजा, परन्तु जो अमीर जाता वह फीरोज़से मेल कर उसीके हाथपर भक्ति-की शपथ ले लेता था। फिर जलाल-उद्दीन फीरोज़ने नगरमें घुसकर राजभवनको चारों ओरसे जा घेरा। अब सम्राट् भी स्वयं भूखों मरने लगा। परन्तु एक व्यक्ति मुझसे कहता था कि एक भला पड़ोसी सम्राट्के पास इस समय भी भोजन भेजा करता था।

सेनाने महलमें घुसकर किस प्रकार सम्राट्को मार डाला, इसका वर्णन हम आगे करेंगे। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि इसके पश्चात् जलाल-उद्दीन सम्राट् हुआ।

---

(१) ऊपर लिखा जा चुका है कि नाम एक होनेके कारण, बतूता ग़ोरीके स्थानमें कैकुबादका नाम लिख गया है।

(८) जलाल-उद्दीन फ़ीरोज़

यह सम्राट् बड़ा विद्वान् एवं सहिष्णु था और इसी सहिष्णुताके कारण इसकी मृत्यु भी हुई। स्थायी रूपसे सम्राट् होनेपर इसने एक भवन अपने नामसे निर्माण कराया। सम्राट् मुहम्मद तुग़लक़ने अब उसे अपने जामाता 'बिनग़द्दा बिन मुहन्नी' को दे दिया है।

सम्राट्के एक पुत्र था जिसका नाम था रुक्न-उद्दीन और एक भतीजा था जिसका नाम था अला-उद्दीन। यह सम्राट्का जामाता भी था। सम्राट्ने इसको कड़ा-मानकपुरका हाकिम (गवर्नर) नियत कर दिया था। भारतवर्षमें यह प्रान्त बहुत ही उपजाऊ समझा जाता है। गेहूँ, चावल और गन्ना यहाँ खूब होते हैं; बहुमूल्य कपड़े भी बनते हैं जो दिल्लीमें आकर बिकते हैं। दिल्लीसे यह नगर अठारह पड़ावकी दूरीपर है।

अलाउद्दीनकी स्त्री उसको सदा कष्ट[१] दिया करती थी। अलाउद्दीन अपने चचासे स्त्रीके इस बर्तावकी शिकायत किया करता था, और अन्तमें इसी कारण दोनोंके हृदयोंमें अन्तर भी पड़ गया। अलाउद्दीन साहसी, शूरवीर और बड़ी अड़वाला था परन्तु उसके पास द्रव्य न था।

---

(१) फरिश्ताने इस सम्बन्धमें केवल इतना ही लिखा है कि सम्राट् जलाल-उद्दीनने अपनी अत्यन्त रूपवती लड़कीका विवाह अलाउद्दीनके साथ कर दिया। परन्तु बदाऊनीके लेखानुसार अलाउद्दीन सम्राज्ञी, अर्थात् अपनी सास, और स्त्रीसे हृदयमें सदा क्रुद्ध रहता था। कारण यह था कि ये दोनों सम्राट्से सदा इसके व्यवहारकी निन्दा किया करती थीं और इसीसे अलाउद्दीन खीज कर सम्राट्से दूर किसी एकान्तस्थलमें तरकीबसे भागनेकी चिन्तामें था।

एक बार उसने मालवा और महाराष्ट्रकी राजधानी देवगिरिपर आक्रमण किया। यहाँका हिन्दू राजा सब राजाओंमें श्रेष्ठ समझा जाता था। मार्गमें जाते समय अलाउद्दीनके घोड़ेका पैर एक स्थानपर धरतीमें धँस गया और 'टन' ऐसा शब्द हुआ। स्थान खुदवाने पर बहुत धन निकला[१] जो समस्त सैनिकोंमें बाँट दिया गया। देवगिरि पहुँचने पर राजाने बिना युद्ध किये ही अधीनता स्वीकार कर ली और प्रचुर धन देकर इसको विदा किया।

'कड़ा' लौट आने पर अलाउद्दीनने सम्राट्के पास वह लूट न भेजी। दर्बारियोंके भड़काने पर सम्राट्ने उसको बुला भेजा, परन्तु वह न गया। पुत्रसे भी अधिक प्रिय होनेके कारण सम्राट्ने उसके पास स्वयं जानेका विचार किया। यात्राका सामान ठीक कर वह सेना सहित 'कड़ा' की ओर चल दिया। नदीके किनारे जिस स्थानपर मुअज्ज़ उद्दीनने डेरे डाले थे उसी स्थानपर सम्राट्ने भी अपना शिविर डाला और नावमें बैठ कर भतीजेकी ओर चला।

---

(१) दबा हुआ धन मिलनेका वृत्तान्त और किसी इतिहासकारने नहीं लिखा। उनके अनुसार अलाउद्दीन सम्राट्की आज्ञासे सात आठ-सहस्र सवारोंके सहित गया तो था चन्देरी-विजयको और पहुंच गया ऐलिचपुरमें। वहाँ जाकर उसने यह प्रसिद्ध कर दिया कि पितृव्यसे अप्रसन्न होकर मैं तैलिंगानाके राजाके यहाँ नौकरी करने जा रहा हूँ और अचानक देवगिरिमें जा कूदा। राजा युद्धके लिए बिलकुल तैयार न था। उसने कुछ देकर सन्धि कर ली। उसका पुत्र इस समय वहाँ नहीं था। उसने आकर अलाउद्दीनसे युद्ध किया और हार खायी। अलाउद्दीनने छः सौ मन सोना, सात मन मोती, दो मन हीरा, लाल इत्यादि रत्न और दो सहस्र मन चाँदी लेकर उसका पीछा छोड़ा।

अलाउद्दीन दूसरी ओरसे नावमें बैठ कर तो आया, परन्तु उसने अपने भृत्योंको संकेत कर दिया था कि मैं सम्राट्को ज्योंही गले लगाऊँ त्योंही तुम उसका वध कर डालना। उन्होंने ऐसा ही किया। सम्राट्की कुछ सेना तो अलाउद्दीनसे आ मिली और कुछ दिल्लीकी ओर भाग गयी।

यहाँ आकर सैनिकोंने सम्राट्के पुत्र रुक्न-उद्दीन[1]को राज-सिंहासनपर बैठा कर सम्राट् घोषित कर दिया, परन्तु जब नवीन सम्राट् इस सेनाके बलपर अला-उद्दीनसे युद्ध करने आया तो ये भी विपक्षीकी सेनामें जा मिले। (बेचारा) रुक्न-उद्दीन सिन्धुकी ओर भाग गया।

(६) सम्राट् अलाउद्दीन मुहम्मदशाह

राजधानीमें प्रवेश कर अलाउद्दीनने बीस वर्ष पर्य्यन्त बड़ी योग्यतासे शासन किया। इसकी गणना उत्तम सम्राटोंमें की जाती है, हिन्दू तक इसकी प्रशंसा करते हैं। राज्य-कार्यौंको यह स्वयं देखता और नित्य बाज़ार-भावका हाल पूछ लेता था। मुहतसिब नामक अधिकारीविशेषसे, जिसे इस देशमें 'रईस' कहते हैं, प्रतिदिन इस सम्बन्धमें रिपोर्ट भी ली जाती थी।

कहते हैं कि एक दिन सम्राट्ने मुहतसिबसे मांस महँगा बिकनेका कारण पूछा। उसके यह उत्तर देने पर कि इन पशुओं-

---

(१) फीरोज़ शाह ख़िलजीके तीन पुत्र थे। सबसे बड़ेका नाम था ख़ाँजहाँ। इसकी मृत्यु सम्राट्के जीवन-कालमें ही हो गयी थी। इसकी मृत्युपर अमीर ख़ुसरोने शोकसूचक कविता भी लिखी है।

दूसरे पुत्रका नाम था अरकुली खाँ। यह भी बड़ा कुशल था परन्तु बादशाह बेगमने मूर्खतावश इसकी बाट न देख उपर्युक्त तृतीय पुत्रको ही सिंहासनपर बिठा दिया।

पर ज़कात (करविशेष) लगनेके कारण ऐसा होता है, सम्राट्‌ने उसी दिनसे इस प्रकारके समस्त कर उठा लिये और व्यापारियोंको बुला कर राजकोषसे बहुत सा धन गाय और बकरियाँ मोल लेनेके लिए इस प्रतिज्ञापर दे दिया कि इनके बिक जाने पर वह धन पुनः राजकोषमें ही जमा कर दिया जायगा। व्यापारियोंका भी उनके श्रमके लिए कुछ पृथक् वेतन नियत कर दिया गया। इसी प्रकारसे दौलताबाद-से विक्रयार्थ आनेवाले कपड़ेका भी उसने प्रबन्ध किया।

अनाज बहुत महँगा[1] हो जानेके कारण एक बार उसने सरकारी गोदाम खुलवा दिये, जिससे भाव तुरन्त मन्दा पड़ गया। सम्राट्‌ने उचित मूल्य नियत कर आज्ञा निकाल दी कि

---

(१) अल्तमश तथा बलबनके समयसे लेकर अलाउद्दीन ख़िलजी-के समय तक एशिया तथा पूर्वीय यूरोपमें मुगलोंके बहुत ही भयानक आक्रमण हुए। 'यदि उस समय भारतमें, उपर्युक्त सम्राटों जैसे कठोर एवं योग्य शासक न होते तो तातारियोंके घोड़ोंकी टापोंसे ही सारा उत्तरीय भारत वीरान हो जाता। उस समय इन जंगलियोंके आक्रमण रोकनेके लिए मुलतान आदि सीमा-नगरोंके अधिकारी बड़ी छानबीनके पश्चात् नियत किये जाते थे। तातारियोंके आक्रमण निरंतर बढ़ते हुए देखकर अलाउद्दीनने एक बृहद् सेना तैयार करनेका विचार किया परंतु हिसाब करनेपर पता चला कि इतना व्यय साम्राज्य वहन न कर सकेगा। अतएव सम्राट्‌ने परामर्श द्वारा सैनिकोंका वेतन तो कम कर दिया पर वस्तुओंका मूल्य ऐसा नियत किया कि उसी वेतनमें सुखपूर्वक सबका निर्वाह हो जाय। कार्यपूर्त्तिके लिए पौने पाँच लाख सवार रखनेकी आज्ञा हुई और एक घोड़ेवाले सवारका वेतन दोसौ चौंतीस टंक (रुपया) तथा दो घोड़ेवालोंका ३१२ टंक नियत कर दिया गया। वस्तुओंका मूल्य इस प्रकार निर्धारित हुआ—

(अगला पृष्ठ देखिये)

इसीके अनुसार अनाजका क्रय-विक्रय हो, परन्तु व्यापारियोंने इस प्रकार बेचना अस्वीकार कर दिया। इसपर सम्राट्ने अपने गोदाम खुलवा कर उनको बेचनेकी मनाही कर दी और स्वयं छः महीनेतक बेचता रहा। व्यापारियोंने अब अपना अनाज बिगड़ते तथा कीटादिकी भेंट होते देख सम्राट्से प्रार्थना की तो उसने पहिलेसे भी सस्ता भाव नियत कर दिया और उनको अब लाचार होकर यही भाव स्वीकार करना पड़ा।

सम्राट् किसी दिवस भी सवार होकर बाहर न निकलता था, यहाँ तक कि शुक्रवार और ईदके दिन भी पैदल ही चला जाता था।

इसका कारण यह बताया जाता है कि इसको अपने एक

---

१ मन गेहूँ	(पक्के १४ सेर)	= साढ़े सात जेतल (आधुनिक दो आने)
१ मन जौ	(,,)	= चार जेतल
१ मन चावल	(,,)	= पाँच जेतल
१ मन दाल मूंग	(,,)	= पाँच जेतल
१ मन चना	(,,)	= पाँच जेतल
१ मन मोठ	(,,)	= तीन जेतल

इसके अतिरिक्त घोड़ेसे लेकर सुई तक प्रत्येक वस्तुका मूल्य नियत कर दिया गया था। कोई व्यक्ति अधिक मूल्य लेकर कोई चीज़ नहीं बेच सकता था। अकाल तथा सुकाल दोनोंमें ही एकसा मूल्य रहता था। सम्राट्की निजी ज़मींदारीमें भी किसानोंसे नक़दीके स्थानमें अनाज ही लिया जाता था और अकाल होनेपर सम्राट्के गोदामोंसे निकालकर बेचा जाता था। विद्वानोंको इस बातकी आज्ञा थी कि वे ज़मींदारोंसे नियत मूल्यपर बनजारोंको अनाज दिलवायें। बनजारे भी नियत मूल्य-पर ही व्यापारियोंको बाज़ारमें अनाज दे सकते थे। अलाउद्दीनके मरते ही इस प्रबंधका भी अंत हो गया।

भतीजे सुलैमानसे अत्यंत स्नेह था। सम्राट् इस भतीजेके साथ एक दिन आखेटको गया। जिस प्रकारका बर्त्ताव सम्राट्ने अपने पितृव्यके साथ किया था उसीका अनुकरण यह भतीजा भी अब करना चाहता था। भोजनके लिय जब वे एक स्थान पर बैठे तो सुलैमानके सम्राट्पर एक बाण चलाते ही वह गिर पड़ा और एक दासने अपनी ढाल उसपर डाल दी। जब भतीजा सम्राट्का कार्य तमाम करने आया तो दासोंने यह कह दिया कि उसका तो बाण लगते ही देहांत हो गया। उनके कथनपर विश्वास कर यह तुरंत राजधानीकी ओर जा रन-वासमें घुसनेका प्रयत्न करने लगा। इधर सम्राट् भी मूर्छा बीतने पर संज्ञा-लाभ कर नगरमें आया। उसके आते ही समस्त सेना उसके चारों ओर एकत्र हो गयी। यह समाचार पाते ही भतीजा भी भाग निकला परन्तु अंतमें पकड़ा गया और सम्राट्ने उसका वध करा दिया। उस दिनसे सम्राट् कभी सवार होकर बाहर नहीं निकला।

सम्राट्के पाँच पुत्र थे जिनके नाम ये थे—ख़िज़र खाँ, शादी ख़ाँ, अबूबकर ख़ाँ, मुबारक खाँ (इसका द्वितीय नाम कुतुब-उद्दीन था) और शाहाबुद्दीन।

सम्राट् कुतुब-उद्दीनको सदा हतबुद्धि, अभागा और साहस-हीन समझा करता था। और भाइयोंको तो सम्राट्ने पद भी दिये और झंडे तथा नगाड़े रखनेकी आज्ञा भी दी परन्तु इसको कुछ भी न दिया। एक दिन सम्राट्ने इससे कहा कि तेरे अन्य भ्राताओंको पद तथा अधिकार देनेके कारण तुझे भी लाचारीसे कुछ देना पड़ेगा। इसपर कुतुब-उद्दीनने उत्तर दिया कि मुझे ईश्वर देगा, आप क्यों चिन्ता करते हैं। इस उत्तरको सुन सम्राट् भयभीत हो उसपर बहुत क्रुद्ध हुआ।

सम्राट्के रोगी होनेपर प्रधान राजमहिषी ख़िज़र ख़ाँकी माताने, जिसका नाम माहक था, अपने पुत्रको राज्य दिलानेका प्रयत्न करनेके लिए अपने भाई संजर[1]को बुलाया और शपथ देकर इस बातकी प्रतिज्ञा करवायी कि वह सम्राट्की मृत्युके उपरांत इसके पुत्रको राजसिंहासनपर बैठानेका प्रयत्न करेगा।

सम्राट्के नायब मलिक अलफ़ी[2] (हज़ार दीनारमें सम्राट् द्वारा मोल लिये जानेके कारण यह इस नामसे पुकारा जाता था) ने इस प्रतिज्ञाकी सूचना पाते ही सम्राट्पर भी यह बात प्रकट कर दी। इसपर सम्राट्ने अपने भृत्योंको आज्ञा दी कि जब संजर वहाँ आकर सम्राट्-प्रदत्त खिलअत पहिरने लगे उसी समय उसके हाथ-पैर बाँध देना और धरतीपर गिराकर उसका वध कर देना। सम्राट्के आदेशानुसार ऐसा ही किया गया।

ख़िज़रख़ाँ[3] उस दिन दिल्लीसे एक पड़ावकी दूरीपर, संदम्त[4] (संपत) नामक स्थानमें धर्मवीरोंकी समाधियोंके दर्शनार्थ गया हुआ था। इस स्थान तक पैदल जाकर पिताके आरोग्य-

(१) संजर—इसकी उपाधि अलप ख़ाँ थी। यह सम्राट्के चार मित्रोंमेंसे था।

(२) मलिक अलफ़ी—मलिक काफ़ूरकी उपाधि थी।

(३) ख़िज़र ख़ाँ—बदाऊनी और बतूता इस कथाका वर्णन भिन्न भिन्न रूपसे करते हैं। प्रथमके अनुसार यह हस्तिनापुरका हाकिम था। सम्राट्की रुग्णावस्थाका वृत्तांत सुनकर यह दिल्लीकी ओर आया तो क़ाफ़ूरने सम्राट्को षड्यंत्रकी बात सुझा दी और यह बंदी बनाकर अमरोहा भेज दिया गया। इस इतिहासकारके कथनानुसार सम्राट्ने दूसरी बार क्रोधित होकर ख़िज़र ख़ाँको ग्वालियर भेजा था।

(४) संदम्त—संभवतः यह आधुनिक सोनपत है। प्राचीन कालमें

लाभके लिए ईश्वरप्रार्थना करनेकी उसने प्रतिज्ञा की थी। पिता द्वारा अपने मामाका वध सुनकर उसने शोकावेशमें अपने वस्त्र फाड़ डाले (भारतवर्षमें निकटस्थ सम्बन्धीकी मृत्यु होनेपर वस्त्र फाड़नेकी रीति चली आती है)। इसकी सूचना मिलने पर सम्राट्को बहुत बुरा लगा। जब खिज़रख़ाँ उसके सम्मुख उपस्थित हुआ तो उसने क्रोधित हो उसकी बहुत भर्त्सना की और फिर उसके हाथ-पाँव बाँध नायबके हवाले करनेकी आज्ञा दे दी। इसके उपरान्त इसे ग्वालियर के दुर्गमें बन्दी करनेका आदेश नायबको दिया गया।

यह दृढ़ दुर्ग हिन्दू राज्योंके मध्यमें दिल्लीसे दस पड़ावकी दूरीपर बना हुआ है। ग्वालियरमें ख़िज़रख़ाँ, कोतवाल तथा दुर्गरक्षकोंको सुपुर्द कर दिया गया और उनको चेतावनी भी दे दी गयी कि उसके साथ राजपुत्र जैसा व्यवहार न कर उसकी ओरसे घोर शत्रुवत् सचेत रहना चाहिये।

सम्राट्का रोग अब दिन दिन बढ़ने लगा। उसने युवराज बनानेके लिए ख़िज़रख़ाँका बुलाना भी चाहा परन्तु नायबने 'हाँ' करके भी उसको बुलानेमें देर कर दी और सम्राट्के पूछनेपर कह दिया कि अभी आता है। इतनेमें सम्राट्के प्राणपखेरू उड़ गये।

(१०) सम्राट् शहाब-उद्दीन

अलाउद्दीनकी मृत्यु हो जानेपर, मलिके-नायब (अर्थात् काफ़ूर) ने सबसे छोटे पुत्र शहाब-उद्दीनको राजसिंहासनपर

जमुना नदी इसी नगरके दुर्गके नीचे बहती थी। यह बहुत प्राचीन नगर है। कहते हैं कि युधिष्ठिरने जो पाँच गाँव दुर्योधनसे माँगें थे उनमें एक यह भी था।

बैठा कर लोगोंसे राजभक्तिकी शपथ ले ली, पर समस्त राज्य-कार्य अपने हाथमें रख लिया। उसने शादी ख़ाँ तथा अबू-बकर ख़ाँकी आँखोंमें सलाई भरवा कर ग्वालियरके दुर्गमें वन्दी कर दिया, और यही बर्ताव ख़िज़र ख़ाँके साथ भी करनेकी आज्ञा वहाँ भेज दी।

चतुर्थ पुत्र कुतुबउद्दीन भी वन्दीगृहमें डाल दिया गया परन्तु उसको अन्धा नहीं किया। (इस प्रकारका अनर्थ होते देख) बादशाहबेग़मने, जो सम्राट् मुअज्ज़-उद्दीनकी पुत्री थी, सम्राट् अलाउद्दीनके बशीर और मुबश्शर नामक दो दासोंको यह सन्देशा भेजा कि मलिके-नायबने मेरे पुत्रोंके साथ जैसा बर्ताव किया है वह तो तुम जानते ही हो, अब वह कुतुब-उद्दीनका भी वध करना चाहता है। इसपर उन लोगोंने यह उत्तर भेजा कि 'जो कुछ हम करेंगे वह सब तुमपर प्रकट हो जायगा।'

ये दोनों पुरुष रात्रिको नायबके ही पास रहा करते थे। अस्त्र-शस्त्रादिसे सुसज्जित हो इनको वहां जानेकी आज्ञा मिली हुई थी। उस रात्रिको भी ये दोनों यथापूर्व वहाँ पहुँचे। नायब उस समय सबसे ऊपरकी छतपर बने हुए क़ज़ागन्द द्वारा मढ़े हुए लकड़ीके बालाख़ानेमें, जिसको इस देशमें 'ख़रमका' कहते हैं, विश्राम कर रहा था। दैवयोगसे इन दो पुरुषोंमेंसे एकको तलवार नायबने अपने हाथमें ले ली और फिर उसे उलट-पलट कर वैसे ही लौटा दिया। इतना करते ही एकने तुरन्त प्रहार किया और दूसरेने भी भरपूर हाथ मारा। फिर दोनोंने उसका कटा सिर कुतुब-उद्दीनके पास ले जाकर वन्दी-गृहमें डाल दिया और उसको कारागारसे मुक्त कर दिया।

(१) ख़िरमका—मालूम नहीं, यह शब्द किस भाषाका है।

(११) सम्राट् कुतुब-उद्दीन

कुतुब-उद्दीन कुछ दिनतक तो अपने भाई शहाब उद्दीनके नायबकी तरह कार्य करता रहा, परन्तु इसके पश्चात उसको सिंहासनसे उतार वह स्वयं सम्राट् बन बैठा। उसने शहाब-उद्दीनकी उँगलियाँ काट कर उसे अपने अन्य भ्राताओंके पास ग्वालियर दुर्गमें भेज दिया और आप दौलताबादकी ओर चल दिया।

दौलताबाद दिल्लीसे चालीस पड़ावकी दूरीपर है, परन्तु मार्गमें दोनों ओर वेद, मजनूं तथा अन्य जातिके इतने वृक्ष लगे हुए हैं कि पथिकको मार्ग उपवन सरीखा प्रतीत होता है। हरकारोंके लिए प्रत्येक कोसमें उपर्युक्त विधिकी तीन-तीन डाक चौकियाँ बनी हुई हैं, जहाँपर राहगीरको बाज़ारकी प्रत्येक आवश्यक वस्तु मिल सकती है। तैलङ्गाना तथा माअबर प्रदेशोंतक यह मार्ग इसी प्रकार चला गया है। दिल्लीसे वहाँतक पहुँचनेमें छः मास लगते हैं। प्रत्येक पड़ाव-पर सम्राट्के लिए प्रासाद तथा साधारण पथिकोंके लिए पांथनिवास (सराय) बने हुए हैं। इनके कारण यात्रियोंको यात्रामें आवश्यक पदार्थोंके रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती।*

---

* ऐसी दो सड़कें शेरशाहने भी तैयार करायी थीं। बदाऊनीका कथन है कि पूर्वमें बंगालसे लेकर पश्चिममें रोहतासतक (जो चार मासकी राह है) और आगरासे लेकर माँडूतक (जो ३०० कोसकी दूरी है) प्रत्येक कोसपर मसजिद, कुँआ, और सराय, पक्की ईंटोंकी बनी हुई है और इन स्थानोंमें मोदी, इमाम तथा हिंदू-मुसलमानोंको पानी पिलानेवाले तैनात रहते थे। इनके अतिरिक्त साधु-संत तथा

सम्राट् कुतुबउद्दीनके इस प्रकार दौलताबादकी ओर चले जाने पर कुछ अमीरोंने विद्रोह कर सम्राट्के भतीजे[1] ख़िज़र ख़ाँके द्वादशवर्षीय पुत्रको राजसिंहासनपर बैठानेका प्रयत्न किया। पर कुतुब-उद्दीनने भतीजेको पकड़ लिया और उसका सिर पत्थरोंसे टकरा भेजा निकाल कर मार डाला। उसने मलिक शाह[2] नामक अमीरको ग्वालियरके दुर्गमें जा लड़केके पिता तथा पितृव्योंका भी वध कर डालनेकी आज्ञा दी।

राहगीरोंके लिए धर्मार्थ भोजनालय भी यहाँ बने रहते थे। सड़कके दोनों ओर आम, खिरनी आदिके बड़े बड़े वृक्ष होनेके कारण राहगीरोंको राह चलनेमें धूपतक न सताती थी। ५२ वर्ष पश्चात् अकबरके समयमें उपर्युक्त ऐतिहासिकने यह सब बातें अपनी आँखोंसे देखी थीं। फरिश्ताने इस वर्णनमें यह बात और लिखी है कि पूर्वसे पश्चिमतक सर्वत्र प्रदेशके समाचारोंकी ठीक ठीक सूचना देनेके लिए प्रत्येक सरायमें 'डाक चौकी' के दो दो घोड़े सदा विद्यमान रहते थे। सम्राट् अपने राजप्रासादमें ज्योंही भोजनपर बैठता था त्योंही इसकी सूचना नगाड़ोंके शब्द द्वारा दी जाती थी और शब्द होते ही सरायोंमें रखे हुए नगाड़े सर्वत्र बजाये जाते थे। इस प्रकार बंगालसे लेकर रोहतासतक सर्वत्र इसकी सूचना मिलते ही प्रत्येक सरायमें मुसलमानोंको पका हुआ भोजन और हिंदुओंको आटा-घी तथा अन्य पदार्थ बाँट दिये जाते थे।

(१) जो पुरुष देवगिरि (दौलताबाद) की राहमें षड्यंत्र रचकर सम्राट्का वध करना और स्वयं सम्राट् बनना चाहता था उसका नाम असदउद्दीन बिन युग़रिश था। यह सम्राट् अलाउद्दीनके पितृव्यका पुत्र था।

(२) ख़िज़र ख़ाँके वधके संबंधमें बदाऊनी यह लिखता है कि देवगिरिसे लौटते समय रणथंभोरके निकट 'नवा शहर' नामक स्थानसे राजकीय अस्त्रागारका अध्यक्ष शादी ख़ाँ ख़िज़रका वध होनेके उपरान्त

ग्वालियरके क़ाज़ी, ज़ैन-उद्दीन मुबारक मुझसे कहते थे कि मलिकशाहके वहाँ पहुँचनेके समय मैं (स्वयं) ख़िज़रख़ाँके समीप बैठा हुआ था। इस अमीरके आनेका समाचार सुनते ही उसका रंग उड़ गया। मलिकशाहके वहाँ आने पर जब ख़िज़रख़ाँने दुर्गमें आनेका कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया 'अख़वन्दे आलम! (संसारके प्रभु) मैं किसी आवश्यक कार्यके

उनकी स्त्री और पुत्र आदिको राज-भवनमें लानेके लिए ग्वालियर भेजा गया था। इसके प्रथम ७१८ हिजरीमें यही पुरुष उपर्युक्त राजपुत्रोंका वध कर देवल देवीको सम्राट्के रनिवासमें लानेके हेतु भेजा गया था। प्रसिद्ध कवि खुसरोने अपने 'देवल देवी और ख़िज़र ख़ाँ' नामक काव्यमें यह कथा इस भाँति लिखी है कि मुबारक शाहने देवल देवीको प्राप्त करनेके लिए ख़िज़र ख़ाँको यहाँतक लिख मारा था कि यदि तुम अपनी भार्या मुझको दे दोगे तो मैं तुमको बंदीगृहसे निकाल कर किसी प्रांतका गवर्नर बना दूँगा परंतु ख़िज़र ख़ाँने अंगीकार न किया और 'अमीर' खुसरोके शब्दोंमें यह कहा—

चो बामन हम सरस्तई यारे जानी। सरे मन दूर कुन ज़ां पस बदानी॥

(अर्थात् यदि प्राण-प्यारी मेरे मनके अनुकूल आचरण करती है तो तू मेरी जान मत खा, और जो करना हो कर।) सम्राट्को यह बात बहुत बुरी लगी और—

व तुंदी सर सलाहीरा तलब कर्द। के बायद सदकिरो इमरोज़ शब कर्द॥
रोअन्दर गालियोर ईंदम न बसदेर। सरे शेरां मलक अफ़ग़न व शमशेर॥

(तात्पर्य यह कि क्रोधमें आकर उसने अस्त्राध्यक्षको बुलाया और कहा कि सौ कोसकी यात्रा एक ही रातमें समाप्त कर ग्वालियर जाकर वधकर डाल) फरिश्ताके कथनानुसार राजपुत्रोंका, जिनकी आँखोंमें पहलेसे ही सलाई खींची जा चुकी थी, वध कर दिया गया और देवल देवी (ख़िज़र ख़ाँकी पत्नी) राजकीय निवासमें लायी गयी।

लिए ही उपस्थित हुआ हूँ।' इसपर ख़िज़रखाँने पूछा मेरा-जीवन तो निरापद है।' उसने उत्तर दिया 'हाँ।'

इसके अनन्तर उसने कोतवालको बुलाया और मुझको तथा तीन सौ दुर्गरक्षकोंको साक्षी कर सबके संमुख सम्राट्की आज्ञा पढ़ी। उसने शहाबउद्दीनके पास जाकर उसका वधकर डाला परन्तु उसने कुछ भय या घबराहट प्रदर्शित नहीं की। फिर शादीख़ाँ और अकबरखाँकी गर्दनें मारी गयीं परन्तु जब ख़िज़रख़ाँकी बारी आयी तो वह रोने और चिल्लाने लगा। उसकी माता भी उसके साथ वहाँ रहती थी परन्तु उस समय वह एक घरमें बन्द कर दी गयी थी। ख़िज़रख़ाँके वधके उपरांत उनके शव बिना कफ़न पहिराये तथा बिना अच्छी तरह दाबे हुए योंही गड़हेमें फेंक दिये गये। कई वर्षके उपरांत ये शव वहाँसे निकाल कर कुलके समाधिगृहमें दबाये गये। ख़िज़रख़ाँकी माता और पुत्र कई वर्ष बादतक जीवित रहे। माताको मैंने हिजरी ७२८ में पवित्र मक्कामें देखा था।

ग्वालियरका दुर्ग[1] पर्वत-शिखरपर बना हुआ है और देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो शिलाको काटकर ही किसीने इसका निर्माण किया है। इस दुर्गके समीप कोई

---

(१) श्री हंटर महोदयके कथनानुसार ग्वालियर दुर्ग ३४२ फुट ऊँची चट्टानपर बना हुआ है। यह डेढ़ मील लंबा और तीनसौ गज़ चौड़ा है। हाथीकी मूर्ति होनेके कारण द्वारका नाम 'हाथी पौल' पड़ गया है। राजभवन, मानसिंहने (१४८६–१५१६ ई० में) निर्माण कराये थे। जहाँगीर, शाहजहाँ तथा विक्रमादित्यके भवन भी उपर्युक्त प्रासादके निकट ही बने हुए हैं। ये सब अत्यंत ही सुंदर हैं। नगर गढ़के नीचे बसा हुआ है। प्राचीन वस्तुओंमें वहाँपर ग्वालियर-निवासी शैख़ मुहम्मद ग़ौसका मठ दर्शनीय है। [अगला पृष्ठ देखिये]

अन्य पर्वत इतना ऊँचा नहीं है। दुर्गके भीतर एक जलाशय और लगभग बीस कूप बने हुए हैं। प्रत्येक कूपकी ऊँची दीवारोंपर मुञ्जनीक़ लगे हुए हैं। दुर्गपर चढ़नेका मार्ग इतना प्रशस्त बना हुआ है कि हाथी तक सुगमतासे आ जा सकते हैं। दुर्गके द्वारपर पत्थर काटकर इतना सुन्दर महावत सहित हाथी निर्माण किया गया है कि दूरसे वास्तविक हाथी-सा प्रतीत होता है।

नगर दुर्गके नीचे बसा हुआ है। यह भी बहुत सुन्दर है। यहाँके समस्त गृह और मसजिदें श्वेत पत्थरकी बनी हुई हैं। द्वारके अतिरिक्त इनमें किसी स्थानपर भी लकड़ी नहीं लगायी गयी है। यहाँकी अधिकांश प्रजा हिन्दू है। सम्राट्की ओरसे

अनुसंधानसे पता चलता है कि ग्वालियर दुर्ग शूरसेन नामक राजाने निर्माण कराया था। ग़ज़नवी तो सन् १०२३ में इसकी विजय न कर सका, परंतु ग़ोरीने इसको ११९६ ई० में ले लिया। १२११ ई० में मुसलमान सम्राटोंका इसपर अधिकार न रहा, पर अलतमशने १२३१ ई० में इसको फिर अपने अधीन कर लिया। सम्राट् अकबरके समयमें उच्च कुलोद्भूत बंदियोंके लिए इसका उपयोग किया जाता था। परंतु इब्नबतूताके कथनसे इसका उपर्युक्त उपयोग बहुत प्राचीन सिद्ध होता है। अंग्रेजोंने १८५७ में इसपर अधिकार कर लिया परंतु लार्ड डफ़रिनने फिर इसे झांसी नगरके बदलेमें सिंधिया दरबारको ही दे दिया।

दुर्गके हाथियोंको देखकर ही अकबरने आगरा-दुर्गके पश्चिमीय द्वारपर भी महावत सहित दो हाथी बनवाये थे। शाहजहाँने उनको दिल्लीके लाल दुर्गमें लेजाकर खड़ा कर दिया। परंतु औरंगज़ेबने इनको मूर्त्तिपूजाका चिन्ह समझकर वहाँसे हटा दिया। पुरातत्त्व-वेत्ताओंकी खोजसे, कुछ ही वर्ष पहले, इन हाथियोंके टुकड़े वहीं क़िलेमें दबे हुए मिले हैं। इन्हें जोड़नेसे हाथियोंकी मूर्त्तियाँ ठीक बन जाती हैं।

यहाँ छः सो घुड़सवार रहते हैं। हिन्दू राज्योंके मध्यमें होनेके कारण ये बहुधा युद्धमें ही लगे रहते हैं।

इस प्रकारसे अपने भ्राताओंका वध करनेके उपरान्त जब कुतुब-उद्दीनका कोई (प्रकाश्य रूपसे) वैरी न रहा तो परमेश्वरने एक बहुत मुहँचढ़े अमीरके रूपमें उसका प्राणहर्त्ता संसारमें भेजा। इसीके हाथों सम्राट्की मृत्यु हुई। हत्याकारी भी थोड़े ही समयतक सुखपूर्वक वैठने पाया था कि ईश्वरने सम्राट् तुग़लकके हाथों उसका भी वध करा दिया—इसका पूर्ण वृत्तान्त हम अभी अन्यत्र वर्णन करते हैं।

कुतुबउद्दीनके अमीरोंमेंसे खुसरो ख़ाँ नामक एक अमीर अत्यन्त ही सुन्दर, वीर और साहसी था। भारतवर्षके अत्यंत उपजाऊ—चँदेरी और माअबर सरीखे, दिल्लीसे छः माहकी राहवाले, सुन्दर प्रान्तोंको इसीने विजय की थी। सम्राट् कुतुबउद्दीन इस खुसरोख़ाँसे अत्यन्त प्रेम रखता था।

सम्राट्के शिक्षक क़ाज़ीख़ाँ[1] उस समय 'सद्रेजहाँ' थे। उनकी गणना भी अज़ीमुश्शान (महान् ऐश्वर्यशाली) अमीरोंमें की जाती थी। कलीददारीका (ताली रखनेका) उच्चपद भी इनको प्राप्त था अर्थात् सम्राट्के प्रासादकी ताली इन्हींके पास रहती थी और यह रात्रिमें राजभवनके द्वारपर ही सदा रहा करते थे। इनके अधीन एक सहस्र सैनिक थे। प्रत्येक रात्रिको अढ़ाई-अढ़ाई सौ पुरुष एक समयमें पहरा देते थे और बाह्य द्वारसे लेकर अंतः द्वारतक मार्गके दोनों ओर पंक्ति बाँधे और अस्त्र-शस्त्रादिसे सुसज्जित हो इस

(१) क़ाज़ी ख़ाँ सद्रेजहाँका वास्तविक नाम मौलाना ज़ियाउद्दीन बिन—मौलाना शहाबुद्दीन ख़तात था। इन्होंने सम्राट्को सुलेखनविधि सिखायी थी।

प्रकार खड़े रहते थे कि प्रासादके भीतर जाते समय प्रत्येक व्यक्तिको इनकी पंक्तियोंके मध्यसे ही होकर जाना पड़ता था। ये सैनिक "नौबतवाले" कहलाते थे। इनकी गणना तथा देखरेखके लिए अन्य उच्च अधिकारी तथा लेखकगण थे जो घूम फिरकर समय समयपर उपस्थिति भी लिया करते थे जिसमें कोई कहीं चला न जाय। रात्रिके प्रहरियोंके चले जानेके उपरांत दिनके प्रहरी उनके स्थानपर आकर उसी प्रकारसे खड़े हो जाते थे।

क़ाज़ी ख़ाँको मलिक खुसरो[1]से अत्यंत घृणा थी। वह वास्तवमें हिन्दू था और हिन्दुओंका बहुत पक्ष किया करता था, इसी कारणसे वह क़ाज़ी महाशयका क्रोधभाजन हुआ। इन्होंने सम्राट्से खुसरोकी ओरसे सचेत रहनेको बहुतसे अवसरोंपर निवेदन किया परंतु सम्राट्ने इनपर कभी ध्यान न दिया और सदा टाला ही किया। ईश्वरने तो भाग्यमें सम्राट्की मृत्यु उसीके हाथों लिखी थी। यह बात कैसे अन्यथा हो सकती थी, यही कारण था कि सम्राट्के कानोंपर जूँ तक न रेंगती थी।

एक दिन खुसरो ख़ाँने सम्राट्से निवेदन किया कि कुछ हिन्दू मुसलमान हुआ चाहते हैं[2]। उस समयकी प्रथाके अनु-

(१) खुसरो ख़ाँ वास्तवमें गुजरातका रहनेवाला था। फ़रिश्ता और बरनी उसको 'परवार' जातिका, जिसे वे नीची जाति मानते हैं, बतलाते हैं। हमारी सम्मतिमें यदि यह शब्द 'परमार' का अपभ्रंश हो तो यह नीची जाति कदापि नहीं कही जा सकती, क्योंकि इस जातिके लोग राजपूत होते हैं। यह पुरुष मुसलमान हो गया था और इसका नाम 'हसन' था। खुसरो ख़ाँ तो उपाधि थी।

(२) इब्नबतूताके अतिरिक्त किसी अन्य इतिहासकारने इसका

सार यदि कोई हिन्दू मुसलमान होना चाहता था तो सम्राट्-की अभ्यर्थनाके लिए उसकी उपस्थिति आवश्यक थी और सम्राट्की ओरसे उसको खिलअत और स्वर्णकंकण पारि-तोषिक रूपसे प्रदान किये जाते थे। सम्राट्ने भी प्रथानुसार खुसरो ख़ाँसे जब उन पुरुषोंको भीतर बुलानेके लिए कहा तो उसने उत्तर दिया कि अपने सजातीयोंसे लज्जित और भयभीत होनेके कारण वे रातको आना चाहते हैं। इसपर सम्राट्ने रातको ही उनके आनेकी अनुमति दे दी।

अब मलिक खुसरोने अच्छे अच्छे वीर हिन्दुओंको छाँटा और अपने भ्राता ख़ानेख़ानाको भी उनमें सम्मिलित कर लिया। गरमीके दिन थे। सम्राट् भी सबसे ऊँची छतपर थे। दासोंके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति भी इस समय उनके पास न था। ये पुरुष चार द्वारोंको पार कर पाँचवेंपर पहुँचे तो इनको शस्त्रसे सुसज्जित देख क़ाज़ी ख़ाँको सन्देह हुआ और उसने इनको रोककर अख़वन्द आलम (संसारके-प्रभु-सम्राट्) की आज्ञा प्राप्त करनेको कहा। इसपर इन लोगोंने क़ाज़ी महाशयको घेर कर मार डाला। बड़ा कोला-

---

वर्णन नहीं किया है। उनके कथनानुसार सम्राट्का प्रियपात्र होनेके कारण अन्य अमीर खुसरो ख़ाँके द्वेषी हो गये थे। अतएव उसने सम्राट्-की आज्ञा प्राप्तकर अपने सजातीय चालीस सहस्र गुजरातियोंको सेनामें स्थान दिला दिया था। इतना हो जानेपर फिर एक दिन उसने सम्राट्से प्रार्थना की कि सदा सम्राट्-सेवामें उपस्थित रहनेके कारण मैं स्वजातीयोंसे भी नहीं मिल सकता। इसपर उन स्वजातीयोंको दुर्ग-प्रदेश की आज्ञा मिल गयी। इस प्रकार अवसर पा उसने सम्राट्का वध कर डाला। संभव है कि भारतीय प्राचीन इतिहासकारोंने किसी कारणवश मुसल-मान बनानेकी प्राचीन प्रथाका वर्णन करना ही उचित न समझा हो।

हल होते देख जब सम्राट्ने इसका कारण पूछा तो मलिक खुसरोने कहा कि उन हिन्दुओंको भीतर आनेसे क़ाज़ी रोकते हैं, इसी कारण कुछ वाद-विवाद उत्पन्न हो गया है। सम्राट् अब भयभीत होकर राज-प्रसादकी ओर बढ़ा परंतु द्वार बंद थे। द्वार खटखटाये ही थे कि खुसरो ख़ांने आकर आक्रमण कर दिया। सम्राट भी खूब बलिष्ठ था, विपक्षीको नीचे दबाते तनिक भी देर न लगी। इतनेमें अन्य हिन्दू भी वहाँ आगये। खुसरोने नीचेसे पुकार कर कहा कि सम्राट्ने मुझे दबा रखा है। यह सुनते ही उन्होंने सम्राट्का वध कर डाला और सिर काट कर चौकमें फेंक दिया।

(१२) खुसरो ख़ाँ

ख़ुसरो ख़ाँने अमीरों और उच्च पदाधिकारियोंको उसी समय बुला भेजा। उनको इस घटनाकी कुछ भी सूचना न थी, भीतर प्रवेश करने पर उन्होंने मलिक खुसरोको सिंहासनासीन देखा और उसके हाथपर भक्तिकी शपथ ली। इनमेंसे कोई व्यक्ति प्रातःकाल तक बाहर न जा सका।

सूर्योदय होते ही समस्त राजधानीमें विज्ञप्ति करा दी गयी और बाहरके सभी अमीरोंके पास बहुमूल्य खिलअ़त (सिरोपा) तथा आज्ञापत्र भेजे गये। सभी अमीरोंने ये ख़िलअ़तें स्वीकार कर लीं; केवल दीपालपुर[1] के हाकिम

(१) दीपालपुर—आधुनिक मौंटगुमरी ज़िलेमें ब्यास नदीके प्राचीन भंडारमें पाकपट्टनसे २८ मील पुर्वकी ओर स्थित है। उकाड़ा रेलवे स्टेशनसे यह १७ मील दक्षिणकी ओर है। श्री जनरल कनिंगहम महोदयके अनुसंधानानुसार राजा देवपालने इस नगरको बसाया था। यह राजा कौन था और किस समय हुआ, इसका कुछ पता नहीं चलता।

(गवर्नर) तुगलक़ शाहने इनको उठाकर फेंक दिया और आज्ञापत्रपर आसीन होकर उसकी अवज्ञा की। यह सुनकर खुसरोने अपने भ्राता ख़ानेख़ानाको उस ओर भेजा परंतु तुगलक़शाहने उसको परास्त कर भगा दिया।

खुसरो मलिकने सम्राट् होकर हिन्दुओंको बड़े बड़े पदों-पर नियुक्त करना आरम्भ कर दिया और गोवधके विरुद्ध समस्त देशमें आदेश निकाल दिया। हिन्दू जाति गो-वधको धर्मविरुद्ध समझती है। गोवध करनेपर हत्यारेको उसी गौ-के चर्ममें सिलवा कर जला देते हैं। यह जाति गौको बड़े पूज्य भावसे देखती है। धर्म तथा औषधि रूपसे इस पशुका मूत्र पान किया जाता है और गोवरसे गृह, दीवारें आदि लीपी जाती हैं। खुसरो ख़ाँकी इच्छा थी कि मुसल्मान भी ऐसा ही करें। इसी कारण (मुसलमान) जनता उससे घृणा कर तुग़-लक शाहके पक्षमें हो गयी।

मुलतान निवासी शैख़ रुक्न-उद्दीन कुरैशी मुझसे कहते थे कि तुग़लक़ 'कुरुना'[1] जातिका तुर्क था। यह जाति तुर्किस्तान

फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ यहाँपर सतलज नदीकी एक नहर काट कर लाया था। ग़ुलाम तथा ख़िल्ज़ी नृपतियोंके समयमें यह नगर उत्तरीय पंजाबकी राज-धानी था। प्राचीन नगरके खंडहरोंको देखनेसे पता लगता है कि प्रधान नगर तीन मीलके घेरेमें बसा हुआ था। आजकल यह तहसीलका प्रधान स्थान है और जनसंख्या भी पाँच-छः सहस्रसे अधिक न होगी परंतु प्राचीन-कालमें यह मुलतानके समकक्ष था। तैमूरके समय तक इसकी यही दशा थी। उस समय यहाँपर चौरासी मसजिदें और चौरासी कुँए बने हुए थे

(१) कुरुना—मार्को पोलोके कथनानुसार तातारी पिता और भारतीय मातासे उत्पन्न मुग़ल जाति विशेषका नाम है। परंतु बहुतसे इतिहास-कारोंका यह मत है कि चीन देशके उत्तरमें करून जेदन अथवा खेस नामक

और सिन्धु प्रान्तके मध्यस्थ पर्वतोंमें निवास करती है। तुग़लक[1] अत्यन्त निर्धन था और इसने सिन्धु प्रान्तमें आकर किसी व्यापारीके यहाँ सर्वप्रथम भेड़ोंके गल्लेकी रक्षा करनेकी वृत्ति स्वीकार की थी। यह बात सम्राट् अलाउद्दीनके समयकी है। उन दिनों सम्राट्का भ्राता उलूख़ाँ (उलग़ ख़ाँ) सिंधु प्रान्तका हाकिम (गवर्नर) था। व्यापारीके यहाँसे तुग़लक नौकरी छोड़ इस गवर्नरका भृत्य हो गया और पदाति सेनामें जाकर सिपाहियोंमें नाम लिखा दिया। जब इसकी कुलीनताकी सूचना उलग़ ख़ाँको मिली तो उसने इसकी पदवृद्धि कर इसको घुड़सवार बना दिया। इसके पश्चात् यह अफसर बन गया। फिर मीर-आख़ोर[2] (अस्तबलका दारोगा) हो गया और अन्तमें अज़ीम-उश्शान (महान् ऐश्वर्यशाली) अमीरोंमें इसकी गणना होने लगी।

मुलतान नगरमें तुग़लक द्वारा निर्मित मसजिदमें मैंने यह फ़तवा (अर्थात् खुदा हुआ शिलालेख) स्वयं अपनी आँखोंसे

पर्वतपर वास करनेके कारण इस जातिका यह नाम पड़ा। डा० ईश्वरीप्रसादके मतसे कुरुना जाति तारीखे रशीदीके लेखक मिर्जा हैदरके कथनानुसार मध्य एशियामें रहती थी।

(१) खुलासे-उत्तवारीख़के लेखकका कथन है कि सम्राट् तुग़लक़ शाहके पिताका नाम तुग़लक़ था। वह सम्राट् ग़यास-उद्दीन बलबनका दास था और उसकी माता एक जाटनी थी।

(२) मीर आख़ोर, आख़ोर बेग इत्यादि उपाधियाँ सम्राट्की अश्वशालाके दारोगाको दी जाती थीं। यह पद उस समय बहुत उच्च समझा जाता था। स्वयं अला-उद्दीन ख़िलजीका भ्राता अपने पितृव्यके शासनकालमें 'मीर आख़ोर' था। भावी सम्राट् ग़यास-उद्दीन तुग़लक़ भी इसी सम्राट् (अर्थात् अला-उद्दीन) के शासनकालमें इस पदपर था।

पढ़ा है कि अड़तीस वार तातारियोंको रणमें परास्त करनेके कारण इसको मलिक ग़ाज़ीकी उपाधि दी गयी थी।

सम्राट् कुतुबउद्दीनने इसको दीपालपुरके हाकिमके पदपर प्रतिष्ठित कर इसके पुत्र जूनह ख़ाँको मीर-आख़ोरके पदपर नियुक्त किया। सम्राट् खुसरोंने भी इसको इसी पदपर रखा।

सम्राट् खुसरोके विरुद्ध विद्रोह करनेका विचार करते समय तुग़लक़के अधीन केवल तीन सौ विश्वसनीय सैनिक थे। अतएव इसने तत्कालीन मुलतानके गवर्नर किशलू ख़ाँको (जो केवल एक पड़ावकी दूरीपर मुलतान नगरमें था) लिखा कि इस समय मेरी सहायता कर अपने (वली नअमत) स्वामी (सम्राट्) के रुधिरका बदला चुकाओ। परन्तु किशलू ख़ाँने यह प्रस्ताव इस कारण अस्वीकार कर दिया कि उसका पुत्र खुसरो ख़ाँके पास था।

अब तुग़लक़ शाहने अपने पुत्र जूनह ख़ाँको लिखा कि किशलू ख़ाँके पुत्रको साथ लेकर, जिस प्रकार सम्भव हो, दिल्लीसे निकल आओ। मलिक जूनह निकल भागनेके तरीक़ेपर विचार ही कर रहा था कि दैवयोगसे एक अच्छा अवसर उसके हाथ आ गया। खुसरो मलिकने एक दिन उससे यह कहा कि घोड़े बहुत मोटे हो गये हैं, बदन डालते जाते हैं, तुम इनसे परिश्रम लिया करो। आज्ञा होते ही जूनह प्रतिदिन घोड़े फेरने बाहर जाने लगा, किसी दिन एक घण्टेमें ही लौट आता, किसी दिन दो घण्टोंमें और किसी दिन तीन-चार घण्टोंमें। एक दिन वह ज़ोहर (एक बजे दिनकी नमाज़) का समय हो जानेपर भी न लौटा। भोजन करनेका समय आ गया। अब सम्राट्ने सवारोंको ख़बर लानेकी आज्ञा दी। उन्होंने लौट कर कहा कि उसका कुछ भी पता नहीं

चलता। ऐसा प्रतीत होता है कि किशलू खाँके पुत्रको लेकर अपने पिताके पास भाग गया है[१]।

पुत्रके पहुँचते ही तुग़लक़ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया और किशलू ख़ाँकी सहायतासे सेना एकत्र करना शुरू कर दिया। सम्राट्ने अपने भ्राता ख़ानेख़ानाको युद्ध करनेको भेजा परन्तु वह हार खाकर भाग आया, उसके साथी मारे गये और राजकोष तथा अन्य सामान तुग़लक़के हाथ आ गया।

अब तुग़लक़ दिल्लीकी ओर अग्रसर हुआ और ख़ुसरोने भी उससे युद्ध करनेकी इच्छासे नगरके वाहर निकल आसियावाद्में अपना शिविर डाला। सम्राट्ने इस अवसरपर हृदय खोल कर राजकोष लुटाया, रुपयोंकी थैलियोंपर थैलियाँ प्रदान कीं। ख़ुसरो ख़ाँकी हिन्दू सेना भी ऐसी जी तोड़ कर लड़ी कि तुग़लक़की सेनाके पाँव न जमे और वह अपने डेरे इत्यादि लुटते हुए छोड़ कर ही भाग खड़ी हुई।

तुग़लक़ने अपने वीर सिपाहियोंको फिर एकत्र कर कहा कि भागनेके लिए अब स्थान नहीं है। ख़ुसरोकी सेना तो लूटमें लगी हुई थी और उसके पास इस समय थोड़ेसे मनुष्य ही रह गये थे। तुग़लक़ अपने साथियोंको ले उनपर फिर जा टूटा।

भारतवर्षमें सम्राट्का स्थान छत्रसे पहिचाना जाता है। मिश्र देशमें सम्राट् केवल ईदके दिवस ही छत्र धारण करता

(१) किसी इतिहासकारने यह घटना विस्तारसे नहीं लिखी है। केवल बदाऊनीका यह कथन है कि जूना-ख़ांने अपने पिताको स्थान स्थानपर डाक चौकीके घोड़े बिठानेको लिखा था और ऐसा हो जानेपर, किशलूखांके पुत्रको लेकर रातों-रात 'सिरसा' जा पहुँचा। कुछ इतिहासकार 'सिरसा' के स्थानमें भटिंग लिखते हैं। फरिश्ता रात्रिके स्थानमें दो पहरको जाना लिखता है। इससे बतूताके कथनकी पुष्टि होती है।

है परंतु भारतवर्षमें और चीनमें देश, विदेश, यात्रा आदि सभी स्थानोंमें सम्राट्के सिरपर छत्र रहता है।

तुग़लक़के इस प्रकारसे सम्राट्पर टूट पड़ने पर अतीव घोर युद्ध हुआ। सम्राट्की जब समस्त सेना भाग गयी, कोई सार्थी न रहा, तो उसने घोड़ेसे उतर अपने वस्त्र तथा अस्त्रादिक फेंक दिये और भारतवर्षके साधुओंकी भाँति सिरके केश पीछेकी ओर लटका लिये और एक उपवनमें जा छिपा।

इधर तुग़लक़के चारों ओर लोगोंकी भीड़ इकट्ठी हो गयी। नगरमें आने पर कोतवालने नगरकी कुंजियाँ उसको अर्पित कर दीं। अब राजप्रासादमें घुस कर उसने अपना डेरा भी एक ओरको लगा दिया और किशलू ख़ाँसे कहा कि तू सम्राट् हो जा। किशलूख़ाँने इसपर कहा कि तू ही सम्राट् बन। जब वादविवादमें हो किशलू ख़ाँने कहा कि यदि तू सम्राट् होना नहीं चाहता तो हम तेरे पुत्रको ही राजसिंहासनपर विठाये देते हैं, तो यह बात तुग़लक़ने अस्वीकार की और स्वयं सिंहासनपर बैठ भक्तिकी शपथ लेना प्रारम्भ कर दिया। अमीर और जनसाधारण सबने उसकी भक्ति स्वीकार की।

खुसरो ख़ाँ तीन दिन पर्यन्त उपवनमें ही छिपा रहा[१]। तृतीय दिवस जब वह भूखसे व्याकुल हो बाहर निकला तो एक बाग़बानने उसे देख लिया। उसने बाग़बानसे भोजन मांगा

---

(१) बदाऊनीके कथनानुसार खुसरो मलिक (सम्राट्) 'शादी' के समाधि-स्थानमें जा छिपा था और इसका भ्राता ख़ानेख़ाना उपवनमें। युद्ध भदीना नामक गाँवमें हुआ था। इस नामका एक गाँव रोहतक और महमकी सड़कपर स्थित है। यदि दिल्लीके निकट कोई अन्य गाँव इस नामका न हो तो तुग़लक़-खुसरोका युद्ध अवश्य इसी स्थानपर हुआ होगा।

परन्तु उसके पास भोजनकी कोई वस्तु न थी। इसपर खुसरोने अपनी अँगूठी उतारी और कहा कि इसको गिरवी रख कर बाज़ारसे भोजन ले आ। जब बाग़बान बाज़ारमें गया और अँगूठी दिखायी तो लोगोंने सन्देह कर उससे पूछा कि यह अँगूठी तेरे पास कहाँसे आयी। वे उसको कोतवालके पास ले गये। कोतवाल उसको तुग़लक़के पास ले गया। तुग़लक़ने उसके साथ अपने पुत्रको खुसरो ख़ाँको पकड़नेके लिए भेज दिया। खुसरो ख़ाँ इस प्रकारसे पकड़ लिया गया। जब जूनह ख़ाँ उसको टट्टूपर बैठा कर सम्राट्के संमुख ले गया तो उसने सम्राट्से कहा कि "मैं भूखा हूँ"। इसपर सम्राट्ने शर्बत और भोजन मँगाया।

जब तुग़लक़ उसको भोजन, शर्बत, तथा पान इत्यादि सब कुछ दे चुका तो उसने सम्राट्से कहा कि मेरी इस प्रकारसे अब और भर्त्सना न कर, प्रत्युत् मेरे साथ ऐसा बर्ताव कर जैसा सम्राटोंके साथ किया जाता है। इसपर तुग़लक़ने कहा कि आपकी आज्ञा सरमाथेपर। इतना कह उसने आज्ञा दी कि जिस स्थानपर इसने कुतुब-उद्दीनका वध किया था उसी स्थानपर ले जाकर इसका सिर उड़ा दो और सिर तथा देहको भी उसी प्रकार छतसे नीचे फेंको जिस प्रकार इसने कुतुब-उद्दीनका सिर तथा देह फेंकी थी। इसके पश्चात् इसके शवको स्नान करा कफ़न दे उसे समाधिस्थानमें गाड़नेकी आज्ञा प्रदान कर दी।

(१३) सम्राट् ग़यास-उद्दीन तुग़लक़

तुग़लक़ने चार वर्ष पर्य्यंत राज्य किया। यह सम्राट् बहुत ही न्यायप्रिय और विद्वान् था। स्थायी रूपसे सिंहासनासीन

हो जाने पर इसने अपने पुत्रको बहुत बड़ी सेना तथा मलिक तैमूर, मलिक तग़ीन, मलिक क़ाफ़ूर जैसे बड़े अमीरोंके साथ तैलंग[1]-विजयके निमित्त भेजा। दिल्लीसे इस देश तक पहुँचनेमें तीन मास लगते हैं।

तैलंग देश पहुँच कर पुत्रने विद्रोह करनेका विचार किया और कवि तथा दार्शनिक उबैद[2] नामक अपने सभासदसे सम्राट्की मृत्युकी अफ़वाह फैलानेको कह दिया। उसका अभिप्राय यह था कि इस समाचारको सुनते ही समस्त सैन्य तथा अधिकारीगण मुझसे भक्तिकी शपथ कर लेंगे। परंतु किसीने इसे सत्य न माना और प्रत्येक अमीर विरोधी हो उससे पृथक् हो गया, यहाँ तक कि जूनह ख़ांका कोई भी साथी न रहा। लोग तो उसका वध तक करनेको तैयार थे परन्तु मलिक तैमूरने उनको ऐसा न करने दिया। जूनह ख़ाँने अपने दस मित्रों सहित, जिनको वह 'याराने-मुवाफ़िक़' कहा करता था, दिल्लीकी राह ली। परंतु सम्राट्ने उसको धन तथा सैन्य देकर फिर तैलंग भेज दिया।

---

(१) सन् १३२१ में जूनहख़ाँ वारंगल-विजयके लिए गया था। दुर्ग विजय होनेको ही था कि सम्राट्की मृत्युकी अफवाह फैल गयी और सेना तितर-बितर हो गयी। १३२३ ई० में पुनः अलफ़ख़ाँने इस दुर्गपर धावा किया और नगर जीत राजा प्रतापरुद्रको पकड़ कर दिल्ली भेज दिया। उसका पुत्र शंकर कुछ भागका शासक बना रहा और उसने विजयनगरके नृपतियोंकी सहायतासे १३४४ में मुसलमानोंको फिर निकाल बाहर किया। परंतु बहमनी सम्राट्ने १४२४ में इस राज्यका अंत कर दिया।

(२) यह ईरानका निवासी था। कोई इतिहासकार लिखता है कि इसकी खाल खिंचवायी गयी और कोई कहता है कि यह हाथीके पैर तले रौंदा गया।

कुछ दिवस पश्चात् जब सम्राट्का पुत्रका यह विचार मालूम हुआ तो उसने उवैदका वध करवा दिया। मलिक क़ाफूर महरदारके लिए एक नोकदार सीधी लकड़ी पृथ्वीमें गड़वा कर, उसका सिर नीचेकी ओर कर, लकड़ीको गर्दनमें चुभा, नोकदार सिरेको पसलीमेंसे निकाल दिया। इसपर शेष अमीर भयभीत हो सम्राट् नासिर-उद्दीनके पुत्र शम्स उद्दीन-का आश्रय लेनेके लिए बंगालकी ओर भाग निकले।

सम्राट् शम्स-उद्दीनका देहांत हो जानेपर युवराज शहाब-उद्दीन बंगालका शासक हुआ। परंतु उसके छोटे भ्राता ग़यास-उद्दीन (भौंरा) ने अपने भाईको पृथक्कर क़तलूखाँ नामक अन्य भ्राताका वध कर डाला। शहाब-उद्दीन और नासिर-उद्दीन भागकर तुग़लक़की शरणमें आ गये। अपने पुत्रको दिल्लीमें प्रतिनिधि स्वरूप छोड़कर तुग़लक़ इनकी सहायताके लिए बंगाल गया और ग़यास-उद्दीन बहादुरको बंदी कर फिर दिल्ली लौट आया।

दिल्लीमें वली (महात्मा) निज़ाम-उद्दीन बदाऊनी[1] रहा करते थे। जूनह ख़ाँ सदा इन महाशयकी सेवामें उपस्थित हो

---

(१) यही प्रसिद्ध निज़ामउद्दीन औलिया थे। इनके पिता ग़ज़नीसे आकर बदायूँ नामक नगरमें बस गये थे। यह महाशय अपनी माता सहित २५ वर्षकी अवस्थामें दिल्ली आकर बसे थे। यह बड़े ईश्वर-भक्त थे। सम्राट् कुतुब-उद्दीनने इनको ईर्ष्यावश मासकी अन्तिम तिथि-को दर्बारमें उपस्थित रहनेकी आज्ञा दी थी परंतु इसके पूर्वही उसका देहान्त हो गया। इसी प्रकार ग़यास-उद्दीन तुग़लक़ने बंगालसे कहलाया था 'या शैख़ आंजा बाशद या मन' (आप यहाँ पधारें या मैं वहाँ आऊँ)। इसपर इन्होंने यह उत्तर दिया 'हनोज़ दिल्ली दूर अस्त'। सम्राट्के दिल्ली पहुँचनेके पहिलेही इनका भी देहान्त हो गया और सम्राट्का भी।

आशीर्वादकी अभिलाषामें रहा करता था। एक दिन उसने साधु महाशयके भृत्योंसे कहा कि जब यह महाशय ईश्वराराधन तथा समाधिमें निमग्न हों तो मुझे सूचित करना। एक दिन अवसर प्राप्त होते ही उन्होंने युवराजको सूचना दी और वह तुरत आ उपस्थित हुआ। शैख़ने उसको देखते ही कहा कि हमने तुमको साम्राज्य प्रदान किया।

शैख़ महाशयका देहांत भी इसी कालमें हो गया और जूनहख़ाँने उनके शवका कन्धा दिया। इसकी सूचना मिलनेपर सम्राट् पुत्रपर बहुत क्रुद्ध हुआ। पुत्रकी उदारता, वशीकरण तथा मोहन-शक्ति और अधिक संख्यामें दास-क्रयके कारण सम्राट् तो वैसेही उससे अप्रसन्न रहता था, परंतु अब इस समाचारने जलती हुई अग्निपर घृतका काम किया। वह क्रोधसे भभक उठा। धीरे धीरे उसको यह भी सूचना मिली कि ज्योतिषियोंने भविष्यवाणी की है कि वह यात्रासे जीवित न लौटेगा।

राजधानीके निकट पहुँचने पर उसने अपने पुत्रको अफ़गानपुरमें अपने लिए एक नया प्रासाद निर्माण करनेकी आज्ञा दी। जूनह ख़ाँने तीन दिनमें ही प्रासाद खड़ा करा दिया। धरातलसे कुछ ऊपर रखे हुए काष्ठ-स्तम्भोंपर इस भवनका आधार था और स्थान-स्थानपर इसमें यथासम्भव काष्ठ ही

सम्राट् अलाउद्दीनका पुत्र ख़िजरख़ाँ इनका शिष्य था और उसने इनके जीवनकालमें ही इनके लिए समाधि बनवायी थी। परंतु इन्होंने उसमें अपने शवको गाड़नेकी मनाही कर दी। वर्तमान समाधिस्थान सम्राट् अकबरके शासन-कालमें फरीदूख़ाँने निर्माण कराया था, और शाहजहाँके समयमें शाहजहानाबादके हाकिम ख़लील उल्लाहख़ाँने इसके चारों ओर लाल पत्थरकी परिक्रमा बनवायी।

लगाया गया था। सम्राट्के वास्तु-विद्या-विशारद अहमद इब्न अयारने, जिसे पीछे 'ख़्वाज़ाजहाँ' की उपाधि मिली थी, ऐसी योजनापूर्वक इस गृहके आधारका निर्माण किया था कि स्थान विशेषपर हाथीका पग पड़ते ही सारा गृह गिर पड़े।

सम्राट् इस गृहमें आकर ठहरा। लोगोंने उसको भोज दिया। भोजनोपरान्त जूनह ख़ाँने सम्राट्से वहाँपर हाथी लानेकी प्रार्थना की और एक सजा हुआ हाथी वहाँ भेजा गया।

मुलतान निवासी शैख़ रुक्न-उद्दीन मुझसे कहते थे कि मैं उस समय सम्राट्के पास था, उसका प्यारा पुत्र महमूद भी वहीं बैठा हुआ था। जूनह ख़ाँने मुझसे कहा कि हे अख़वन्द आलम (संसारके प्रभु), अस्र (अर्थात् सन्ध्याके ४ बजेकी नमाज़) का समय हो गया है, आइये नमाज़ पढ़ लें। मैं यह सुनकर प्रासादसे बाहर निकल आया। हाथी भी उसी समय वहाँपर आ गया था। गृहमें हाथीके प्रवेश करते ही समस्त प्रासाद सम्राट् और राजपुत्रके ऊपर गिर पड़ा। शैख़ कहते थे कि शोर सुन ज्यों ही मैं बिना नमाज़ पढ़े लौटा, तो क्या देखता हूँ कि सारा प्रासाद टूटा पड़ा है। जूनह ख़ाँने सम्राट्को निकालनेके लिए तवर (एक विशेष प्रकारका कुल्हाड़ा) और कस्सियाँ (उसी प्रकारका एक औज़ार) लानेकी आज्ञा तो दी परन्तु इन वस्तुओंको विलम्बसे लानेका संकेत भी कर दिया। फल इसका यह हुआ कि खुदाई आरम्भ होते समय सूर्यास्त हो गया था। खोदने पर सम्राट् अपने पुत्रपर झुका हुआ पाया गया मानो वह उसको मृत्युसे बचाना चाहता था। कुछ लोगोंका कथन है कि सम्राट् उस समय भी जीवित था परन्तु उसका काम तमाम कर दिया गया। रात्रिमें ही सम्राट्का

शव तुग़लकाबादके समाधिस्थानमें, जिसको उसने अपने लिए तैयार कराया था, पहुँचा कर गड़वा दिया गया[१]।

तुग़लकाबाद बसानेका कारण पहिले ही दिया जा चुका है। यहाँ सम्राट्‌का कोष तथा राजभवन बना हुआ था। एक प्रासाद ऐसा निर्माण किया गया था जिसकी ईंटोंपर सोना चढ़ा हुआ था। सूर्योदय होने पर कोई व्यक्ति उस ओर आँख उठाकर न देख सकता था। यहाँ सम्राट्‌ने बहुतसा सामान एकत्र किया था। कहते हैं कि एक ऐसा कुण्ड भी था जिसमें सुवर्ण गलवा कर भर दिया गया था—शीतल होनेपर यह सुवर्ण जम गया था। सम्राट्-पुत्रने यह समस्त स्वर्ण व्यय कर दिया।

उस कोशक (प्रासाद) के बनानेमें ख़्वाजा जहाँने बड़ी चतुराई दिखायी थी जिससे सम्राट्‌की इस प्रकारसे अचानक मृत्यु हो गयी, अतएव सम्राट्‌के हृदयमें ख़्वाजा जहाँके समान किसीका भी स्थान न था।

पाँचवाँ अध्याय

सम्राट् मुहम्मद तुग़लक़शाहका समय

१—सम्राट्‌का स्वभाव

सम्राट् तुग़लक़की मृत्युके उपरान्त उसका पुत्र बिना किसी कठिनाईके राजसिंहासनपर बैठ गया। किसीने उसका विरोध न किया। ऊपर लिखा जा चुका है

(१) कुछ इतिहासकार यह कहते हैं बिजली गिरनेके कारण मकान गिरा।

कि उसका वास्तविक नाम जूनहख़ाँ था। परंतु सम्राट् होनेके पश्चात् उसने अपना नाम बदलकर अबुलमुजाहिद मुहम्मद-शाह रखा।

पूर्ववर्त्ती सम्राटोंका अधिकतर वृत्तान्त तो मैंने गज़नी-निवासी शैख़ कमाल-उद्दीन क़ाज़ी-उल-कुज़्ज़ात (प्रधान क़ाज़ी) से सुनकर लिखा है परंतु इस सम्राट्के सम्बन्धकी सारी बातें मैंने आँखों देखी हैं।

यह सम्राट् रुधिरकी नदियाँ बहाने[1] तथा पात्रापात्र-का विचार किये विना ही दान देनेके लिए अति प्रसिद्ध है। शायद ही कोई दिन ऐसा बीतता होगा कि जब यह सम्राट् किसी भिखमंगेको धनाढ्य न बनाता हो और किसी मनुष्यका वध न करता हो। इसकी दानशीलताकी, साहस एवं उदा-

(१) फरिश्ताके अनुसार कोई सप्ताह भी कठिनतासे ऐसा होता होगा कि जिसमें यह सम्राट् ईश्वरभक्तों, माननीयों, धर्मात्मा सैयदों, वेदान्तियों, साधुओं अथवा लेखकोंको न बुलवाता हो और उनका वधकर रुधिरकी नदियाँ न बहाता हो। क्रोधके वश होकर यह सम्राट्, राजकीय व्यवस्थाके बहाने, परमात्माकी सृष्टिका इस प्रकार व्यर्थ रुधिर बहाकर, धर्मविरुद्धाचरण द्वारा संसारसे मनुष्योंका अस्तित्व तक मिटा देना चाहता था। इस इतिहासकारके अनुसार यह सम्राट् अत्यन्त मधुरभाषी और प्रकाण्ड पण्डित था, इतिहाससे खूब जानकारी होनेके अतिरिक्त यह ऐसा मेधावी था कि कठिनसे कठिन बात भी इसकी समझमें बड़ी सुगमतासे आ जाती थी और सरलसे सरल बात भी ज्ञात हो जानेपर यह उसको कभी न भूलता था। ज्योतिष, वैद्यक, न्याय, वेदान्त इत्यादि सभी विषयोंमें यह पारङ्गत था; कहाँतक गिनावें, साहित्य और कविता तक भी इससे न बची थी। अपूर्व विज्ञताके कारण संसारके अद्भुत पदार्थोंमें इसकी गणना होती थी।

रताकी और रुधिरकी नदियाँ वहानेकी कथाएँ सर्वसाधारणकी जिह्वापर हैं। यह सब कुछ होनेपर भी मैंने इसके समान न्यायप्रिय और आदर-सत्कार करनेवाला कोई अन्य पुरुष नहीं देखा। सम्राट् स्वयं शरैयत अर्थात् इसलामके धार्मिक नियमोंका पालन करता है और नमाज़पर लोगोंका ध्यान, विशेष ज़ोर देकर, आकर्षित करता है और नमाज़ न पढ़ने-वालोंको दंड देता है। अत्यंत उदार हृदय और शुभ संकल्प-वाले सम्राटोंमें इसकी गणना होनी चाहिये। इसके राजत्व-कालकी ऐसी घटनाओंका मैं वर्णन करूँगा जो लोगोंको अत्यंत आश्चर्यजनक प्रतीत होंगी। परंतु मैं ईश्वर, उसके रसूल (दूत-मुहम्मद) तथा फ़रिश्तोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि सम्राट्की उदारता, दानशीलता और श्रेष्ठ स्वभावका मैं ठीक ठीक ही वर्णन करूँगा। यहाँपर मैं यह भी प्रकाश्य रूपसे कह देना उचित समझता हूँ कि बहुतसे व्यक्ति मेरे कथनमें अत्युक्ति समझ इसपर विश्वास नहीं करते परंतु इस पुस्तकमें जो कुछ मैंने लिखा है वह या तो मेरा स्वयं देखा हुआ है या मैंने उसके संबंधमें यथातथ्य होनेका पूर्ण निश्चय कर लिया है।

२—राजभवनका द्वार

दिल्लीके राजप्रासादको 'दारे-सरा' कहते हैं। इसमें प्रवेश करनेके लिए कई द्वारोंको पार करना पड़ता है। प्रथम द्वार-पर सैनिकोंका पहरा रहता है और नफ़ीरी (शहनाई), नगाड़े और सरना (एक प्रकारका वाद्य) वाले भी यहीं बैठे रहते हैं और किसी अमीर या महान् व्यक्तिको (भीतर) घुसते देखते ही नगाड़े तथा शहनाइयों द्वारा उसका नामोच्चारण कर

(उसके) आगमनकी सूचना देते हैं। द्वितीय और तृतीय द्वारपर इसीकी आवृत्ति की जाती है।

प्रथम द्वारके बाहर वधिकोंके लिए चबूतरे बने हुए हैं, और सम्राट्का आदेश होते ही हज़ार-सतून[1] (सहस्र-स्तम्भ) नामक राजप्रसादके सम्मुख लोगोंका वध किया जाता है। इसके बाद मृतकका मुण्ड तीन दिवस पर्यन्त प्रथम द्वारपर लटका रहता है।

प्रथम और द्वितीय द्वारके मध्यमें एक बड़ी दहलीज़ बनी हुई है और उसके दोनों ओर चबूतरोंपर नगाड़ेवाले बैठे रहते हैं। द्वितीय द्वारपर भी पहरा रहता है। द्वितीय और तृतीय द्वारके मध्यमें भी एक बड़ा चबूतरा बना हुआ है जिसपर नक़ीबउल-नक़बा (छड़ीबरदार—घोषणा करनेवाला) बैठा रहता है। इसके हाथमें स्वर्णदण्ड होता है और सिरपर सुनहरी जड़ाऊ कुलाह (टोपी विशेष जिसपर साफ़ा बाँधा जाता है) जिसपर मयूर-पङ्ख लगे हुए होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य शेष नक़ीबों (घोषकों) की कमरपर सोनेकी पेटी, सिरपर सुनहरी शाशिया (सिरका उपधान) और हाथोंमें चाँदी या सोनेकी मूठवाले

(१) सम्राट् नासिरउद्दीन महमूदने भी राय पिथौराके दुर्गमें सहस्रस्तम्भ नामक एक राजप्रासादका निर्माण प्रारम्भ किया था जो ग़यासउद्दीन बलबन द्वारा पूर्ण हुआ। परन्तु इब्नबतूता एक अन्य "हज़ार-सतून" का वर्णन करता है। इसको सम्राट् मुहम्मद तुग़लक़ने 'जहाँ-पनाह' में निर्माण कराया था। बदरेचाच नामक कवि इसकी प्रशंसामें लिखता है—'अगर न खुल्दे बरीं नस्तई हज़ार सतून। चरा के जाए दरश असंगाहे रोज़े जज़ास्त'—यदि यह 'हज़ार स्तम्भ' नामक भवन स्वर्ग नहीं है तो फिर इसके सामने क़यामतका सा मैदान क्यों बनाया है।

छोड़े रहते हैं। द्वितीय द्वारके भीतर बड़ा दीवानख़ाना (दालान) बना हुआ है जिसमें साधारण जनता आकर बैठा करती है।

तृतीय द्वारपर मुत्सद्दी बैठते हैं। ये किसी ऐसे व्यक्तिको भीतर प्रवेश नहीं करने देते जिसका नाम इनके रजिस्टरमें न लिखा हो। यही कार्य इन पुरुषोंके सुपुर्द है। प्रत्येक अमीर-के अनुयायियोंकी संख्या नियत है और इनके रजिस्टरोंमें लिखी रहती है। मुत्सद्दी अपने रोज़नामचोंमें लिखते रहते हैं कि अमुक व्यक्तिके साथ इतने अनुयायी आये। ईशाकी नमाज़ (रात्रिकी नमाज़ जो ८॥ बजेके पश्चात् पढ़ी जाती है) के पश्चात् सम्राट् इन रोज़नामचोंका निरीक्षण करता है। जो जो घटनाएँ द्वारपर घटित होती हैं उन सबका उल्लेख भी इन रोज़नामचोंमें होता है।

सम्राटके संमुख इन रोज़नामचोंको उपस्थित करनेका भार किसी एक राजपुत्रके सुपुर्द कर दिया जाता है।

३—भेंट-विधि और राजदरबार

यहाँकी ऐसी परिपाटी है कि यदि कोई अमीर किसी कारणवश अथवा बिना किसी कारणके हो तीन या अधिक दिनों तक अनुपस्थित रहे तो फिर सम्राट्की विशेष आज्ञा बिना उसका पुनः प्रवेश नहीं हो सकता। रोग अथवा किसी हेतु विशेषके कारण अनुपस्थित होनेपर, उपस्थित होते ही मानमर्यादानुसार भेंट करना आवश्यक है।

इसी प्रकार प्रथम बार अभ्यर्थना करनेके समय कुछ न कुछ भेंट अवश्य ही करनी पड़ती है। मौलवी (विद्वान्) कुरान शरीफ़ या कोई अन्य पुस्तक, साधु माला, नमाज़ पढ़-

नेका वस्त्र तथा दतौन, और अमीर हाथी, घोड़े, अस्त्र-शस्त्रादिक भेंट करते हैं।

तृतीय द्वारके भीतर एक बहुत विस्तृत मैदानमें दीवानख़ाना बना हुआ है जिसका नाम है "हज़ार सतून"। इस नामका कारण यह है कि इस दीवानख़ानेकी काठकी छत काठके सहस्र स्तम्भोंपर स्थित है। छत तथा स्तम्भोंपर खूब खुदाईका काम है और रोग़न हो रहा है। भाँति भाँतिके चित्र तथा खुदाई भी हो रही है। सभी लोग आकर इसी भवनमें बैठते हैं और सम्राट् भी साधारण दरबारके समय यहीं आकर बैठा करता है।

४—सम्राट्का दरबार

यह दरबार बहुधा अस्रकी नमाज़ (दिनके ४ बजे) के पश्चात् और कभी कभी चाश्तके समय (प्रातः नौ-दस बजेके पश्चात्) होता है।

सम्राट्का आसन एक उच्च स्थानपर होता है। इसपर चाँदनी बिछा सम्राट्की पीठकी ओर बड़ा तकिया तथा दायें बायें दो छोटे छोटे तकिये रखे जाते हैं।

नमाज़के समय जिस प्रकारसे बैठना पड़ता है उसी तरह यहाँ भी बैठते हैं। समस्त भारतीय भी प्रायः इसी प्रकारसे बैठा करते हैं।

सम्राट्के बैठ जानेके उपरान्त वज़ीर (मंत्री) संमुख आकर खड़ा हो जाता है और कातिब (लेखक) वज़ीरके पीछे रहते हैं; कातिबोंके पश्चात् हाजिबोंका सरदार और हाजिब खड़े होते हैं। सम्राट्के चचाका पुत्र फीरोज़शाह इस समय हाजिबोंका सर्दार है।

हाजिबके पीछे नायब हाजिब, उसके बाद विशेष हाजिब और उसके पश्चात् विशेष हाजिबका नायब, वकील उद्दार और उसका नायब. शरफ़ उल हज्जाब और सय्यद उल हज्जाब और उनके पीछे सौ नक़ीब खड़े होते हैं।

सम्राट्के सिंहासनारूढ़ होनेपर हाजिब और नक़ीब 'बिस्मिल्लाह' (ईश्वरके नामके साथ प्रारम्भ करना) उच्चारण करते हैं।

सम्राट्के पीछेकी ओर मलिक क़बूला खड़ा खड़ा चँवर हाथमें लेकर मक्खियाँ उड़ाता रहता है और दाहिनी तथा बायीं ओर सौ-सौ वीर सैनिक ढाल, तलवार तथा धनुष-बाण इत्यादि लिये खड़े रहते हैं और शेष दीवानख़ानेमें दाहिने और बायें दोनों ओर। फिर क़ाज़ी उलक़ुज़्ज़ात और उसके पश्चात् ख़तीबउल ख़ुतबा और फिर शेष क़ाज़ी, उनके पीछे बड़े बड़े धर्मशास्त्रज्ञ सैयद और शैख़, फिर सम्राट्के भ्राता और जामाता और उनके पश्चात् बड़े बड़े अमीर, फिर विदेशी, उनके पश्चात् राजदूत, और फिर सेनाके अफ़सर खड़े होते हैं।

इनके पीछे श्वेत तथा काले रेशमकी लगाम लगाये, आभूषण पहिरे साठ घोड़े ज़ीन सहित आधे आधे इस प्रकारसे दाहिनी और बायीं ओर खड़े हो जाते हैं कि सम्राट्की दृष्टि सबपर पड़ सके। इन घोड़ोंपर सम्राट्के अतिरिक्त और कोई सवार नहीं होता।

फिर सुनहरी तथा रेशमी झूलें पीठोंपर डाले पचास हाथी आते हैं। इनके दाँतोंपर लोहे चढ़े रहते हैं और इनसे अपराधियोंके वध करनेका काम लिया जाता है। हाथियोंकी गर्दनपर 'महावत' बैठते हैं और हाथीको साधनेके लिए

इनके हाथोंमें लोहेका अंकुश होता है जिसको 'तवर्ज़ीन' कहते हैं। हाथियोंकी पीठपर एक बड़ा संदूक (हौदा) रखा रहता है जिसमें हाथीके डीलके अनुसार बीस बीस या न्यूनाधिक सैनिक बैठ सकते हैं। सिखाये हुए होनेके कारण हाथी हाजिबके बिस्मिल्लाह उच्चारण करतेही अपना मस्तक नत कर लेते हैं। जनताके पीछे आधे हाथी एक ओर और आधे दूसरी ओर खड़े किये जाते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति सबके आगे आकर सम्राट्की वंदना करता है और तत्पश्चात् अपने नियत स्थानपर जाकर खड़ा हो जाता है।

जब कोई हिन्दू सम्राट्को वंदना करने आता है तो हाजिब और नक़ीब बिस्मिल्लाहके स्थानमें 'हिदाक्-अल्लाह' (ईश्वर तुमको सत्पथपर लावें) उच्चारण करते हैं।

पुरुषोंके पीछे हाथोंमें ढाल तथा तलवार लिये सम्राट्के दास खड़े रहते हैं और कोई व्यक्ति इनमें होकर भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। प्रत्येक आगन्तुकको हाजिबों और नक़ीबोंके खड़े होनेके स्थानसे होकर आना पड़ता है।

यदि कोई परदेशी या अन्य सम्राट्की वंदना करनेके लिए आवे तो सर्वप्रथम उसको द्वारपर सूचना देनी पड़ती है। (अमीरे-हाजिब उसका नायब, सय्यद-उलहज्जाब और शरफ़ उलहज्जाब, क्रम क्रमसे, सम्राट्की सेवामें उपस्थित हो तीन बार वंदना कर निवेदन करते हैं कि अमुक व्यक्ति वंदनाके लिए उपस्थित है। आज्ञा मिल जाने पर लोगोंके हाथोंपर रखी हुई उसकी भेंट इस प्रकार अर्पित की जाती है कि सम्राट्की दृष्टि उसपर अच्छी तरह पड़ सके। इसके बाद भेंट देनेवाले-को उपस्थित होनेकी आज्ञा दी जाती है। आगन्तुकको

सम्राट्के निकट पहुँचनेके पहिले तीन बार वंदना करनी पड़ती है और फिर वह हाजिबोंके खड़े होनेके स्थानपर पहुँच कर पुनः वंदना करता है। महान् पुरुष मोर हाजिबकी पंक्तिमें खड़े किये जाते हैं, और अन्य पुरुष पीछेकी ओर।

सम्राट् आगन्तुकके साथ बड़ी कृपा और मृदुलतासे वार्त्तालाप करता है और उसका स्वागत करनेके लिए 'मरहबा' कहता है। सम्मान योग्य होनेपर सम्राट् उससे प्रीतिपूर्वक करमर्दन करता है, गले भी मिलता है और भेंटके कुछ पदार्थ मँगवा कर भी देखता है। भेंटके पदार्थोंमें शस्त्र अथवा वस्त्र होनेपर उनको उलट पलटकर देखता है और उसका मन रखनेके लिए भेंटकी प्रशंसा तक कर देता है।

इसके पश्चात् आगन्तुकको ख़िलअत दी जाती है और मान-मर्य्यादाके अनुसार उसकी वृत्ति भी नियत कर दी जाती है। इसको सरशोई (वास्तवमें सिर धोना—वृत्ति विशेष) कहते हैं।

सम्राट्के सेवकोंकी भेंट तथा अधीन राज्योंका कर स्वर्ण-के थाल आदि पात्रोंके रूपमें दिया जाता है। कोई कोई पात्र आदि न होने पर केवल स्वर्णकी ईंटही ले आते हैं और फर्राश नामधारी दास प्रत्येक ईंट तथा पात्रको सम्राट्के संमुख ला उपस्थित करते हैं। भेंटमें हाथी होनेपर वह भी उपस्थित किया जाता है। उसके पश्चात् घोड़े और उनका सामान, फिर भार सहित ख़च्चर और ऊँट उपस्थित किये जाते हैं।

सम्राट्के दौलताबादसे लौटने पर मंत्री ख़्वाजा जहाँने जब बयानेसे बाहर आकर भेंट दी तो मैं भी उस समय उपस्थित था। यह भेंट उपर्युक्त क्रमसे दी गयी थी। इस भेंटमें एक

थाली मुक्ताओं और पन्नोंसे भरी हुई थी। इस अवसरपर ईरानके सम्राट् अबू सईदके पितृव्यका पुत्र हाजी गावन भी उपस्थित था। सम्राट्ने इस भेंटका अधिक भाग उसको ही दे डाला। आगे चलकर मैं इसका वर्णन करूँगा।

५—ईदकी नमाज़की सवारी (जलूस)

ईदसे प्रथम रात्रिको सम्राट् अमीरों[1], मुसाहिबों (दरबारी विशेष), यात्रियों, मुत्सद्दियों, हाजिबों, नक़ीबों, अफसरों, दासों और अख़बारनवीसोंके लिए मर्यादानुसार एक एक ख़िलअत भेजता है।

प्रातःकाल होते ही हाथियोंको रेशमी, सुनहरी तथा जड़ाऊ झूलोंसे विभूषित करते हैं। सौ हाथी सम्राटकी सवारीके लिए होते हैं। इनमें प्रत्येकपर रत्नजटित रेशमका बना छत्र लगा होता है जिसका डण्डा विशुद्ध सुवर्णका होता है। सम्राट्के बैठनेके लिए प्रत्येक हाथीपर रत्नजटित रेशमी गद्दी बिछी होती है। सम्राट् एक हाथीपर आकर आरूढ़ हो जाता है और उसके आगे आगे रत्नजटित ज़ीनपोशपर एक झण्डा फरहरेकी भाँति चलता है।

---

(१) मसालिक उलअबसारके लेखकके कथनानुसार अमीरोंकी विविध श्रेणियाँ होती हैं। सर्वश्रेष्ठ 'ख़ान' कहलाते हैं। उनसे नीचे 'मलिक', तृतीय कक्षाके 'अमीर', चतुर्थके 'सिपहसालार' और पंचम तथा अंतिम कक्षाके 'जुंद'। ख़ानकी जागीर दो लाख टंककी (१ टंक = ८ दिरहम), मलिककी ५० से ६० सहस्र तककी, अमीरकी तीस सहस्रसे चालीस सहस्र तककी तथा सिपहसालारकी बीस सहस्र टंककी होती है। इनके अधीन नियत संख्यामें सेना भी रहती है, परंतु उसका वेतन आदि राज्यकोषसे ही दिया जाता है।

हाथीके आगे दास और 'ममलूक' नामधारी भृत्य पाँव पाँव चलते हैं। इनमेंसे प्रत्येकके सिरपर चाचा (अर्द्ध चन्द्राकार) टोपी होती है और कमरमें सुनहरी पेटी; किसी किसीकी पेटीमें रत्नादि भी जड़े होते हैं। इन पदातियोंके अतिरिक्त सम्राट्के आगे तीन सौ नक़ीब भी चलते हैं। इनमें-से प्रत्येकके सिरपर पोस्तीन (पशुचर्म विशेष) की कुलाह (टोपी), कमरमें सुनहरी पेटी और हाथमें सुवर्णकी मूठवाला ताज़ियाना (कोड़ा) होता है।

सदरेजहाँ क़ाज़ी उल कुज़्ज़ात कमालुद्दीन गज़नवी, सदरे जहाँ क़ाज़ी उलकुज़्ज़ात नासिर उद्दीन ख़्वारज़मी, समस्त क़ाज़ी और विद्वान् परदेशी, ईराक़ ख़ुरासान, शाम (सीरिया) और पश्चिम देश निवासी, हाथियोंपर सवार होते हैं। (यहाँपर यह एक बात लिखना अत्यावश्यक है कि इस देशके निवासी सब विदेशियोंको ख़ुरासानी ही कहते हैं।)

इनके अतिरिक्त मोअज़्ज़िन (नमाज़के प्रथम उच्च स्वरसे मुसलमानोंको नमाज़के समयकी सूचना देनेवाले) भी हाथि-योंपर सवार होकर चलते हैं और तकबीर (ईश्वरका नाम-अर्थात् अल्लाहो अकबर—लाइलाहा इल्लल्ला—अल्लाहो अकबर-व लिल्लाइल हम) कहते जाते हैं।

उपर्युक्त क्रमसे सम्राट् जब राजप्रासादसे निकलता है तो बाहर समस्त सेना उसकी प्रतीक्षामें खड़ी रहती है। प्रत्येक अमीर भी अपनी सेना लिये पृथक् खड़ा रहता है और प्रत्येकके साथ नौबत और नगाड़ेवाले भी रहते हैं।

सबसे प्रथम सम्राट्की सवारी चलती है। उसके आगे आगे उपर्युक्त व्यक्तियोंके अतिरिक्त क़ाज़ी और मोअज़्ज़िन भी तकबीर पढ़ते चलते हैं। सम्राट्के पीछे बाजेवाले चलते

हैं और उनके पीछे सम्राट्के सेवक। इसके बाद सम्राट्के भतीजे बहरामख़ाँ, और उसके पीछे सम्राट्के चचाके पुत्र मलिक फ़ीरोज़की सवारी होती है। फिर वज़ीरकी और तब मलिक मजीरज़िरंजा और फिर सम्राट्के अत्यन्त मुँहचढ़े अमीर क़बूःलाकी सवारी होती है। यह अमीर अत्यन्त धनाढ्य है। इसका दीवान अलाउद्दीन मिश्री, जो मलिक इब्न सरशीके नामसे अत्यन्त प्रसिद्ध है, मुझसे कहता था कि सैन्य तथा भृत्यों सहित इस अमीरका वार्षिक व्यय छत्तीस लाखके लगभग है।

इसके पश्चात् मलिक नकवह और फिर मलिक बुग़रा, उसके पश्चात् मलिक मुख़लिस और फिर कुतुब-उलमुल्ककी सवारी होती है। प्रत्येक अमीरके साथ उसकी सेना तथा बाजेवाले भी चलते हैं। उपर्युक्त अमीर सदा सम्राट्की सेवामें उपस्थित रहते हैं और ईदके दिन नौबत तथा नगाड़ेके सहित सम्राट्के पीछे उपर्युक्त क्रमसे चलते हैं।

इनके पीछे वे अमीर चलते हैं जिनको अपने साथ नगाड़े तथा नौबत रखनेकी आज्ञा नहीं है। उपर्युक्त अमीरोंकी अपेक्षा इनकी श्रेणी भी कुछ नीची ही होती है। परन्तु इस ईदके जलूसमें प्रत्येक अमीरको कवच धारण कर घोड़ेपर सवार होकर चलना पड़ता है।

ईदगाहके द्वारपर पहुँच कर सम्राट् तो खड़ा हो जाता है और क़ाज़ी, मोअज़्ज़िन, बड़े बड़े अमीरों और प्रतिष्ठित विदेशियोंको प्रथम प्रवेश करनेकी आज्ञा देता है। इन सबके प्रविष्ट हो जाने पर सम्राट् उतरता है और फिर इमाम (नमाज़ पढ़ानेवाला) नमाज़ प्रारंभ करता है और खुतबा पढ़ता है।

बक़रीद (रमज़ानके दो मास दस दिन पश्चात् होती है, इसमें पशुकी बलि दी जाती है) के अवसरपर सम्राट् अपने

वस्त्रोंको रुधिरके छींटोंसे बचानेके लिए रेशमी लुंगी ओढ़कर भालेसे ऊँटकी नसविशेष काटता है और इस भाँति कुर्बानी करनेके पश्चात् पुनः हाथीपर आरूढ़ हो राजप्रासादको लौट आता है।

६—ईदका दरबार

ईदके दिन समस्त दीवानख़ानेमें फर्श विछाकर उसे विविध प्रकारसे सुसज्जित करते हैं। दीवानख़ानेके चौक (मैदान) में बारकः[1] (बारगाह) खड़ी की जाती है। यह एक विशेष प्रकारका बड़ा डेरा होता है जिसको मोटे मोटे खम्भोंपर खड़ा करते हैं। इसके चारों ओर अन्य डेरे रहते हैं और विविध रंगोंके, छोटे बड़े रेशमके पुष्प सहित बूटे लगाये जाते हैं। इन वृक्षोंकी तीन पंक्तियाँ दीवानख़ानेमें भी सुसज्जित की जाती हैं। वृक्षोंके मध्यमें एक सुवर्णकी चौकी रखी जाती है। चौकी-पर एक गद्दी रखकर उसपर एक रूमाल डाल दिया जाता है।

दीवानख़ानेके मध्यमें एक सुवर्णकी रत्नजटित बड़ी चौकी रखी जाती है। यह बत्तीस बालिश्त (आठ गज़) लंबी और सोलह बालिश्त (चार गज़) चौड़ी है। इस चौकीके बहुतसे पृथक् पृथक् खंड हैं, जिन्हें कई आदमी मिलकर उठाते हैं। दीवानख़ानेमें लाने पर उन खंडोंको जोड़कर चौकी बना ली जाती है और उसपर एक कुर्सी बिछायी जाती है। सम्राट्के सिरपर छत्र लगाया जाता है।

---

(१) बारगाह—आईने-अकबरीमें इसका मानचित्र दिया हुआ है। अबुलफ़जलके कथनानुसार बड़ी बारगाहके नीचे दस सहस्र मनुष्य बैठ सकते हैं। १००० फ़र्राश इसको ७ दिनमें खड़ा कर सकते हैं। सादी बारगाहकी लागत कमसे कम १०००० रु० है (अकबरका समय)।

सम्राट्के तख़्त (चौकी) पर बैठते ही नक़ीब (घोषणा करनेवाले) और हाजिब उच्च स्वरसे 'बिस्मिल्लाह' उच्चारण करते हैं। इसके उपरांत एक एक व्यक्ति सम्राट्की वंदनाके लिए आगे बढ़ता है। सर्वप्रथम क़ाज़ी, ख़तीब (खुतबा पढ़नेवाला), विद्वान् शैख़ तथा सैय्यद, और सम्राट्के भ्राता तथा अन्य निजी निकटस्थ संबंधी आगे बढ़ते हैं। इनके पश्चात् विदेशी, फिर वज़ीर (मंत्री) और सैन्यके उच्च पदाधिकारी, वृद्ध दास और सैन्यके सरदारोंकी बारी आती है। प्रत्येक व्यक्ति अत्यन्त शान्तिपूर्वक वन्दना कर यथास्थान आकर बैठ जाता है।

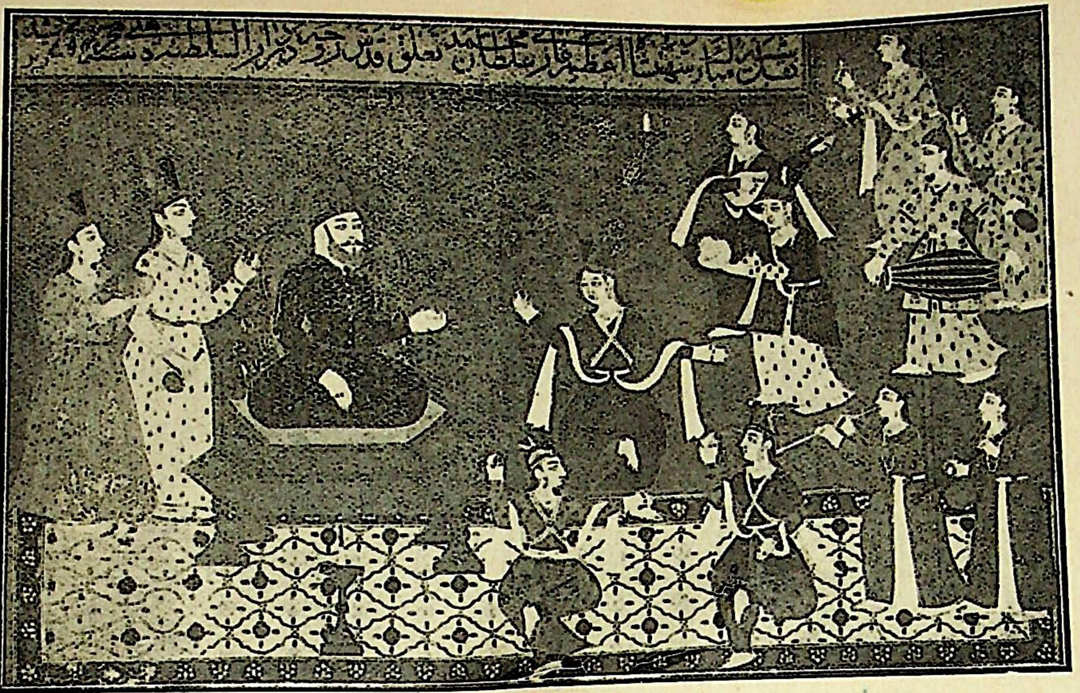
ईदके अवसरपर जागीरदार तथा अन्य ग्रामाधिपति रूमालोंमें अशर्फियाँ बाँध सुवर्णके थालोंमें, जो इसी मतलबसे वहाँ रख दिये जाते हैं, आकर डालते हैं। रूमालोंपर भेंट देनेवालोंका नाम लिखा रहता है। इस रीतिसे बहुत सा धन एकत्र हो जाता है। सम्राट् इसमेंसे इच्छानुसार दान भी देता है। वन्दना हो जानेके अनन्तर भोजन आता है।

ईदके दिन शुद्ध सुवर्णकी बनी हुई बुर्ज़ाकार एक बड़ी अँगीठी[1] भी निकाली जाती है। उपर्युक्त चौकीकी तरह इस

(१) बदरचाच नामक कविने इसी अँगीठीकी प्रशंसामें निम्नलिखित पद्य लिखे हैं—

ज़ां चार गोशे मिजमरे ज़र्री मियाने सहन।
कज़ बूए भो मशामे मलायक मुअत्तर अस्त ॥१॥
दूदश सवादे दीदए हूराने जन्नतस्त।
इतरश बुख़ारे ग़ालिया हौज़े कौसरस्त ॥२॥

अर्थात्—इस अँगीठीसे फरिश्तोंके मस्तिष्क भी सुगंधित हो जाते हैं और धुएँसे स्वर्गकी अप्सराओंके नेत्रोंके लिये कज्जल प्राप्त होता है। और



मुह० तुग़लकके रंगमहलका एक दृश्य, पृ० ११५ (हि० ९४० में खींचा गया)

अँगीठीके भी बहुतसे पृथक् पृथक् खण्ड हैं। बाहर लाकर ये सब खण्ड जोड़ लिये जाते हैं। इस अँगीठीके तीन भाग हैं। फ़र्राश (भृत्य विशेष) जब इस अँगीठीमें ऊद (एक प्रकारकी सुगंधित लकड़ी), इलायची और अंबर (सुगन्ध देनेवाला पदार्थविशेष) जलाते हैं तो समस्त दीवानख़ाना सुगन्धिसे महँक उठता है। दासगण स्वर्ण तथा रजतके गुलाबपाशों द्वारा उपस्थित जनतापर गुलाब तथा अन्य पुष्पोंके अर्क़ छिड़कते रहते हैं।

बड़ी चौकी तथा अँगीठी केवल ईदके ही अवसरपर बाहर निकाली जाती है। ईद बीत जानेपर सम्राट् दूसरी सुवर्ण-निर्मित चौकीपर बैठ कर दरबार करता है जो बारगाहमें होता है। बारगाहमें तीन द्वार होते हैं। सम्राट् इनके भीतर बैठता है। प्रथम द्वारपर इमादुल मुल्क सरतेज़ खड़ा होता है, द्वितीय द्वारपर मलिक नकबह और तृतीयपर यूसुफ़ बुग़रा। दाहिनी तथा बायीं ओर अन्य अमीर और समस्त दरबारी यथास्थान खड़े होते हैं।

बारगाहके कोतवाल मलिक तग़ीके हाथमें स्वर्णदण्ड और इसके नायबके हाथमें रजत-दण्ड होता है। ये ही दोनों समस्त दरबारियोंको यथास्थान बैठाते और पंक्तियाँ सीधी करते हैं। वज़ीर और कातिब उनके पीछे तथा हाजिब और नक़ीब यथास्थान खड़े होते हैं।

इसके अनन्तर नर्त्तकी तथा अन्य गाने-बजाने-वाले आते हैं। सर्वप्रथम उस वर्ष जीते हुए राजाओंकी युद्धगृहीता कन्याएँ आकर राग आदि अलापती तथा नृत्य-प्रदर्शन करती हैं।

इनकी भाफ़से कौसर नामक स्वर्गीय सरोवरका जल भी सुगंधित हो जाता है।

सम्राट् इनको अपने कुटुम्बी, भ्राता, जामाता तथा राजपुत्रोंमें बाँट देता है। यह सभा अस्र (संध्याके चार बजेके) पश्चात् होती है।

दूसरे दिन अस्रके पश्चात् फिर इसी क्रमसे सभा होती है। ईदके तीसरे दिन सम्राट्के संबधी तथा कुटुम्बियोंके विवाह होते हैं और उनको पुरस्कारमें जागीरें दी जाती हैं। चौथे दिन दास स्वाधीन किये जाते हैं और पाँचवें दिन दासियाँ। छठें दिन दास-दासियोंके विवाह किये जाते हैं और सातवें तथा अन्तिम दिन दीनोंको दान दिया जाता है।

७—यात्राकी समाप्तिपर सम्राट्की सवारी

सम्राट्के यात्रासे लौटने पर हाथी सुसज्जित किये जाते हैं और सोलह हाथियोंपर सोनेके जड़ाऊ छत्र लगाये जाते हैं। आगे आगे रत्नजटित ज़ीनपोश उठा कर ले जाते हैं।

इसके अतिरिक्त विविध श्रेणीके बड़े बड़े रेशमी वस्त्राच्छादित काष्ठके बुर्ज़ भी बनाये जाते हैं। इनकी प्रत्येक श्रेणी में वस्त्राभूषण पहिने एक सुन्दर दासी बैठती है। बुर्ज़के मध्य भागमें एक चमड़ेका कुण्ड होता है जिसमें गुलाबका शरबत भरा रहता है। उपर्युक्त दासियाँ नागरिक अथवा परदेशी, प्रत्येक व्यक्तिको जल पिलाती हैं। जलपानके उपरांत उसको पान-गिलौरियाँ दी जाती हैं।

नगरसे राजप्रासाद तक दोनों ओरकी दीवारें रेशमी वस्त्रोंसे मढ़ दी जाती हैं और मार्गपर भी रेशमी वस्त्र बिछा दिया जाता है। सम्राट्का घोड़ा इसी मार्गसे होकर जाता है। सम्राट्के आगे सहस्रों दास और पीछे पीछे सैनिक चलते हैं। ऐसे अवसरोंपर कभी कभी हाथियोंपर छोटी छोटी

मंजनीक़ चढ़ाकर उनके द्वारा दीनार और दिरहम भी लोगों-पर फेंकते हुए मैंने देखा है। यह बखेर नगर-द्वारसे लेकर राजप्रासाद तक होती है[1]।

८—विशेष भोजन

राजप्रासादमें दो प्रकारका भोजन होता है—विशेष और साधारण। सम्राट्का भोजन 'विशेष भोजन' कहलाता है। इसमें विशेष अमीर, सम्राटके चचाका पुत्र फ़ीरोज़ इमादुल-मुल्क सरतेज़, मीर मजलिस (विशेष पदधारी) अथवा सम्राट्का विशेष कृपापात्र कोई विदेशीय—केवल इतने ही आदमी सम्मिलित होते हैं।

कभी कभी उपस्थित व्यक्तियोंमेंसे किसीपर विशेष कृपा होनेके कारण जब सम्राट् स्वयं अपने हाथोंसे एक रोटी रकाबीपर रख उसको दे देता है तो वह व्यक्ति रकाबीको बायीं हथेलीपर लेता है और दाहिने हाथसे वंदना करता है।

कभी कभी 'विशेष भोजन' अनुपस्थित व्यक्तिके लिए भी भेजा जाता है। वह भी उसको उपस्थित व्यक्तिकी ही भाँति वन्दना कर ग्रहण करता है और समस्त उपस्थित लोगोंके साथ मिलकर खाता है। मैं इस विशेष भोजनमें कई बार सम्मिलित हुआ हूँ।

---

(१) फरिश्ताके अनुसार पिताकी मृत्युके ४० दिन पश्चात् मुहम्मद तुग़लक़के सर्वप्रथम दिल्ली नगरमें प्रवेश करनेपर प्रसन्नताके कारण नगाड़े बजाये गये और राहमें 'गोले' लटकाये गये थे। समस्त हाट-बाट, गली-चौराहे, भाँति भाँतिसे सुसज्जित किये गये थे और सम्राट्के राज-प्रासादमें हाथीसे उतरनेके समय तक, श्वेत तथा रक्त दीनारोंकी न्यौछावर और बखेर रास्तों और मकानोंकी छतोंकी ओर की गयी थी।

६—साधारण भोजन

यह भोजनालयसे[1] आता है। नक़ीब आगे आगे बिस्मिल्लाह उच्चारण करते जाते हैं। नक़ीबोंके आगे नक़ीबउल नक़बा होता है। इसके हाथमें सोनेकी छड़ी होती है और नायबके हाथमें चाँदीकी। चतुर्थ द्वारके भीतर प्रवेश करते ही इन लोगोंका स्वर सुन सम्राट्के अतिरिक्त जितने व्यक्ति दीवानख़ानेमें होते हैं सब खड़े हो जाते हैं।

भोजन पृथ्वीपर धरनेके उपरांत नक़ीब (प्रहरी) तो पंक्तिबद्ध हो खड़े हो जाते हैं और उनका सरदार आगे बढ़कर सम्राट्की प्रशंसा कर पृथ्वीका चुंबन करता है। उसके ऐसा करने पर समस्त नक़ीब, और उपस्थित जनता भी पृथ्वीका चुम्बन करती है।

यहाँकी ऐसी परिपाटी है कि ऐसे अवसरोंपर नक़ीबका शब्द सुनते ही प्रत्येक व्यक्ति जहाँका तहाँ खड़ा हो जाता है, और जबतक नक़ीब सम्राट्की प्रशंसा समाप्त नहीं कर लेता तबतक न तो कोई बोलता है और न किसी प्रकारकी चेष्टा ही करता है।

नक़ीबके उपरांत उसका नायब सम्राट्की प्रशंसा करता

---

(१) मसालिक उल अबसारका लेखक कहता है कि सम्राट्की सभा दिनमें दो बार अर्थात् प्रातः और सायं होती है। प्रत्येक बार सभा विसर्जन के पश्चात् सर्वसाधारणके लिए दस्तरख्वान बिछते हैं और यहाँ बीस सहस्र मनुष्योंका भोज होता है। सम्राट्के साथ विशेष दस्तरख्वानपर भी लगभग दो सौ मनुष्य बैठते हैं। कहा जाता है कि सम्राट्के रसोईघरमें प्रत्येक दिन अढ़ाई सहस्र बैल और दो सहस्र भेड़-बकरियोंका वध होता है।

है। इसके समाप्त होने पर समस्त उपस्थित जन फिर उसी प्रकार पृथ्वीका चुम्बन कर बैठ जाते हैं।

प्रशंसाके उपरांत मुतलद्दो समस्त उपस्थित व्यक्तियोंके नाम लिख लेता है, चाहे उनकी उपस्थितिका हाल सम्राट्को विदित हो या न हो। फिर कोई राजपुत्र यह सूची लेकर सम्राट्के पास जाता है और सूची देखकर सम्राट् किसी विशेष व्यक्तिको संबोधित कर भोजन करानेकी आज्ञा देता है। भोजनमें रोटी (चपातियाँ), भुना मांस, चावल, मुर्ग़ और संबोसा आदि पदार्थ होते हैं जिनका मैं पहले ही उल्लेख कर चुका हूँ। दस्तरख़्वानके मध्यमें क़ाज़ी, ख़तीब तथा दार्शनिक सय्यद और शेख़ होते हैं; इनके पश्चात् सम्राट्के कुटुम्बी और अन्य अमीर क्रमशः यथाविधि बैठते हैं। प्रत्येक व्यक्तिको अपना नियत स्थान विदित होनेके कारण किसीको कुछ भी दिक़्क़त और परेशानी नहीं उठानी पड़ती।

सबके बैठ जानेके उपरान्त शर्वदार (भृत्यविशेष) हाथोंमें सुवर्ण, रजत, ताम्र तथा काँचके, शर्बत पीनेके, प्याले लेकर आते हैं; भोजनके पहले शर्बतका पान होता है। इसके उपरांत हाजिबके 'बिस्मिल्लाह' कहने पर भोजन प्रारम्भ होता है। प्रत्येक व्यक्तिके सम्मुख एक रकाबी और सब प्रकारके भोजन रखे जाते हैं। एक रकाबीमें दो आदमी एक साथ भोजन नहीं कर सकते—प्रत्येक व्यक्ति पृथक् पृथक् भोजन करता है। भोजनके पश्चात् फ़ुक़ाअ (एक तरहकी मदिरा) क़लईके प्यालोंमें लाया जाता है, और लोग हाजिबके 'बिस्मिल्लाह उच्चारण करनेके उपरान्त इसका पान करते हैं। फिर पान तथा सुपारी आती है। प्रत्येक व्यक्तिको एक एक मुट्ठी सुपारी और रेशमके डोरेसे बंधे हुए पानके पन्द्रह बीड़े दिये जाते हैं। पान

बँटनेके अनन्तर हाजिब पुनः 'बिस्मिल्लाह' उच्चारण करते हैं और सब लोग खड़े हो जाते हैं। वह अमीर जो भोजन कराने-के कार्यपर नियत होता है पृथ्वीका चुंबन करता है, फिर सब उपस्थित जन भी उसी प्रकार पृथ्वीका चुम्बन कर चल पड़ते हैं। दो बार भोजन होता है—एक तो ज़ुहर (दिनके १ बजेकी नमाज़) से पहले और दूसरा अस्रके (४ बजेकी नमाज़) के पश्चात्।

१०—सम्राट्की दानशीलता[१]

इस सम्बन्धमें मैं केवल उन्हीं घटनाओंका वर्णन करूँगा जो मैंने स्वयं देखी हैं।

परमात्मा सर्वज्ञ है; और जो कुछ मैंने यहाँ लिखा है उसकी सत्यता यमन (अरबका प्रान्त विशेष), ख़ुरासान और फारिसके लोगोंपर भलीभाँति प्रकट है। विदेशोंमें सम्राट्-की कृपाकी घर घर प्रसिद्धि हो रही है। कारण यह है कि सम्राट् भारतवासियोंकी अपेक्षा विदेशियोंका अधिक मान तथा प्रतिष्ठा करता है और जागीर तथा पारितोषिक दे उन्हें उच्च पदोंपर भी नियुक्त करता है।

सम्राट्की आज्ञा है कि परदेशियोंको कोई निर्धन (परदेशी)

(१) फरिश्ताके अनुसार—साधु-सन्तोंको कोषके कोष दे देनेपर भी यह सम्राट् इस बातको अत्यन्त तुच्छ समझता था। हातिम आदि अत्यन्त प्रसिद्ध दानवीरोंने अपनी समस्त आयुमें भी शायद इतना दान न दिया होगा जितना यह सम्राट् एक दिनमें अत्यन्त तुच्छ दानमें दे देता था। इसके राजत्वकालमें ईरान, अरब, ख़ुरासान, तुर्किस्तान और रूम इत्यादि-से बड़े बड़े कलाकुशल एवं विद्वान् धन पानेके लोभसे भारत आते थे और आशासे भी अधिक दान पाते थे।

कहकर न पुकारें, प्रत्युत 'मित्र' नामसे सम्बोधित करें। सम्राट्-का कहना है कि परदेशीको 'परदेशी' कहकर पुकारनेसे उसका चित्त खिन्न होता है।

११—गाज़रूनके व्यापारी शहाब-उद्दीनको दान

गाज़रूनमें (शीराज़के निकटका एक नगर) एक वणिक् रहता था जिसका नाम था परवेज़। शहाबुद्दीन इस परवेज़का मित्र था। सम्राट्ने मलिक परवेज़का कम्बायत नामक नगर जागीरमें दे उसको वज़ीर (मंत्री) बनानेका वचन दे दिया था।

परवेज़ने अपने मित्र शहाबुद्दीनको बुलाकर सम्राट्के लिए भेंट तय्यार करनेको कहा तो उसने सुनहरी बूटों तथा वृक्षादिके चित्रोंवाला सराचह (डेरा), जिसके सायवानपर भी ज़रवफ़्तमें वृक्ष चित्रित थे, एक डेरा और एक कनात सहित आरामगाह बनवायी। यह सब सामान बेल-बूटेदार कमख़्वाबका बना हुआ था। इनके अतिरिक्त शहाबुद्दीनने बहुतसे ख़ञ्जर (कटार) भी उपहारार्थ संगृहीत किये और सब सामान लेकर अपने मित्रके पास आया। मित्र भी अपने देशका कर तथा उपहारका सामान लिये तैयार बैठा था। शहाबुद्दीनके आते ही दोनोंने यात्रा आरम्भ कर दी।

सम्राट्के मंत्री ख़्वाजाजहाँको यह भलीभाँति विदित था कि सम्राट् परवेज़को क्या वचन दे चुका है। अतएव उसका इनकी यात्राका वृत्तान्त ज्ञात होनेपर बहुत बुरा लगा। पहिले कम्बायत और गुजरात उसीकी जागीरमें थे और इन प्रान्त-वासियोंसे उसका हार्दिक प्रेम भी था। यहाँके निवासी प्रायः हिन्दू हैं और उनमेंसे कुछ सम्राट्के प्रति बड़ी उद्दण्डताका बर्ताव करते हैं।

ख़्वाजा जहाँने इन पुरुषोंमेंसे किसीको मलिक-उलतज्जार (वणिक्-सम्राट्) का राहमें ही वध करनेका गुप्त संकेत कर दिया। फल यह हुआ कि जब मलिक-उलतज्जार कर तथा भेंट लिये राजधानीकी ओर अग्रसर हो रहा था तब एक दिन चाश्त (अर्थात् दिनके ९ बजेकी नमाज़) के समय, किसी पड़ावपर, जब समस्त सैनिक अपनी अपनी आवश्यकताएँ पूरी करनेमें व्यग्र थे और कुछ शयन कर रहे थे, हिन्दुओंका एक समूह इनपर आ टूटा। वणिक्-सम्राट्का वध कर उसने उसकी सारी सम्पत्ति लूट ली। शहाबउद्दीन तो किसी प्रकार बच गया पर माल-असबाब उसका भी सब लुट गया।

अख़बारनवीसों (पत्र-प्रेरकों) ने जब सम्राट्को इसकी लिखित सूचना दी तो उसने "नहरवाले" के करमेंसे तीस हजार दीनार शहाब-उद्दीनको दिये जानेकी आज्ञा दी और उसको स्वदेश लौट जानेका आदेश भी मिल गया।

सम्राट्के आदेशकी सूचना मिलने पर शहाबउद्दीनने कहा कि मैं तो सम्राट्के दर्शनोंका इच्छुक हूँ। द्वार-देहलीका चुम्बन करके ही स्वदेश जाऊँगा। इस उत्तरको सूचना पाने पर सम्राट्ने बहुत प्रसन्न हो उसको राजधानीकी ओर अग्रसर होनेकी आज्ञा प्रदान कर दी।

जिस दिन मुझको सम्राट्की सेवामें उपस्थित होना था उसी दिन उसने भी राजधानीमें प्रवेश किया। वह और मैं दोनों एक ही दिन सम्राट्की सेवामें उपस्थित किये गये। सम्राट्ने शहाबउद्दीनको बहुत कुछ दिया और हमको भी ख़िलअत प्रदान कर ठहरनेकी आज्ञा दी। दूसरे दिन सम्राट्ने मुझे (इब्नबतूताको) छः सहस्र रुपये प्रदान किये जानेकी आज्ञा दी और पूँछा कि शहाब-उद्दीन कहाँ है। इसपर बहा-

उद्दीन फ़लकीने उत्तर दिया 'अख़वन्द आलम' न मीदा-नम (हे संसारके प्रभु, मैं नहीं जानता), परन्तु फिर कहा 'ज़हमत दारद' (वह कष्टमें है)। सम्राट्ने फिर कहा 'वरो हमीज़मां अज़ ख़ज़ाने यक लक टंका वगीरा पेश ओ वेवरी ता दिले ओ ख़ुश शवद' (अभी कोषसे एक लाख टङ्क उसके पास ले जाओ जिससे उसका चित्त प्रसन्न हो)। वहा-उद्दानने तुरन्त सम्राट्की आज्ञाका पालन किया। सम्राट्ने यह आज्ञा दे दी कि जब तक यह चाहे भारतवर्षका बना हुआ माल मोल लेता रहे और उस समयतक और लोगोंका क्रय बन्द रहे। इसके अतिरिक्त मार्गव्यय सहित, पदार्थोंसे भरे हुए तीन पोत भी इसको प्रदान करनेकी सम्राट्ने आज्ञा दे दी।

हरमुज़में पहुँच कर शहाब-उद्दीनने एक बड़ा दिव्य भवन निर्माण करवाया। मैंने फिर एक बार इसी शहाबउद्दीनको शीराज़ नामक नगरके निकट देखा था। उस समय भी यह सम्राट् अबूइसहाक़से दानकी याचना कर रहा था। उस समयतक इसकी यह सब संपत्ति समाप्त हो चुकी थी।

भारतकी संपदाका यही हाल है। प्रथम तो सम्राट् इसको उस देशकी सीमासे वाहर ही नहीं ले जाने देता और यदि किसी प्रकारसे यह वाहर चली भी जाय तो संपत्ति पानेवाले-पर कोई न कोई ईश्वरीय विपदा आ पड़ती है। इसी प्रकार शहाबउद्दीनकी भी सारी सम्पदा, उसके भतीजोंका सम्राट् हरमुज़के साथ झगड़ा होनेके कारण, नष्ट-भ्रष्ट हो गयी।

१२—शैख़ रुक्न-उद्दीनको दान

मिश्रदेशीय ख़लीफ़ा अबू उल अब्बासकी सेवामें उपहार भेजकर सम्राट्ने भारत तथा सिन्धुदेशोंपर शासनाधिकार-

की विज्ञप्ति प्रदान किये जानेकी प्रार्थना की। प्रार्थना केवल विश्वासके कारण ही की गयी थी। ख़लीफ़ा अबू-उल अब्बास-ने अपना आदेश-पत्र शैख़ उलशय्यूख़ (शैख़ोंमें सर्वश्रेष्ठ) रुक्न-उद्दीनके हाथों भेजा।

शैख़ रुक्न-उद्दीनके राजधानी पहुँचने पर, सम्राट्ने उसके शुभागमन पर आदर-सत्कार भी ऐसा किया कि कुछ कोर-कसर न रही, यहाँ तक कि जब वह कभी निकट आता तो उसकी अभ्यर्थनाके लिए उठ खड़ा होता था। संपत्ति भी उसको इतनी प्रदान की कि जिसका वारपार नहीं। घोड़ेके समस्त साज़ सामान यहाँ तक कि खूँटे भी स्वर्णके थे। सम्राट्का आदेश था कि पोतसे उतरते ही वह अपने घोड़ेके नाल स्वर्णके लगवा ले।

शैख़ यह इरादा कर खम्भातकी ओर चला कि वहाँसे पोतपर चढ़कर अपने घर चला जाऊँगा परंतु क़ाज़ी जलाल-उद्दीनने राहमें विद्रोह कर इब्नउलकोलमी और शैख़ दोनोंको लूट लिया। शैख़ जान बचाकर फिर राजसभाको लौट आया। सम्राट्ने उसकी ओर देख कर हँसीमें कहा 'आमदीके ज़र विबरी व वा सनमे दिलरुबा खुरी, ज़र न बुर्दी व सर निही" (तू इस कारणसे आया था कि संपत्ति ले जाकर अपने मित्रके साथ उपभोग करूँ परंतु धन तो लुटा आया और तेरा सिर शेष रहा)। इतना कहकर, फिर उसको आश्वासन दे कहा 'संतोष करो, मैं तुम्हारे शत्रुओंपर चढ़ाई कर तुम्हारी लुटी हुई संपत्ति लौटा दूंगा और उसको द्विगुण-त्रिगुण कर तुमको दूँगा।' भारतवर्षसे लौटनेपर मैंने सुना कि सम्राट्ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर शैख़को बहुत कुछ धन-द्रव्य दिया।

१३—तिरमिज़-निवासी धर्मोपदेशकको दान

सम्राट्को वंदना करनेके लिए तिरमिज़-निवासी वाइज़ (धर्मोपदेशक) नासिरउद्दीन अपने देशसे चलकर राजधानीमें आया। कुछ काल पर्य्यंत सम्राट्की सेवा करनेके उपरान्त स्वदेश जानेकी इच्छा होनेपर सम्राट्ने इसको तुरंत चले जानेकी आज्ञा प्रदान कर दी। सम्राट्ने इसके उपदेश अबतक न सुने थे। यह विचार उठते ही कि जानेसे प्रथम एक बार इसकी धार्मिक चर्चा अवश्य सुननी चाहिये, सम्राट्ने मक़ासिर[1] के श्वेत चंदनका मिम्बर (सीढ़ीदार काष्ठका प्लेटफार्म) निर्माण करनेकी आज्ञा दी। इसमें स्वर्णकी कीलें और स्वर्णकी ही पत्तियाँ लगी हुई थीं, और ऊपर एक बड़ा लाल लगाया गया था।

नासिरउद्दीनको सुनहरी, रत्नजटित, कृष्णवर्णकी अ बासी ख़िलअत (लबादा इत्यादि) और साफ़ा दिया गया। उस समय सम्राट् स्वयं सराचह (डेरा विशेष) में आ सिंहासनासीन हो गया और उसकी दाहिनी तथा बायीं ओर भृत्य, क़ाज़ी और मौलवी यथास्थान बैठ गये। वाइज़ (धर्मोपदेशक) ने ओजस्विनी भाषामें सारगर्भित खुतबा पढ़ा और तत्पश्चात् धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया। उपदेश तो कुछ ऐसा सारगर्भित न था परन्तु उसकी भाषा अत्यन्त ओजस्विनी एवं भावप्रेरक थी।

उपदेशकके मिंबरसे नीचे उतरते ही सम्राट्ने प्रथम तो उसको गले लगा लिया, फिर हाथीपर बैठाकर उपस्थित

---

(१) 'मक़ासिर' नामकद्वीपसे अभिप्राय है। यह जावा आदि पूर्वीय द्वीपसमूहोंमें है।

व्यक्तियोंको आगे आगे पैदल चलनेकी आज्ञा दी। मैं भी उस समय वहाँ उपस्थित था और मुझको भी इस आज्ञाका पालन करना पड़ा।

फिर उसको सम्राट्के डेरेके संमुख खड़े हुए एक दूसरे सराचह (अर्थात् डेरा) में ले गये। यह भी नाना प्रकारके रंगीन रेशमी वस्त्रों द्वारा उपदेशकके लिए ही बनवाया गया था। डेरेकी कनात तथा रस्सियाँ तक रेशमकी थीं। डेरेमें एक ओर सम्राट्के दिये हुए स्वर्णपात्र रखे हुए थे। पात्रोंमें एक तनूर (एक प्रकारका चूल्हा), जो इतना बड़ा था कि एक आदमी इसके भीतर बड़ी सुगमतासे बैठ सकता था, दो बड़े देग, रकाबियाँ (इनकी संख्या मुझे स्मरण नहीं रही), कई गिलास, एक लोटा, एक तमीसंद (न मालुम यह पदार्थ क्या है), एक भोजन लानेकी चारपायोंवाली बड़ी चौकी और एक पुस्तक रखनेका सन्दूक था। ये सब चीजें स्वर्णकी ही बनी हुई थीं।

इमाद-उद्दीन समतानीने जब डेरेके दो खूँटे उखाड़ कर देखे ता उनमें एक पीतलका और दूसरा ताँबेका, पर क़लई किया हुआ, निकला। देखनेमें वे दोनों सोने-चाँदीके मालूम पड़ते थे। पर वे वास्तवमें ठोस न थे।

इस उपदेशकके आगमन पर सम्राट्ने इसको एक लाख दीनार और दो सौ दास दिये थे। कुछ दासोंको तो इसने अपने पास रखा और कुछको बेच डाला।

१४—अन्य दानोंका वर्णन

धर्माचार्य तथा हदीसोंके ज्ञाता अब्दुल अज़ीज़ने दमिश्क़ नामक नगरमें नक़ीउद्दीन इब्नतैमियाँ और बुरहानउद्दीन

इब्नुलयरक़ाह जमालउद्दीन मिज़्ज़ी और शमसुद्दीन इत्यादिसे शिक्षा प्राप्त कर सम्राट्की सेवा स्वीकार की। सम्राट् इनका बड़ा सम्मान करता था। एक दिन संयोगवश इन्होंने हज़रत अब्बास तथा उनके वंशजोंकी प्रशसामें कुछ हदीसोंका वर्णन किया और अब्बास वंशीय ख़लीफ़ाओंका भी कुछ वृत्तान्त कहा। अब्बास वंशीय खलीफासे प्रेम होनेके कारण सम्राट्को वे हदीसें बहुत ही रुचिकर प्रतीत हुईं। उसने अर्दबेल-निवासी अब्दुल अज़ीज़के पदका चुम्बन कर सुवर्णकी थालीमें दो सहस्र दीनार लानेकी आज्ञा दी और भरी-भराई थाली धर्माचार्यकी भेंट कर दी।

धर्माचार्य शमसुद्दीन अन्दगानो एक विद्वान् कवि थे। इन्होंने फ़ारसी भाषामें सम्राट्के प्रशंसात्मक सत्ताइस शेर लिखे और उसने प्रत्येक बैत (कविताका चरण) के बदलेमें एक एक सहस्र दीनार इनको दानमें दिये।

हमने आज तक, प्रत्येक बैतपर एक सहस्र दिरहमसे अधिक पारितोषिक कभी न सुना था, परंतु वह भी सम्राट्के दानका दशांश मात्र था।

शौकार (फारसका नगर) निवासी अज़्दउद्दीनकी विद्वत्ता-की स्वदेशमें खूब ख्याति थी। उसके प्रकांड पांडित्यकी चारों-ओर दुंदुभि बज रही थी। जब यह चर्चा सम्राट्के कानोंतक पहुँची तो उसने शेख़के पास दस सहस्र मुद्राएँ घर बैठे भेज दीं। वह न तो कभी सम्राट्की सेवामें उपस्थित हुआ और न कभी उसने कोई दूत ही भेजा।

शीराज़के प्रसिद्ध महात्मा काज़ी मज़्द-उद्दीनकी प्रशंसा सुनकर सम्राट्ने उसके पास भी दस सहस्र मुद्राएँ दमिश्क़के निवासी शैखजादों द्वारा भेजी थीं।

धर्मोपदेशक बुरहान-उद्दीन बड़ा दानी था। जो कुछ उसके पास होता भूखोंको दे देता था और कभी कभी तो ऋण तक लेकर दान करता था। सम्राट्ने यह सुनकर उसके पास चालीस सहस्र दीनार भेज भारत आनेकी प्रार्थना की। शैख़ने दीनार लेकर अपना ऋण चुका दिया, परंतु भारत आना यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि भारत-सम्राट् विद्वानोंको अपने सम्मुख खड़ा रखता है; मैं ऐसे व्यक्तिकी सेवामें नहीं आ सकता और ख़ता नामक देशकी ओर चला गया।

ईरानके सम्राट् अबूसैयदके चाचाके लड़के हाजी गावनको इसके सहोदर भ्राताने, जो ईराक़में किसी स्थानका हाकिम (गवर्नर) था, सम्राट्के पास राजदूत बनाकर भेजा। सम्राट् इसकी बहुत प्रतिष्ठा करता था। एक दिनकी बात है कि मंत्री ख़्वाजा जहाँने सम्राट्की सेवामें कुछ भेंट अर्पित की। भेंट तीन थालियोंमें थी। एकमें लाल भरे हुए थे, दूसरेमें पन्ने और तीसरेमें मोती। हाजी गावन भी उस समय वहाँ उपस्थित था। बस सम्राट्ने भेंटका बहुतसा भाग इसीको दे डाला। विदाके समय भी सम्राट्ने इसको प्रचुर सम्पत्ति प्रदान की। हाजी जब ईराक़में पहुँचा तो इसके भ्राताका देहान्त हो चुका था और उसके स्थानमें 'सुलेमान' नामक एक व्यक्ति वहाँका हाकिम बन बैठा था। हाजीने अपने भाईका दाय तथा देश दोनोंको अधिकृत करना चाहा। सेनाने इसके हाथपर भक्तिकी शपथ ले ली और यह फ़ारिसकी ओर चल पड़ा और शौंकार नामक नगरमें जा पहुँचा। इस नगरका शैख़ जब कुछ विलम्बसे इसकी सेवामें उपस्थित हुआ तो इसने देरसे उपस्थित होनेका कारण पूँछा। उसने कुछ कारण बतलाये भी परन्तु इसने उन्हें अस्वीकार कर सैनिकोंको आज्ञा दी 'क़ल्ज़-चिमार' अर्थात्

तलवार खींचो और उन्होंने तलवार खींच उन सबकी गर्दनें मार दीं। संख्या अधिक होनेके कारण आसपासके अमीरोंको इसका यह कृत्य बहुत ही बुरा लगा और उन्होंने प्रसिद्ध अमीर तथा धर्माचार्य शमसुद्दीन समनानीसे पत्र द्वारा ससैन्य आकर सहायता देनेकी प्रार्थना की। सर्वसाधारण भी शौंकार-के शैख़ोंके वधका बदला लेनेको उद्यत होगये और रात्रिके समय हाजी गावनकी सेनापर सहसा आक्रमण कर उसे भगा दिया। हाजी भी उस समय अपने नगरस्थ प्रासादमें था। लोगोंने इसको भी जा घेरा। यह स्नानागारमें जा छिपा परन्तु लोगोंने न छोड़ा। इसका सिर काटकर सुलेमानके पास भेज दिया, शेष अंग समस्त देशमें बाँट दिये।

१५—ख़लीफ़ाके पुत्रका आगमन

बग़दाद-निवासी अमीर ग़यास-उद्दीन मुहम्मद अब्बासी (पुत्र अबदुल क़ादिर, पुत्र यूसुफ़, पुत्र अबदुल अज़ीज़, पुत्र ख़लीफ़ा, अलमुस्तनूसर बिल्लाह अब्बासी) जब सम्राट् अला-उद्दीन तरम शीरी मावर उन्नहर (अर्थात् ईराकके भूभाग) के सम्राट्के पास गये तो उन्होंने इनको क़शम बिन अब्बास(१)के मठका मुतवल्ली नियत कर दिया। यहाँ यह कई वर्ष पर्यन्त रहे।

जब इनको यह सूचना मिली कि भारत-सम्राट् अब्बासीय वंशजोंसे स्नेह करता है तो इन्होंने मुहम्मद हमदानी नामक धर्माचार्य तथा मुहम्मद बिन अबीशरफ़ी हरवादीको अपनी ओरसे बसीठ बनाकर सम्राट्की सेवामें भेजा। जब ये दोनों

(१) क़शम बिन अब्बास—पैग़म्बर साहिब, मुहम्मदके चचाका पुत्र था।

दूत सम्राट्की सेवामें उपस्थित हुए तो उस समय नासिर-उद्दीन तिरमिज़ी भी (जिसका मैंने ऊपर वर्णन किया है) वहाँ उपस्थित था। यह मिर्ज़ा अमीर ग़यास-उद्दीनसे भली भाँति परिचित था। दूतोंने बग़दादमें अन्य शख़्सोंसे भी उनकी सत्य वंशावलीका पूर्ण परिचय प्राप्त कर यथार्थ निर्णय कर लिया था। जब नासिरउद्दीनने भी इसका अनुमोदन किया तो सम्राट्ने दूतोंको पञ्च सहस्र दीनार भेंट दिये और अमीर ग़यास-उद्दीनके मार्गव्ययके लिए तीस सहस्र दीनार दे स्वलिखित पत्र भेजकर उनसे भारतमें पधारनेकी प्रार्थना की।

पत्र पहुँचते ही ग़यास-उद्दीन चल पड़े। जब सिंधु प्रान्तमें पहुँचे तो अख़बार-नवीसोंने इसकी सूचना सम्राट्को दी और परिपाटीके अनुसार कुछ व्यक्तियोंको उनकी अभ्यर्थनाके लिए भेजा। जब वह 'सिरसा' नामक स्थानमें आ गये तो कमाल-उद्दीन सदरे-जहाँको कुछ धर्माचार्योंके साथ उनकी सवारीके साथ साथ आनेकी आज्ञा दे दी गयी और कुछ अमीर भी उनके स्वागतके लिए भेजे गये। जब वह 'मसऊदाबादमें' आये तो सम्राट् स्वयं उनके स्वागतको राजधानीसे निकल कर वहाँ पहुँचा। संमुख आते ही ग़यास-उद्दीन पैदल हो गये और सम्राट् भी वाहनसे उतर पड़ा। ग़यास-उद्दीनने जब परिपाटीके अनुसार पृथ्वीका चुम्बन किया तो सम्राट्ने भी इसका अनुसरण किया। ग़यास-उद्दीन अपने साथ सम्राट्की भेंटके लिए कुछ वस्त्रोंके थान भी लाये थे। सम्राट्ने एक थान अपने कंधे-पर डाल, जिस प्रकार जनसाधारण सम्राट्के संमुख पृथ्वीका चुम्बन करते हैं, उसी प्रकार वंदना की। इसके अनंतर जब घोड़े आये तो सम्राट् एक घोड़ेको अमीरके संमुख कर उनको शपथ दे उसपर सवार होनेको कहने लगा और स्वयं रकाब

पकड़ कर खड़ा हो गया। तदुपरांत सम्राट् और उसके अन्य साथी अपने अपने घोड़ोंपर सवार हुए; और दोनोंपर राज-छत्रकी छाया होने लगी।

इसके उपरांत सम्राट्ने अमीरको अपने हाथोंसे पान दिया। यही सबसे बड़ी सम्मान-सूचक बात थी। कारण यह है कि भारतवर्षमें सम्राट् अपने हाथसे किसीको पान नहीं देता। पान देनेके उपरांत सम्राट्ने कहा कि यदि मैं ख़लीफ़ा अबुल-अब्बासका भक्त न होता तो अवश्य आपका भक्त हो जाता। इसपर ग़यास उद्दीनने यह उत्तर दिया कि मैं स्वयं अबुल अब्बासका भक्त हूँ।

अमीर ग़यास-उद्दीनने फिर सम्राट्के सम्मानार्थ रसूल अल्लाह (पैग़म्बर मुहम्मद) सल्ले अल्लाह आलई व सल्लम (परमेश्वर उनपर कृपा करे और उनकी रक्षा करे) को यह हदीस पढ़ी कि जो बंजर पृथ्वीको जीवित करता है अर्थात् उसको बसाता है वही उसका स्वामी है। इसका तात्पर्य्य यह था कि मानों सम्राट्ने हमको ऊसरकी भाँति पुनः जीवित किया है। सम्राट्ने भी इसका यथोचित उत्तर दिया।

इसके पश्चात् सम्राट्ने उनको तो अपने सराचह (अर्थात् डेरे) में ठहराया और अपने लिए अन्य डेरा गड़वा लिया। दोनों उस रात्रिको राजधानीके बाहर रहे।

प्रातःकाल राजधानीमें पधारने पर सम्राट्ने ख़िलजी-सम्राट् अलाउद्दीन और कुतुब-उद्दीन द्वारा निर्मित सीरीका 'राजप्रासाद'[१] इनके निवासार्थ नियत कर दिया और स्वयं अमीरों सहित वहाँ पधारकर, समस्त पदार्थ एकत्र किये जिनमें सोने-चाँदीके अन्य पात्रोंके अतिरिक्त सुवर्णका एक बड़ा

(१) यह भवन 'सब्ज़ महल' (हरित प्रासाद) कहलाता था।

हम्माम भी था। तदुपरांत चार लाख दीनार तो उसी समय निछावर किये गये और दास-दासियाँ सेवाके लिए भेजी गयीं। दैनिक व्ययके लिए भी तीन सौ दीनार नियत कर दिये। इसके अतिरिक्त सम्राट्के यहाँसे विशेष भोजन भी इनके लिए प्रत्येक समय भेजा जाता था।

गृह, उपवन, गोदाम, तथा पृथ्वी सहित 'समस्त सीरी' नामक नगर और सौ अन्य गाँव भी इनको जागीरमें दिये गये। इसके अतिरिक्त दिल्लीके पूर्वकी ओरके स्थानोंकी हकूमत (गवर्नरी) भी इनको दी गयी। रौप्य ज़ीन युक्त तीस खच्चर सम्राट्की ओरसे सदा इनकी सेवामें उपस्थित रहते थे, और उनका समस्त दाना घास इत्यादि सर्कारी गोदामसे आता था।

राजभवनमें जिस स्थानतक सम्राट् घोड़ेपर चढ़कर स्वयं आता था उसी स्थानतक इनको भी वैसेही आनेकी आज्ञा थी। कोई अन्य व्यक्ति इस प्रकार राजप्रासादमें न आ सकता था। सर्वसाधारणको भी यह आदेश था कि जिस प्रकार वह सम्राट्को वंदना पृथ्वीका चुम्बन कर किया करते हैं, उसी प्रकारसे इनको भी किया करें।

इनके आनेपर स्वयं सम्राट् सिंहासनसे नीचे उतर आता था, और यदि चौकीपर बैठा होता तो खड़ा हो जाता था। दोनोंही एक दूसरेकी अभ्यर्थना करते थे। सम्राट् इनको मसनदपर अपने बराबर आसन देता था और इनके उठने-पर स्वयं भी उठ खड़ा होता था। चलते समय सम्राट् इनको सलाम (प्रणाम) करता था और यह सम्राट्को।

सभा-स्थानसे बाहर इनके लिये एक पृथक् मसनद बिछा दी जाती थी और इस स्थानपर यह चाहे जितने समय तक बैठे रहते थे। प्रत्येक दिन दो बार ऐसा होता था।

अमीर ग़यास-उद्दीन दिल्लीमें ही थे कि बंगालका वज़ीर वहाँ आया। बड़े बड़े अमीर-उमरा यहाँ तक कि स्वयं सम्राट् भी उसकी अभ्यर्थनाको बाहर निकला, और नगर भी उसी प्रकार सजाया गया जिस प्रकार सम्राट्के आगमनके समय सजाया जाता है।

क़ाज़ी, धर्मशास्त्रके ज्ञाता तथा अन्य विद्वान् शैख़ों सहित अमीर ग़यास-उद्दीन इब्ने (पुत्र) ख़लीफ़ा भी उससे मिलने-को बाहर आये। लौटते समय सम्राट्ने वज़ीरसे मख़दूम ज़ादह (खलीफ़ा-पुत्र) के गृहपर जानेके लिए कहा। वज़ीर इसके यहाँ गया और दो सहस्र अशर्फ़ियाँ और कपड़ेके थान भेंटमें दिये। मैं और अमीर क़बूला दोनों वज़ीरके साथ वहाँ गये थे और उस समय वहाँ उपस्थित थे।

एक बार ग़ज़नीका शासक बहराम वहाँ आया। खलीफ़ा और इस शासकमें आपसका कुछ द्वेष चला आता था। सम्राट्ने इस शासकको 'सीरी-नगरस्थ' एक गृहमें ठहरानेकी आज्ञा दी। याद रहे कि सीरीका समस्त नगर सम्राट्ने इस-से पूर्व इब्ने खलीफ़ाको प्रदान कर दिया था। ग़ज़नीके शासक-के लिए इसी नगरमें एक नया मकान सम्राट्के आदेशसे तैयार कराया गया।

यह समाचार सुनते ही इब्ने खलीफ़ा क्रुद्ध हो राज-प्रासादमें जा अपनी मसनद (गद्दी) पर यथापूर्व बैठ गये और वज़ीरको बुला कहने लगे कि 'अखवन्द आलम (संसा-रके प्रभु) से कह देना कि जो कुछ उन्होंने मुझे प्रदान किया है वह सब मेरे गृहमें आज पर्यंत वैसाही रखा हुआ है। मैंने उससे कुछ भी कम नहीं किया है। संभव है, उसको पहि-लेसे कुछ अधिक ही कर दिया हो। अब मैं यहाँ ठहरना नहीं

चाहता।' यह कह कर इब्ने खलीफ़ा राज-प्रासादसे उठकर चल दिये। जब वज़ीरने उनके मित्रोंसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि सम्राट्ने जो ग़ज़नीके शासकके लिए सीरीमें गृह-निर्माण करनेकी आज्ञा दी है, इसी कारण अमीर महाशय कुछ कुपितसे हो गये हैं।

वज़ीरके सूचना देते ही सम्राट् तुरंत सवार हो, दस आदमियों सहित इब्ने खलीफ़ाके गृहपर गये, और द्वारपर घोड़ेसे उतर प्रवेश करनेकी आज्ञा चाही। और इब्ने खलीफ़ासे आग्रह किया, और उनके स्वीकार कर लेनेपर भी सम्राट्ने संतोष न कर यह कहा कि यदि आप वास्तवमें प्रसन्न हो गये हैं तो मेरी गर्दनपर अपना पद रख दीजिये। खलीफ़ाने इसपर यह उत्तर दिया कि चाहे आप मेरा वध क्यों न कर डालें परन्तु मैं यह कार्य कदापि न करूँगा। सम्राट्ने अपने सिरकी सौगंद दिला, गर्दनको पृथ्वीसे लगा दिया और मलिक क़बूलाने इब्नेखलीफाका पैर स्वयं अपने हाथोंसे उठाकर सम्राट्की गर्दनपर रख दिया। सम्राट् यह कहकर कि मुझे अब सन्तोष हो गया, खड़ा हो गया। किसी सम्राट्के सम्बन्धमें मैंने आज तक ऐसी अद्भुत कथा नहीं सुनी।

ईदके दिन मैं भी मख़दूम ज़ादह (आदरणीय व्यक्तिके पुत्र) की वन्दनाके निमित्त गया। मलिक कबीर (इस अवसरपर) उनके लिए सम्राट्की ओरसे तीन ख़िलअतें लाया था। इनके चोग़ोंमें रेशमी तुकमोंके स्थानमें बेरके समान मोतियोंके बटन लगे हुए थे। कबीर ख़िलअतें लिये द्वारपर खड़ा रहा, और इब्ने ख़लीफ़ाके बाहर आनेपर उनको ख़िलअत पहिनायीं।

सम्राट्से अपरिमित धन-सम्पत्ति पानेपर भी यह महाशय

बड़े ही कंजूस थे। इनकी कंजूसी सम्राट्की उदारतासे भी बढ़ी हुई थी।

ख़लीफ़ासे मेरी घनिष्ठ मित्रता थी, इसी कारण यात्राको जाते समय अपने पुत्र अहमदको भी इन्हींके पास छोड़ आया था। मालूम नहीं उसकी क्या दशा हुई।

एक दिन मैंने इनसे अकेले भोजन करनेका कारण पूछा और कहा कि आप अपने दस्तरख़्वान (भोजनके नीचेके वस्त्र) पर इष्ट मित्रोंको क्यों नहीं बुलाया करते। इसपर इन्होंने यह उत्तर दिया कि मैं इतने अधिक पुरुषोंको अपना भोजन विध्वंस करते अपनी इन आँखोंसे देखनेमें असमर्थ हूँ, और इसी कारण सबसे पृथक् होकर भोजन करना मुझे अत्यन्त प्रिय है। भोजनका केवल कुछ भाग मित्र मुहम्मद अबीशरफ़ीको भेज दिया जाता था और शेष इन्हींके उदरमें जाता था।

इनके यहाँ जाने पर मैंने दहलीज़में सदा अंधेरा ही देखा, एक दीपका भी वहाँ प्रकाश न होता था। कई बार मैंने इनको अपने उपवनमें तिनके बटोरते हुए देखकर पूछा कि महोदय, यह आप क्या कर रहे हैं? इसपर इन्होंने यह उत्तर दिया कि कभी कभी लकड़ियोंकी भी आवश्यकता पड़ जाती है। इन तिनकोंके भी इन्होंने गोदाम भर लिये थे।

अपने दास और इष्ट मित्रोंसे यह उपवनमें कुछ न कुछ कार्य अवश्य करा लिया करते थे क्योंकि इनका कथन था कि इन लोगोंको अपना भोजन मुफ़्त खाते हुए देखना मुझको असह्य है।

एक बार कुछ ऋणकी आवश्यकता होने पर मैंने इनसे अपनी इच्छा प्रकट की तो कहने लगे कि तुमको ऋण देनेकी इच्छा तो मनमें अत्यंत प्रबल है परन्तु साहस नहीं होता।

एक बार मुझसे अपना पुरातन वृत्त यों वर्णन कर कहने लगे कि मैं चार पुरुषोंके साथ बग़दादसे पैदल बाहर गया हुआ था। हमारे पास उस समय भोजन न था। एक झरने के पाससे होकर जाते समय दैवयोगसे हमको एक दिरहम पड़ा मिला। हम सब मिलकर सोचने लगे कि इसका किस प्रकार उपयोग करें। अंतमें सर्वसम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि इस-की रोटी मोल ली जाय। हममेंसे जब एक आदमी रोटी मोल लेने गया तो हलवाईने कहा कि भाई, मैं तो रोटी और भूसा दोनों साथ साथही बेंचता हूँ। पृथक् पृथक् कोई वस्तु कदापि किसीको नहीं देता। लाचार होकर एक क़िरातकी रोटी और आवश्यकता न होनेपर भी एक क़िरातका भूसा लेना पड़ा। भूसा फेंक दिया गया और रोटीका एक एक टुकड़ा ही खाकर हमने क्षुधा निवृत्ति की। एक समय वह था और एक समय आज है। ईश्वरकी कृपासे मेरे पास इस समय खूब धन-सम्पत्ति है। जब मैंने कहा कि ईश्वरको धन्यवाद दीजिये और निर्धन तथा साधु-महात्माओंको कुछ दान भी देते रहिये, तो उत्तर दिया—मैं यह कार्य करनेमें असमर्थ हूँ। मैंने इनको दान देते अथवा किसीको सहायता करते कभी नहीं देखा। ईश्वर ऐसे कंजूससे सबकी रक्षा करे।

भारत छोड़नेके उपरान्त मैं एक दिन बग़दादकी 'मुस्तन-सरिया' नामक पाठशालाके द्वारपर (जिसका इनके दादा ख़लीफ़ा अलमुस्तन्सर बिल्लाहने निर्माण कराया था) बैठा हुआ था कि मैंने एक दुर्दशाग्रस्त युवा पुरुषको पाठशालासे बाहर निकल कर एक अन्य पुरुषके पीछे पीछे शीघ्रतासे जाते देखा। इसी समय एक विद्यार्थीने उस ओर इंगित कर मुझसे कहा कि यह युवा पुरुष भारत-निवासी अमीर ग़यास-उद्दीनका

पुत्र है। यह सुनते हा मैंने पुकार कर कहा कि मैं भारतसे आ रहा हूँ और तेरे पिताका कुशल-क्षेम भी कह सकता हूँ। परंतु वह युवा यह कहकर कि मुझे उनका कुशलक्षेम अभी पूर्णतया ज्ञात हो चुका है, फिर उसी पुरुषके पीछे पीछे दौड़ गया। जब मैंने विद्यार्थीसे उस अपरिचितके विषयमें पूछा तो उसने उत्तर दिया कि वह बंदीगृहका नाज़िर है और यह युवा किसी मसजिदमें इमाम है। इसको एक दिरहम प्रतिदिन मिलता है। इस समय यह इस पुरुषसे अपना वेतन माँग रहा है। यह वृत्त सुनकर मुझे अत्यन्त ही आश्चर्य हुआ और मैंने विचार किया कि यदि इब्ने ख़लीफा अपनी ख़िलअतका केवल एक तुकमा ही इसके पास भेज देता तो यह जीवन भरके लिए धनाढ्य हो जाता।

१६—अमीर-सैफ़ुद्दीन

जिस समय अरब तथा शाम (सीरिया) का अमीर सैफ़ुद्दीन ग़द्दा इब्नेहिब्बतुल्ला इब्न मुहन्ना सम्राट्की सेवामें आया तो सम्राट्ने अत्यंत आदर-सत्कार कर उसको सम्राट् जलालउद्दीनके 'कौशक लाल'[1] नामक प्रासादमें ठहराया। यह भवन दिल्ली नगरके भीतर बना हुआ है और बहुत बड़ा है। चौक भी इसका अत्यंत विस्तृत है और दहलीज़ भी अत्यंत गहरी

(१) कौशक लाल—आसारउस्सनादीदके लेखकका कथन है कि "सम्राट् अला-उद्दीन खिलजीने 'कौशक लाल' नामक भवन निर्माण कराया था। परन्तु यह पता नहीं चलता कि यह 'प्रासाद' कहाँ था। निज़ामउद्दीन औलियाकी समाधिके निकट एक खंडहरको लोग अबतक 'लाल महल' के नामसे पुकारते हैं। संभव है, यही उपर्युक्त 'कौशक-लाल' हो।

है। दहलीज़पर एक बुर्ज़ बना हुआ है जहाँसे बाहरके दृश्य तथा भीतरका चौक दोनों ही दिखाई देते हैं। सम्राट् जलाल-उद्दीन इसी बुर्ज़में बैठ कर चौकमें लोगोंका चौगान खेलते हुए देखा करता था।

अमीर सैफ़-उद्दीनका निवास-स्थान होनेके कारण मुझको भी इस भवनके देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। भवन वैसे तो ख़ब सजा हुआ था परन्तु समयके प्रभावसे वहाँकी प्रायः सभी वस्तुएँ जीर्ण दशामें थी। भारतमें ऐसी परिपाटी चली आती है कि सम्राट्की मृत्युके उपरान्त उसके भवनका भी त्याग कर दिया जाता है। नवीन सम्राट् अपने निवासके लिए पृथक् राजप्रासाद निर्माण कराता हैं, प्राचीन महलकी एक वस्तु तक अपने स्थानसे नहीं हटायी जाती। मैं इस भवनमें खूब घूमा और छतपर भी गया। इस उपदेशप्रद स्थानको देख कर मेरे नेत्रोंसे आँसू निकल पड़े। इस समय मेरे साथ धर्मशास्त्राचार्य जलाल-उद्दीन मग़रबी ग़र्नाती (स्पेनके ग्रेनेडा नामक नगरके निवासी) भी थे। यह महाशय अपने पिताके साथ बाल्यावस्थामें ही इस देशमें आ गये थे।

इस स्थानका प्रभाव इनके हृदयपर भी पड़ा और इन्होंने यह शेर कहा—

बसलातीनुहुम सललतीने अनहुंम।
फ़रर असुल इज़ामा सारत इज़ामा॥

(भावार्थ—उनके सम्राटोंका वृत्तान्त मिट्टीसे पूँछ कि बड़े बड़े सिरोंकी हड्डियाँ हो गयीं।) अमीर सैफ़-उद्दीनके विवाह पर भोजन भी इसी प्रासादमें हुआ। अरब-निवासियोंसे अत्यंत प्रेम होने तथा उनको आदरकी दृष्टिसे देखनेके कारण सम्राट्ने इन अमीर महोदयका भी आगमनके समय

ख़ूब आदर-सत्कार किया और कई बार इनको अमूल्य उपहार भी दिये।

एक बार मनीपुरके गवर्नर (हाकिम) मलिके-आज़म बायज़ीदीकी भेंट सम्राटके सामने उपस्थित की गयी। इसमें उत्तम जातिके ग्यारह घोड़े थे। सम्राट्ने ये सब घोड़े सैफ़उद्दीनको दे दिये। इसके पश्चात् चाँदीकी ज़ीन तथा सुवर्णकी लगामोंसे सुसज्जित दस घोड़े फिर एक बार अमीर महोदयको दिये। इसके उपरांत 'फ़ीरोज़ा अख़वन्दा' नामक अपनी बहनका विवाह भी इन्हींके साथ कर दिया।

जब भगिनीका विवाह अमीर सैफ़उद्दीनके साथ होना निश्चित होगया तो सम्राट्की आज्ञासे विवाह कार्यके व्यय तथा वलीमा (द्विरागमनके पश्चात् वर द्वारा मित्रोंके भोजको कहते हैं) की तय्यारीके कार्यपर मलिक फ़तह-उल्ला शौनवीसकी नियुक्ति कर दी गयी और मुझको इन दिनों स्वयं अमीर महोदयके साथ रहनेका आदेश मिला।

मलिक फ़तह-उल्लाने दोनों चौकोंमें बड़े बड़े सायबान (शामियाना) लगवा दिये, और एक चौकमें बड़ा डेरा लगा कर उसको भाँति भाँतिके फ़र्शसे सुसज्जित कर दिया। तबरेज़ निवासी शम्स उद्दीनने सम्राट्के दास तथा दासियोंमेंसे कुछ एक गायक तथा नर्तकियोंको ला वहाँ बैठा दिया। रसोइये और रोटीवाले, हलवाई और तंबोली भी वहाँ (यथासमय) उपस्थित होगये। पशु तथा पक्षियोंका भी खूब वध हुआ और पंद्रह दिनतक बड़े बड़े अमीर और विदेशी तक दोनों समय भोजनमें सम्मिलित होते रहे।

विवाहसे दो रात पहले बेगमोंने राजप्रासादसे आ स्वयं इस घरको भाँति भाँतिके फर्शों तथा अन्य वस्तुओंसे अलंकृत

तथा सुसज्जित कर अमीर सैफउद्दीनको बुला भेजा। अमीर महोदयके लिए तो यहाँ परदेश था, इनका कोई भी निकटस्थ या दूरस्थ संबंधी या कुटुम्बी इस समय यहाँ न था। इन स्त्रियोंने इनको बुला, और मसनदपर बिठा, चारों ओरसे घेर लिया। विदेश होनेके कारण सम्राट्की आज्ञानुसार मुबारिक ख़ाँकी माता, जो सम्राट्की विमाता थी, इस अवसरपर अमीर महोदयकी माता और बेगमों (रानियों) में से एक स्त्री इनको भगिनी, एक फूफी और एक मासी इसलिए बन गयी कि यह समझें कि हमारा सारा कुटुम्ब ही यहाँ उपस्थित है।

हाँ, तो इन स्त्रियोंने इनको चारो ओरसे घेरकर इनके हाथ और पैरमें मेंहदी लगाना प्रारंभ किया और शेष स्त्रियाँ वहाँ इनके सिरपर खड़ी हो नाचने और गाने लगीं।

यह सब होनेके उपरांत बेगमें तो वर-वधूके शयनागारमें चली गयीं और अमीर अपने मित्रोंमें आ बाहरके घरमें बैठ गये। सम्राट्ने इस अवसरपर कुछ आदमियोंको वरके पास, तथा कुछको वधूके पास रहनेका आदेश कर दिया था।

जब वर इष्ट-मित्र-सहित वधूको अपने गृहपर ले जानेके लिए वधूके द्वारपर पहुँचता है तो इस देशकी प्रथाके अनुसार वधूके मित्र, वधू-गृहके द्वारके संमुख आकर खड़े हो जाते हैं और वरको इष्ट मित्रों सहित गृह प्रवेशसे रोकते हैं। यदि वर-समाज विजयी हो गया तब तो उसके प्रवेशमें कोई भी बाधा नहीं होती परन्तु पराजित हो जाने पर कन्या-पक्षको सहस्रों मुद्राएँ भेंट करनी पड़ती हैं।

मग़रिबकी नमाज़के पश्चात (अर्थात् सूर्यास्तके पश्चात्) वरके लिए ज़रे वफ़्त (सच्चे सुनहरे कामकी मख़मल) की

वनी हुई नीले रेशमकी ख़िलअत भेजी गयी। इसमें रत्नादिक इतनी अधिक संख्यामें लगाये गये थे कि वस्त्र तक बड़ी कठिनाईसे दिखाई देता था। वस्त्रोंके ही अनुरूप ख़िलअतके साथ एक कुलाह (टोपी) भी आयी थी। मैंने ऐसे बहुमूल्य वस्त्र कभी नहीं देखे थे। सम्राट्ने अपने अन्य जामाता—इमाद-उद्दीन समनानी मलिक-उल उलेमाके पुत्र, शैख़ उल इस्लामके पुत्र, और सदरे-जहाँ बुखारीके पुत्र—को जो वस्त्र प्रदान किये थे वह भी इसकी समता न कर सकते थे।

इन वस्त्रोंको धारण कर सैफ़-उद्दीन इष्ट मित्रों तथा दासों सहित घोड़ोंपर सवार हुए। प्रत्येकके हाथमें एक एक छड़ी थी। तदुपरान्त चमेली, नसरीन तथा रायबेलके पुष्पोंकी बनी हुई मुकुटकी सी एक वस्तु[1] आयी जिसकी लड़ें मुख और छाती पर्य्यंत लटक रही थीं। यह अमीरके सिरपरके लिए थी परंतु अरब-निवासी होनेके कारण प्रथम तो अमीरने इसको धारण करना अस्वीकार ही कर दिया; फिर मेरे बहुत कहने और शपथ दिलाने पर वह मान गये और वह वस्तु उनके सिरपर रखी गयी।

इस भाँति सुसज्जित हो जब अमीर अपने समाजके साथ वधूके गृहपर पहुँचे तो द्वारके सम्मुख लोगोंका एक दल खड़ा हुआ दृष्टिगोचर हुआ। यह देख अमीरने अपने साथियों सहित उसपर अरब देशकी रीतिसे आक्रमण किया। फल यह हुआ कि सब पछाड़ें खा खाकर भाग गये। सम्राट् भी इसकी सूचना मिलने पर अत्यंत प्रसन्न हुआ। चौकमें प्रवेश करनेपर अमीरको देवा नामक बहुमूल्य वस्त्रसे मढ़ा हुआ रत्नजटित

(१) यह 'सेहरा' था जो केवल भारतमें ही विवाहके समय सिरपर बाँधा जाता है।

मिम्बर दिखाई दिया जिसपर वधू आसीन थी और उसके चारों ओर गानेवाली स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। अमीरको देखतेही यह स्त्रियाँ खड़ी हो गयीं। अमीर घोड़ेपर बैठे हुए ही मिम्बर तक चले गये, और वहाँ जा घोड़ेसे उतर मिम्बरकी पहली सीढ़ीके निकट पृथ्वीका चुम्बन किया। वधूने इस समय खड़े होकर अमीरको ताम्बूल अर्पित किया। इसके बाद अमीरके एक सीढ़ी नीचे बैठ जानेपर उनके साथियोंपर दिरहम और दीनार निछावर किये गये। इस समय स्त्रियाँ तकबीर (ईश-स्तुति—यह हम प्रथम ही लिख चुके हैं) भी कहती जाती थीं और गान भी कर रही थीं। बाहर नौबत और नगाड़े झड़ रहे थे। अब अमीरने वधूका हाथ पकड़कर उसे मिम्बरसे नीचे उतारा और वह उनके पीछे पीछे हो ली। अमीर घोड़ेपर सवार हो गये और वधू डोलेमें बैठ गयी। दोनोंपर दिरहम और दीनार निछावर किये गये। डोलेको दासोंने कन्धोंपर रखा, बेगमें घोड़ोंपर सवार होगयीं और शेष स्त्रियां इनके संमुख पैदल चलने लगीं। सवारी-(जलूस) की राहमें जिन जिन अमीरोंके घर पड़े उन सबने द्वार-पर आकर उनपर दिरहम और दीनार निछावर किये। अगले दिन वधूने वरके मित्रोंके यहाँ वस्त्र तथा दिरहम दीनार आदि भेजे और सम्राट्ने भी उनमेंसे प्रत्येकको साज तथा सामान सहित एक एक घोड़ा और दो सौसे लेकर एक हज़ार दीनार तककी थैली उपहारमें भेजी।

फ़तह-उल्लाने भी बेगमोंको भाँति भाँतिके रेशमी वस्त्र और थैलियाँ दीं। (भारतकी प्रथाके अनुसार अरब-निवासियोंको वरके अतिरिक्त और कोई कुछ नहीं देता।) इसी दिन लोगोंको भोज देकर विवाहकी समाप्ति की गयी। सम्राट्की आज्ञानुसार

'अमीर ग़द्दा' को अब मालवा, गुजरात, खम्बात और 'नहरवाला'[1] की जागीरें प्रदान की गयीं और मलिक फ़तहउल्ला उनके नायब नियत कर दिये गये। इस प्रकार अमीर महोदयकी मान प्रतिष्ठामें कोई कसर न रखी गयी; परन्तु वह तो जंगलके निवासी थे। इस मान-प्रतिष्ठाका मूल्य न समझ सके। फल यह हुआ कि बीस ही दिनके पश्चात् जंगली स्वभाव और मूर्खताके कारण वह अत्यंत तिरस्कृत हुए।

विवाहके बीस दिन बाद उन्होंने राजभवनमें जा यौंहीं भीतर (रनवासमें) प्रवेश करना चाहा। अमीर (प्रधान) हाजिब (पर्दा उठानेवाला) ने इनको निषेध किया परन्तु इन्होंने उसपर कुछ ध्यान न दे बलपूर्वक घुसनेका प्रयत्न किया। यह देख दरवानने केश पकड़ इनको पीछेकी ओर ढकेल दिया। इस पर अमीरने अपने हाथकी लाठीसे आक्रमण किया और दरवानके रुधिर-धारा बहा दी। यह पुरुष उच्चवंशोद्भव था। इसका पिता ग़ज़नीका काज़ी सम्राट् महमूद बिन (पुत्र) सबुक्तगीनका वंशज था। स्वयं सम्राट् इसके पिताको 'पिता' कह कर पुकारता था और पुत्र अर्थात् आहत दरवानको 'भाई' कहा करता था।

रुधिरसे सने हुए वस्त्रों सहित जब यह अमीर सीधे सम्राट्की सेवामें उपस्थित हो निवेदन करने लगा कि अमीर गद्दाने मुझे इस प्रकार आहत किया है तो सम्राट्ने तनिक देर तक सोच कर, उसको क़ाज़ीके निकट जा अभियोग चलानेकी आज्ञा दी और कहा-जो पुरुष सम्राट्के भवनमें इस प्रकार बलपूर्वक घुसनेका गुरुतर अपराध कर सकता है उसको क्षमा

(१) 'अनहिलवाड़े' को मुसलमान इतिहासकारोंने बहुधा 'नहरवाले' के नामसे लिखा है। यह गुजरातमें है।

नहीं दी जा सकती। इस अपराधका दंड मृत्यु है, पर परदेशी होनेके कारण उसपर कृपा की गयी है। तदुपरांत मलिक ततर-को बुला दोनोंको काज़ीके पास ले जानेकी आज्ञा दी। काज़ी कमालउद्दीन उस समय दीवानख़ानेमें थे। मलिक ततर हाजी होनेके कारण अरबी भाषामें भी खूब अभ्यस्त थे। इन्होंने अमीरसे कहा कि आपने इनको आहत किया है या नहीं? यदि आहत नहीं किया है तो कहिये कि नहीं किया है। इस प्रकार-से प्रश्न करके काज़ी महोदयने अमीरको कुछ संकेत भी किया परन्तु कुछ तो मूर्खतावश और कुछ अहंकार तथा गर्व होनेके कारण उन्होंने प्रहार करना स्वीकार कर लिया। इसी अवसरमें आहतके पिता भी आ उपस्थित हुए और उन्होंने मित्रता करा-नेका प्रयत्न भी किया परन्तु सैफ़उद्दीनको यह भी स्वीकार न था। अंतमें काज़ीने इनको रातभर बंदी रखनेकी आज्ञा दी। वधूने भी सम्राट्के कोपसे भयभीत होकर न तो इनके पास बिछौना ही भेजा और न भोजनकी ही सुधि ली। मित्रोंने भी भयभीत होकर अपनी सम्पत्ति अन्य पुरुषोंके पास थाती रूप-से रखदी। मेरा विचार अमीर महोदयसे बन्दीगृहमें जाकर मिलनेका था पर एक अमीरने मेरा विचार तोड़कर मुझे ध्यान दिलाया और कहा कि तुमने शैख़ शहाब-उद्दीन बिन शैख़ अह-मद जामसे भी एक बार इसी भाँति मिलनेका विचार किया था और सम्राट्ने इसपर तुम्हारे वध किये जानेकी आज्ञा दी थी। (वर्णन अन्यत्र देखिये) मैं यह सुनते ही लौट पड़ा।

अगले दिन ज़ुहर (दिनके एक बजेकी नमाज़) के समय अमीर ग़द्दा तो छोड़ दिये गये पर सम्राट्की दृष्टि अब इनकी ओरसे फिर गयी थी। प्रदान की हुई जागीरें पुनः आदेश द्वारा

वापिस कर ली गयीं; और सम्राट्ने इनको देश-निर्वासित करनेकी ठान ली।

मुग़ीस-उद्दीन इब्न मलिक उलमलूक नामका सम्राट्का एक अन्य भागिनेय भी था। अपने पतिके दुर्व्यवहारकी शिकायतें करते करते सम्राट्की भगिनीका देहान्त तक हो गया था। इस अवसरपर दासियोंने सम्राट्को उक्त भागिनेयके दुर्व्यवहारोंकी भी याद दिलायी। (यहाँपर यह लिख देना भी अनुचित न होगा कि इसके शुद्ध वंशज होनेमें कुछ संदेह था) सम्राट्ने अब अपने हाथोंसे आज्ञा लिखी कि हरामी और चूहाख़ोर (चूहा खानेवाले) दोनोंका ही देशनिर्वासन किया जाय। यह 'हरामी' शब्द मुग़ीस-उद्दीनके लिए व्यवहृत किया गया था और अरब निवासियोंके 'यरबूअ' अर्थात् जंगली चूहेके समान एक जीव खानेके कारण 'चूहाख़ोर' शब्द अमीर सैफ़-उद्दीनके लिए।

आज्ञा होते ही चोबदार इनको देश-निर्वासित करनेके लिए आगये। इन्होंने बहुतेरा चाहा कि गृहिणीसे ही भीतर जाकर विदा लेआवें, परंतु अनेक चोबदारोंके निरंतर आनेके कारण लाचार हो अमीर महोदय वैसेही आँसू बहाते चल दिये। मैं उस समय राज-प्रासादमें गया और रातभर वहीं रहा। एक अमीरके प्रश्न करनेपर मैंने उत्तर दिया कि अमीर सैफ़-उद्दीनके संबंधमें सम्राट्से मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। इसपर उसने कहा कि यह असंभव है। यह उत्तर सुन मैंने कहा कि यदि इस कार्यपूर्तिमें मुझे सौ दिन भी लग तो भी मैं यहाँसे न हटूँगा। अंतमें सम्राट्को भी यह सूचना मिल गयी और उसने अमीर सैफ़-उद्दीनको लौटानेकी आज्ञा दे लाहौर-निवासी अमीर कबूलाकी सेवामें रहनेका आदेश दे दिया।

चार वर्ष पर्य्यंत अमीर महोदय, यात्रामें चलते और ठहरते समय सर्वत्र ही, निरंतर उनके पास रह कर समस्त सभ्य एवं शिष्ट आचरणोंमें खूब अभ्यस्त हो गये। फिर सम्राट्ने भी उनको पूर्व पदपर पुनः नियुक्त कर जागीर लौटा दी और उनको सेनाका अधिपति तक बना दिया।

१७—वज़ीरकी पुत्रियोंका विवाह

तिरमिज़के क़ाज़ी खुदावन्दज़ादह क़वामुद्दीनके (जिनके साथ मैं मुलतानसे दिल्लीतक आया था) राजधानी आने पर सम्राट्ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और उनके दोनों पुत्रोंका विवाह भी वज़ीर ख़्वाजाजहाँकी पुत्रियोंसे करा दिया।

राजधानीमें वज़ीरकी अनुपस्थितिके कारण सम्राट्ने ही बालिकाओंके पिताका नायब बन उनके महलमें जा कन्याओंका विवाह कर दिया। काज़ी उल कुज़्ज़ात (प्रधान क़ाज़ी) जब तक निकाह पढ़ता रहा सम्राट् बराबर खड़ा रहा और अमीर आदि अन्य उपस्थित जन वैसे ही बैठे रहे। यही नहीं, बल्कि उन्होंने क़ाज़ी तथा ख़ुदावन्दज़ादहके पुत्रोंको वस्त्र और थैलियाँ स्वयं अपने हाथोंसे उठा उठा कर दीं। अमीर यह देख कर खड़े हो गये और सम्राट्से यह कार्य न करनेकी प्रार्थना की। परन्तु सम्राट्ने उनको पुनः बैठनेका ही आदेश दिया और एक अन्य अमीरको अपने स्थानपर खड़ा कर वहाँसे चला गया।

१८—सम्राट्का न्याय और सत्कार

एक बार एक हिन्दू अमीरने सम्राट्पर अपने भाईका बिना कारण वध करनेका दोषारोप किया। यह समाचार पाते ही सम्राट् बिना अस्त्र शस्त्र लगाये पैदल ही काज़ीके इज-लासमें जा यथोचित वंदना आदि कर खड़ा हो गया। क़ाज़ी-

को पहले ही इस संबंधमें आदेश कर दिया गया था कि मेरे आने पर मेरी कुछ भी अभ्यर्थना न करे और न किसी प्रकारकी कोई चेष्टा ही करे।

सम्राट्के वहाँ जाकर खड़े होनेपर क़ाज़ीने उसे आरोपीको सन्तुष्ट करनेकी आज्ञा दी और कहा कि ऐसा न होनेपर मुझको दंड की आज्ञा देनी होगी। सम्राट्ने आरोपीको संतुष्ट कर लिया।

इसी प्रकार एक बार एक मुसलमानने सम्राट्पर सम्पत्ति हड़प लेनेका आरोप किया। मुआमिला क़ाज़ीतक पहुँचा। उसने जब सम्राट्को संपत्ति लौटानेकी आज्ञा दी तो सम्राट्ने आदेशको शिरोधार्य समझ उस व्यक्तिकी सारी संपत्ति लौटा दी।

एक बार एक अमीरके पुत्रने सम्राट्पर विना हेतु प्रहार करनेका आरोप किया। इसपर क़ाज़ीने सम्राट्को उस लड़केको संतुष्ट करने अथवा दंड भोगने या प्रतिशोधक हर्जाना देनेकी आज्ञा दी। यह मेरे सामनेकी बात है कि सम्राट्ने भरी सभामें लड़केको बुलाकर, हाथमें छड़ी दे, अपने सिरकी शपथ दिला उसको प्रतीकारकी आज्ञा दी और कहा कि जिस प्रकार मैंने तुमको मारा था तू भी मुझको इस समय उसी प्रकारसे मार। लड़केने छड़ी हाथमें लेकर सम्राट्पर इक्कीस बार प्रहार किया जिसमें एक बार तो सम्राट्के सिरसे कुलाह भी गिर पड़ी।

१६—नमाज़

नमाज़पर यह सम्राट् बहुत ज़ोर देता था। जमाअतके साथ नमाज़ न पढ़नेवालेको सम्राट्के आदेशानुसार मृत्युदंड दिया जाता था। इसी अपराधके कारण एक दिन सम्राट्ने नौ मनुष्योंके वधकी आज्ञा दे डाली इनमें एक गायक भी था।

जमाअतके समय बाज़ार इत्यादिमें इधर-उधर घूमने-फिरनेवाले पुरुषोंको पकड़ कर लानेके लिए ही बहुतसे आदमी नियुक्त कर दिये गये थे। इन लोगोंने दीवानख़ानेके द्वारस्थ, घोड़ेकी रखवाली करनेवाले साईसों तकको पकड़ना प्रारंभ कर दिया था।

सम्राट्का आदेश था कि प्रत्येक पुरुष नमाज़की विधि और इसलाम धर्मीय नियमोंको भली भाँति सीखना अपना धर्म समझे। पुरुषोंसे इस सम्बन्धमें प्रश्न भी किये जाते थे और समुचित उत्तर न मिलने पर उनको दंड दिया जाता था। बहुतसे पुरुष नमाज़के मसायल (समस्या) काग़ज़पर लिखवा कर बाज़ारमें याद करते दिखाई देते थे।

२०—शरअकी आज्ञाओंका पालन

शरअकी आज्ञाओंके पालनमें भी सम्राट्की बड़ी कड़ी ताकीद थी। सम्राट्के भाई मुबारक ख़ाँको आदेश था कि वह काज़ीके साथ बैठ कर न्याय करानेमें सहायता करे। सम्राट्को आज्ञानुसार काज़ीकी मसनद भी सम्राट्की मसनदकी भाँति एक ऊँचे बुर्ज़में लगायी जाती थी। मुबारक ख़ाँ क़ाज़ीकी दाहिनी ओर बैठता था। किसी महान् व्यक्तिपर दोषारोपण होने पर मुबारकख़ाँ अपने सैनिकों द्वारा उस अमीरको बुलवा कर क़ाज़ीसे न्याय कराता था।

२१—न्याय दरबार

हिजरी सन् ७४१ में सम्राट्ने ज़कात और उश्रके अतिरिक्त सब कर[1] और दंड आदेश द्वारा उठा लिये।

(१) फ़ीरोज़ शाह सम्राट्ने भी उन करोंकी सूची दी है जिनका धर्म-ग्रंथोंमें वर्णन नहीं है। फ़तूहाते-फ़ीरोज़शाही नामक पुस्तकमें सम्राट्

न्याय करनेके लिए स्वयं सम्राट् सोम तथा बृहस्पतिवार-को दीवानख़ानेके सामनेवाले मैदानमें बैठा करता था। इस समय उसके सम्मुख अमीर हाजिब, ख़ास (विशेष) हाजिब, सय्यद उल हिजाब और अशरफ़ उल हिजाब—केवल यही चार व्यक्ति होते थे। प्रत्येक जनसाधारणको इन दिनोंमें अपनी कष्ट-कथा वर्णन करनेकी आज्ञा थी। इन कष्टोंको लिखनेके लिए चार अमीर (जिनमें चतुर्थ इसके चचाका पुत्र मुल्क फीरोज था) चार द्वारोंपर नियत रहते थे। प्रथम द्वारस्थ अमीर यदि आरोपीकी शिकायत लिख ले तो ठीक, वरना वह द्वितीय द्वारपर जाता था और उसके अस्वीकार करने पर तृतीय और चतुर्थ द्वारपर और उनके भी अस्वी-कार कर देने पर आरोपी सदरे जहाँ क़ाज़ी-उल-कुज्जातके पास जाता था और उसके भी अस्वीकार कर देने पर उसको सम्राट्की सेवामें उपस्थित होनेकी आज्ञा मिलती थी।

इस बातका विश्वास हो जाने पर कि इन व्यक्तियोंने आरोपीकी शिकायत वास्तवमें नहीं लिखी, सम्राट् उनकी प्रतारणा करता था।

लेखबद्ध शिकायतें सम्राट्की सेवामें भेज दी जाती थीं और वह इशा (रात्रिके ८ बजेकी नमाज़) के पश्चात् इनको स्वयं पढ़ता था।

इस प्रकार लिखता है कि बहुतसे कर ऐसे भी थे जो अन्यायके कारण न्याय-संगत मान लिये गये थे और इनके कारण प्रजाको अत्यंत पीड़ा पहुँचती थी, उदाहरणार्थ—चराई, पुष्प-विक्रय, रंगरेजीका कार्य, मत्स्य-विक्रय, धुनेका कार्य, रस्सी बनानेका कार्य, भड़भूजा, मद्य-विक्रय, कोतवालीका कर। इन असंगत करोंको मैंने उठा लिया।

जक़ात व उश्र—इनकी व्याख्या पहले हो चुकी है।

२२—दुर्भिक्षमें जनताकी सहायता व पालन

भारतवर्ष और सिन्धु प्रान्तमें दुर्भिक्ष पड़नेके कारण जब एक मन गेहूँ छः[1] दीनारमें बिकने लगे तो सम्राट्ने दिल्लीके

(१) फ़रिश्ता तथा बदाऊनीके अनुसार हिजरी सन् ७४२ में सय्यद अहमदशाह गवर्नर (माअबर—कर्नाटक) का विद्रोह शान्त करनेके लिए, सम्राट्के दक्षिण ओर कुछ एक पड़ाव पहुँचते ही यह दुर्भिक्ष प्रारम्भ हो गया था। सम्राट्के दक्षिणसे लौटते समय तक जनता इस कराल अकालके चंगुलमें जकड़ी हुई थी।

सम्राट्के राजत्वकालमें इसके अतिरिक्त एक बार और हि० स० ७४८ में, जब वह 'तग़ी'का विद्रोह शांत करने गुजरातकी ओर गया था, घोर अकाल पड़ा था।

बतूताके अनुसार ६ दीनारके १ मन गेहूँ उस समय बिकते थे। दीनारका पैमाना तो हम पहले ही दे आये हैं (नोट-अध्याय १, पृष्ठ १९ देखिये) यहाँपर केवल मनकी व्याख्या की जाती है जिससे पाठक सुगमतापूर्वक अन्दाज़ा लगा लें कि १४ वीं शताब्दीमें दुर्भिक्षके समय भारतीय जनताकी क्या दशा थी। परन्तु विविध व्यवसायियोंकी पूरी आय ठीक ठीक न जान सकनेके कारण यह विषय निर्भ्रांत रूपसे नहीं सिद्ध किया जा सकता। जो कुछ सामग्री उपलब्ध है उसीपर संतोष करना पड़ता है, अस्तु।

ऐसा प्रतीत होता है कि इब्नबतूताने दिल्लीके रतल (अर्थात् १ मन) को मिश्र देशके २५ रतलके तुल्य माना है, और इसी गणनानुसार बतूताके फ्रेञ्च अनुवादकोंने एक मनकी तौल २९$\frac{3}{4}$ पौण्ड अर्थात् १४ पक्के सेर मानी है। मसालिक उल अबसारका लेखक दिल्लीके सेरका वज़न ७० मिशक़ाल बताता है। यदि हम एक मिशक़ाल ४॥ माशेका मानें तो एक सेर २९ तोले २ माशेका, और एक मन १२ सेर ८ छटांकका होगा।

छोटे-बड़े, स्वाधीन-दास, सबको डेढ़ रतल (पश्चिमीय) प्रति दिनके हिसाबसे छः मास तकका अनाज सरकारी गोदामसे देनेकी आज्ञा दी।

क़ाज़ी और धर्माचार्य प्रत्येक मुहल्लेकी सूची बना लोगोंको उपस्थित करते थे और उनको छः छः मासका अन्न सरकारी गोदामोंसे मिल जाता था।

२३—वधाज्ञाएँ

यहाँ तक तो मैंने सम्राट्की सत्कार-शीलता, न्याय-प्रियता, प्रजावत्सलता और दयाशीलता आदि अपूर्व एवं श्रेष्ठ गुणोंका वर्णन किया है। परंतु यह सब बातें होते हुए भी सम्राट्को

इसके विरुद्ध बाबर सम्राट्के कथनानुसार यदि १ मिशक़ाल ५ माशेका माना जाय तो एक १ मनका वज़न १४ सेर ९ छटांक २ तोले होगा। भारतवर्षमें १९ वीं शताब्दीके अंततक कच्चे मनका वज़न १२॥ सेरसे लेकर १८ पक्के सेर तक होता था। अब भी प्रायः ज़िले-ज़िलेका सेर पृथक है और बृटिश गवर्मेंटके बहुत प्रयत्न करने पर भी मापकी एकता सर्वत्र प्रचलित नहीं हुई है। यदि मुहम्मद तुग़लक़के समयके १ मनका वजन आजकलके पक्के १४ सेर ८ छटांक समझा जाय (और यही अधिक ठीक भी प्रतीत होता है) तो १ दीनारका उस समय लगभग २ सेर सात छटांक अनाज आता होगा। दूसरी विधिसे गणना करनेपर भी पौने आठ रुपयेका १४ सेर ८ छटांक अनाज आता है अर्थात् १ रुपयेका कुछ कम दो सेर। फरिश्ताके अनुसार भी १ सेर (तत्कालीन) का मूल्य ५६ जेतल अर्थात् चार आना अर्थात् १० रु० का १ मन और इस प्रकार गणना करनेपर भी १ रुपयेका लगभग १॥ सेर (पक्का) अनाजका भाव आता है।

अब यहाँ पाठकोंकी जानकारीके लिए भिन्न भिन्न सम्राटोंके समयका अनाजका भाव दे दिया जाता है—

रुधिर बहाना अत्यंत प्रिय था। इस नृशंस कार्यमें भी उसको

	सम्राट् अलाउद्दीन खिलजीका समय	सम्राट् मुहम्मद शाह तुग़लकका समय	सम्राट् मुहम्मद फीरोजशाहका समय	मुगल सम्राट् अकबरका समय
गेहूँ	१ मन ७$\frac{1}{2}$ जेतल	१ मन १२ जेतल	१ मन ८ जेतल	१ मन १२ दाम
जौ	„ ४ „	„ ८ „	„ ४ जेतल	„ ८ दाम
धान (चावल)	„ ५ „	„ १५ „		„ २० दाम
उर्द	„ ५ „			„ १६ दाम
चना	„ ५ „	„ ४ „	१ मन ४ जेतल	कृष्ण १ मन ८ दाम
मौठ	„ ३ „			
	१ सेर १$\frac{1}{2}$ जेतल (फरिश्ताके आधार पर)			१ मन १२ दाम
	„ $\frac{1}{2}$ „ (फरिश्ताके आधार पर)			१ मन ५६ दाम
घी	„ $\frac{1}{2}$ „ (फरिश्ताके आधार पर)		१ सेर २$\frac{1}{2}$ जेतल	१ मन १०५ दाम
तिलका तेल	„ $\frac{1}{3}$ „ (फरिश्ताके आधार पर)			१ मन ७० दाम
नमक	„ $\frac{1}{5}$ „ (फरिश्ताके आधार पर)			„ १६ दाम
भेड़		१ भेड़ १ टंक (रुपया)		१ भेड़ १$\frac{1}{2}$ से २ रु. तक
बैल		१ बैल २ टंक (रुपया)		
दलिया			१ मन ४ जेतल	
खाँड़		१ मन १ टंक (श्वेत)	१ सेर ३$\frac{1}{2}$ जेतल	१ मन १२८ दाम
मिश्री		१ मन १$\frac{1}{8}$ टंक (श्वेत)		
मूँग				१ मन १८ दाम

नोट—१ जेतल आधुनिक १ पैसेके बराबार होता था। अकबरके समय १ रुपयेमें ४० दाम आते थे, और मन २६ सेर ३$\frac{1}{2}$ छटाँक (आधुनिक) का था अर्थात् १ सेर ५२ तोले २ माशे २ रत्तीके बराबर होता था।

इतना साहस था कि ऐसा कोई दिवस कठिनतासे ही बीतता था जब द्वारके संमुख किसी पुरुषका वध न होता हो। मनुष्यों-के शव बहुधा द्वारपर पड़े रहते थे। एक दिनकी बात है कि राज-भवन जाते हुए मार्गमें मेरा घोड़ा किसी श्वेत पदार्थको देखकर चमका। कारण पूछनेपर साथीने मुझे बताया कि यह किसी पुरुषका वक्षःस्थल था। इसके तीन टुकड़े कर दिये गये थे। सम्राट् छोटे बड़े अपराधोंपर एकसा ही दंड देता था; न विद्वानोंकी रियायत करता था और न कुलीन अथवा सच्च-रित्रोंके साथ कुछ कमी। सम्राट्की आज्ञानुसार दीवानख़ानेमें प्रत्येक दिन हथकड़ी-बेड़ी धारण किये सैकड़ों क़ैदी उपस्थित किये जाते थे। किसीका वध होता था, किसीको कठिन दंड भोगना पड़ता था और कोई पीटपाट कर ही छोड़ दिया जाता था। केवल शुक्रवारके दिन इनकी छुट्टी रहती थी; यह दिवस कैदियोंके नहाने, हजामत बनाने और विश्राम करनेका था। इससे परमेश्वर सबकी रक्षा करे!

२४—भ्रातृ-वध

मसूदख़ाँ सम्राट्का भ्राता था। इसकी माता सम्राट् अला-उद्दीनकी पुत्री थी। इसके समान सुन्दर पुरुष मैंने अन्यत्र नहीं देखा। इसपर विद्रोहका अपराध लगाया गया। प्रश्न किये जानेपर इसने दण्डके भयसे अपराध स्वीकार कर लिया क्योंकि यह भलीभाँति जानता था कि ऐसे अपराधोंको अस्वी-कार करने पर अपराधीको भाँति भाँतिसे पीड़ा दी जाती है। ऐसी दशामें एक बार ही मृत्युका आलिंगन कर लेना इसने कहीं अधिक सुगम समझा।

अपराध स्वीकार करते ही सम्राट्ने चौक बाज़ारमें ले

जाकर इसका वध करनेकी आज्ञा दे दी। वध हो जानेके पश्चात् तीन दिवस पर्य्यन्त इसका शव उसी स्थानपर पड़ा रहा। इसकी माताको भी, पुंश्चली होना स्वीकार करनेके कारण, क़ाज़ी कमाल-उद्दीनने इसी स्थानपर संगसार[1] किया था।

एक बार इसी सम्राट्ने पहाड़ी हिन्दुओंका सामना करनेके लिए मलिक 'यूसुफ़ बुग़रा' की अध्यक्षतामें एक सेना भेजी। यूसुफ़ नगरसे बाहर निकला ही था कि साढ़े तीन सौ सैनिक छिपकर पीछे रह गये और अपने अपने घर चले आये। जब सरदारने इसकी शिकायत सम्राट्को लिख कर भेजी तो उसने गली गलीसे इन भगोड़ोंको ढूँढ़ कर पकड़वा मँगाया। फल यह हुआ कि पकड़े जानेपर इन साढ़े तीन सौ पुरुषोंका एक ही स्थानपर वध कर दिया गया।

२५—शैख़ शहाब-उद्दीनका वध

खुरासान-निवासी शैख़ शहाब-उद्दीन बिन (पुत्र) शैख़ अहमदजाम[2] विद्वान् और श्रेष्ठ शैख़ समझे जाते थे। यह चौदह-चौदह दिवस तक निरन्तर उपवास किया करते थे।

---

१ संगसार—पत्थरकी चोटसे मार डालनेको कहते हैं। अभी हालमें, कुछ ही वर्ष हुए कि अफ़ग़ानिस्तानके क़ादियानी संप्रदायके मुसलमान मुल्ला इसी प्रकार पत्थरकी चोटसे मार डाले गये थे।

२ अहमदजाम—शैख़ महाशयके पिता अपने समयके बड़े उद्भट विद्वान् थे। लाखों पुरुषोंने इनकी शिष्यता स्वीकार की थी। सम्राट् अकबरकी माता 'हमीदाबानू बेगम' इन्हीं शैख़की वंशजा थी। इनके पुत्र शहाब-उद्दीन भी बड़े महात्मा थे। निज़ाम-उद्दीन औलियासे अन्यमनस्क एवं अप्रसन्न रहनेवाले कुतुब-उद्दीन खिलजी और ग़यास-उद्दीन तुगलक़ सरीखे दिल्ली-सम्राट् भी इन शैख़ महाशयको बड़ी पूज्य दृष्टिसे देखते थे।

सुलतान क़ुतुब-उद्दीन और तुग़लक़ दोनों ही इनके दर्शनार्थ जाते और इनके आशीर्वादके लिए लालायित रहा करते थे। परन्तु सम्राट् मुहम्मद शाहने सिंहासनारूढ़ होते ही, यह तर्क करके कि प्रथम चार खलीफ़ा विद्वान् तथा सच्चरित्र पुरुषोंके अतिरिक्त किसी अन्यको सेवामें न रखते थे, इन शैख़ तथा विद्वान्से भी निजी सेवा लेनी चाही[1]। परन्तु शैख़ शहाब-उद्दीनने ऐसा करना अस्वीकार कर दिया। भरे राज-दर्बारमें सम्राट्ने जब इनसे स्वयं कहा तब भी इन्होंने स्वीकार नहीं किया। इसपर उसने अत्यन्त क्रुद्ध हो शैख़ ज़िया-उद्दीन समनानीको शैख़ शहाब-उद्दीनकी दाढ़ीके बाल नोचनेकी आज्ञा दी। जब ज़िया-उद्दीनने ऐसा काम न करना चाहा तो सम्राट्ने इन दोनोंकी दाढ़ी नोचनेकी आज्ञा दे दी। सम्राट्की आज्ञाका तुरन्त पालन किया गया। इसके उपरान्त उसने ज़िया-उद्दीनको तैलिंगानाकी ओर निर्वासित कर दिया परन्तु कुछ काल पश्चात् उसको वारिंगलका क़ाज़ी नियत कर दिया, और वहीं उसका देहान्त होगया।

शैख़ शहाबउद्दीनको सात वर्ष तक दौलताबादमें रखा,

---

१ फ़रिश्ताका कथन है कि जनताको अत्यंत पीड़ित करने और अत्यधिक वधाज्ञाएँ देनेके कारण यह सम्राट् रुधिरकी नदियाँ बहानेवाला प्रसिद्ध हो गया था। इसका स्वभाव ऐसा बुरा था कि इसने साधु-संतों तकसे भी अपनी सेवा करा डाली। किसीको फल-ताम्बूल खिलाना पड़ता था तो किसीको (सम्राट्की) पगड़ी बाँधनी पड़ती थी। चिराग़े दिल्ली शैख़ नसीरउद्दीनसे भी सम्राट्ने वस्त्र पहिनानेकी सेवा करनेको कहा। शैख़के अस्वीकार करनेपर सम्राट्ने क्रोधमें आ उनको बंदीगृहमें डाल दिया। अंतमें दुःख पाकर अपने गुरुकी बात यादकर शैख़ने यह सेवा करनी स्वीकार कर ली और बंदी-गृहसे छूटे।

और इसके पश्चात् उनको फिर बुला, आदर-सत्कार कर, विद्वानोंसे शेष-कर वसूल करनेवाले महकमेका दीवान नियत कर दिया और पुनः उनकी मान-मर्यादाकी वृद्धि भी की। इस समय अमीरोंको शैख़ महाशयकी वंदना करने तथा उन्हींकी आज्ञाका पालन करनेका आदेश सम्राट्की ओरसे होगया था यहाँ तक कि स्वयं सम्राट्के गृहमें भी किसी व्यक्तिका पद उनसे ऊँचा न था।

जिस समय सम्राट्ने गंगा नदीके तटपर 'सर्गद्वारह' (स्वर्गद्वार) नामक नया महल अपने निवासार्थ निर्माण कराया और अन्य पुरुषोंको भी वहीं गृह बनानेकी आज्ञा दी तो शैख़ शहाबउद्दीनके दिल्लीमें ही रहनेकी अनुमति चाहनेपर सम्राट्ने उनको वहीं रहनेकी आज्ञा दे दी और नगरसे छः मीलकी दूरीपर एक खूब विस्तृत ऊसर भू-भाग उनको प्रदान कर दिया।

शहाबउद्दीनने यहाँपर एक बड़ी गुफ़ा खोद उसीके भीतर गृह, गोदाम, तनूर (रोटी बनानेका चूल्हा विशेष), स्नानागार और अनेक प्रकारकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए विविध प्रकारके गृह निर्माण किये और यमुना नदीसे नहर काट कर धरतीको भी बसा दिया। दुर्भिक्षके कारण अनाजकी आयसे भी शैख़को उस समय बड़ा लाभ हुआ। ढाई वर्ष पर्यन्त—जब तक सम्राट् दिल्लीसे बाहर रहा—शैख़ शहाबउद्दीन इसी गुफ़ामें निवास करते रहे। दिन भर तो इनके भृत्यादि जोतने-बोने इत्यादिका कार्य करते थे, रात होनेपर, आसपासकी पहाड़ियोंके चोरोंके भयसे ढोरों सहित गुफ़ाके भीतर आ द्वार बन्द कर लेते थे।

सम्राट्के राजधानी लौटनेपर शैख़ सात मील आगे बढ़

कर उनकी अभ्यर्थना करने गये। सम्राट्ने भी अत्यन्त आदर-सत्कार कर उनको गले लगाया। इसके पश्चात् शैख़ फिर अपनी गुफ़ाको लौट गये।

कुछ दिन बीतनेपर सम्राट्ने फिर शैख़ महाशयको बुलवाया परन्तु वह न आये। इसपर सम्राट्ने मुख़लिस-उल-मुल्क नँदरबारी नामक एक महान् अमीरको उनके पास भेजा। उन्होंने बहुत ही नम्रतापूर्वक वार्त्तालाप कर सम्राट्के भयंकर कोपसे भी शैख़को विचलित करना चाहा परन्तु शैख़ने यह कह दिया कि मैं अब इस अन्यायी सम्राट्की सेवा कदापि न करूँगा[1]। मुख़लिस उल मुल्कने लौट कर सम्राट्को शैख़का संदेश जा सुनाया। यह सुनकर सम्राट्ने शैख़को पकड़ लानेकी आज्ञा दी। जब शैख़ राज-दरबारमें पकड़ कर लाये गये तो सम्राट्ने उनसे पूछा 'तू मुझे अन्यायी कहता है?' शैख़ने कहा "हाँ, तू अन्यायी है और तूने अमुक अमुक कार्य अन्यायसे किये हैं।" शैख़ने दिल्ली उजाड़ने और वहाँके निवासियोंके दौलताबाद जानेका भी वर्णन किया। सम्राट्ने अपनी तलवार

(१) बदाउनी लिखता है कि एक बार सम्राट् जूता पहिन स्वयं काज़ी उलकुज़्ज़ात जमालुद्दीनके इजलासमें जा खड़ा हुआ और कहने लगा कि शैख़का पुत्र जाम मुझको अन्यायी और क्रूर कहता है, उसको बुलाकर यथार्थ निर्णय कीजिये। शैख़-पुत्रने आकर कहा कि जिन पुरुषोंका न्याय अथवा अन्यायसे आप वध करते हैं उनका पुण्य या पाप तो श्रीमान् जानें परन्तु उनके कुटुम्बियों अर्थात् स्त्री-पुत्रादिका किस धर्मानुसार दंड होता है? इसपर सम्राट् चुप हो रहा और पुनः यह कहने लगा कि शैख़-पुत्र लोहेके पिंजरेमें बंदकर दिया जाय। समस्त दौलताबादकी यात्रामें यह शैख़-पुत्र इसी प्रकारसे पिंजरेमें बंद रहा और फिर दिल्ली लौटनेपर सम्राट्ने इसके तनके दो टुकड़े कर डाले।

निकाल सद्रे-जहाँके हाथमें देकर कहा कि अन्यायी सिद्ध होने-पर मेरी गर्दन तलवारसे उड़ा देना। शैख़ने यह सुनकर कहा कि जो पुरुष तेरे ऊपर अन्यायी होनेकी साक्षी देगा उसका भी वध किया जायगा। तू स्वयं अच्छी तरह जानता है कि तू अन्यायी है। सम्राट्ने यह उत्तर सुन शैख़को 'मलिक नक़बह दवादार"[1] के हवाले कर दिया और उसने उनके पैरोंमें चार बेड़ियाँ और हाथोंमें हथकड़ियाँ डाल दीं। चौदह दिन पर्यन्त शैख़ने कुछ भोजन तथा पान नहीं किया। प्रत्येक दिन उनको दीवानख़ानेमें धर्माचार्यों तथा शैख़ोंके संमुख लाकर अपना कथन लौटानेको कहा जाता था, परन्तु शैख़ सदा अस्वीकार कर शहीदों (अर्थात् धर्मपर प्राण देनेवालों) में सम्मिलित होना चाहते थे।

चौदहवें दिन सम्राट्ने मुख़लिस-उल-मुल्क द्वारा शैख़के पास भोजन भिजवाया परंतु उन्होंने यह कहकर कि मेरा भोजन अब संसारसे उठ गया, भोजन करना अस्वीकार कर दिया और सम्राट्के पास लौटा दिया। यह सूचना मिलनेपर

(१) दवादार—राजभवन संबंधी कुछ पदोंका विवरण, जिनका इस पुस्तकमें वर्णन है, हम यहां पाठकोंकी सुविधाके लिए दिए देते हैं।

दवादार अर्थात् दवात-दार—सम्राट्की दवातका संरक्षक होता था।

मुहरदार—सम्राट्की मुहर रखता था।

शरबदार—सम्राट्के पानके लिए जल, शर्बत इत्यादिका प्रबंधकर्त्ता होता था।

ख़रीतेदार—क़लमदान, क़ाग़ज़ रखता था।

चाशनगर—दस्तरख़्वानपर लानेसे प्रथम प्रत्येक भोजनको चखने तथा अपनी देख-रेखमें वहां लानेवाला।

सम्राट्ने शैख़को पांच असतार[1] (ढाईरतल पश्चिमी) गोवर खिलानेकी आज्ञा दी। यह काम क़ाफ़िरों (हिंदुओं) से कराया जाता है। इन्होंने सम्राट्की आज्ञाका पालन करानेके लिए शैख़को ऊर्ध्व मुख लिटा सँड़ासियोंसे मुख खोल, पानीमें घुला हुआ गोवर उनको वलपूर्वक पिलाया। दूसरे दिन शैख़को क़ाज़ी सदरेजहाँके पास लेगये। समस्त मौलवियों, शैख़ों और परदेशियोंने वहाँ उनसे अपने शब्द लौटानेको कहा परन्तु इन्होंने ऐसा करना स्वीकार न किया; अतएव उनका सिर काट दिया गया। परमेश्वर उनपर अपनी कृपा रखे !

२६—धर्मशास्त्रज्ञाता अफ़ीफ़उद्दीन काशानीका वध

दुर्भिक्षके दिनोंमें सम्राट्की आज्ञासे राजधानीके वाहर कूप खुदवाकर; उनके द्वारा खेती करायी गयी। खेतीके लिए बीज तथा अन्य आवश्यक पदार्थ सर्कारकी ओरसे मिलते थे और लोगोंकी अनिच्छा होते हुए भी उनसे वलपूर्वक खेती कराकर सारी पैदावार सर्कारी गोदामोंमें भरी जाती थी।

अफ़ीफ़-उद्दीनने सूचना मिलनेपर ऐसी खेतीसे कोई लाभ न वताया। इनके इस कथनकी सूचना भी किसीने सम्राट्को दे दी। इसपर उसने इनको यह कहकर वंदी कर लिया कि शासन संवंधी वातोंमें तू क्यों अपनी सम्मति देता और अड़-चनें डालता है।

(१) असतार—एक माप था जो ४ अशकालके वरावर होता था। अशकाल साढ़े चार माशेका होता है; इस गणनानुसार एक असतार २० माशे २ रत्तीके वरावर हुआ और ५ असतार ८ तोले ५ माशेके वरावर; परन्तु इब्नबतूता यहां १ असतारको २½ पश्चिमीय रतलके वरावर वताता है, और पश्चिमीय रतल साधारण रतलसे एक रुवह अधिक होता है।

कुछ दिन बीत जानेपर सम्राट्ने इनको छोड़ दिया और यह अपने घरकी ओर चल दिये। राहमें इनके दो धर्मशास्त्रज्ञ मित्र मिले। उन्होंने इनके छुटकारेपर ईश्वरको अनेक धन्यवाद दिये। इसपर इन्होंने उत्तरमें यह कहा कि वास्तवमें ईश्वरको अनेक धन्यवाद हैं कि उसने मुझे अन्यायियोंसे इस प्रकार छुटकारा दिया। इतना वार्तालाप हो जानेके पश्चात् अफ़ीफ़-उद्दीन अपने गृह आगये और वे दोनों अपने अपने घर चले गये। सम्राट्ने इन बातोंकी सूचना पाते ही तीनोंको अपने संमुख उपस्थित किये जानेकी आज्ञा दी। तीनों व्यक्तियोंके संमुख उपस्थित होनेपर अफ़ीफ़उद्दीनके शरीरके दो भाग किये जाने और उन दोनोंकी गर्दन मारनेका आदेश हुआ। इसपर उन दोनोंने सम्राट्से प्रश्न किया कि अफ़ीफ़-उद्दीनने तो आपको अन्यायी कहा था परन्तु हमने क्या किया है जो वध किये जानेका आदेश किया जाता है। सम्राट्ने इसपर यह उत्तर दिया कि इसके कथनका विरोध न कर तुमने एक प्रकारसे इसका समर्थन ही किया है। फलतः तीनों व्यक्तियोंका वध कर दिया गया। परमेश्वर उनपर कृपा करे।

२७—दो सिन्धु-निवासी मौलवियोंका वध

सिन्धु-प्रान्तवासी दो मौलवी सम्राट्के सेवक थे। एक बार सम्राट्ने एक अमीरको किसी प्रान्तका हाकिम (गवर्नर) बनाकर भेजा और इन दोनों मौलवियोंको यह कहकर उसके साथ भेजा कि उस प्रान्तकी जनताको मैं तुम दोनोंके ऊपर ही छोड़ रहा हूँ। यह अमीर तुम्हारे कथनानुसार ही शासन करेगा। इसपर इन दोनोंने यह उत्तर दिया कि हम दोनों उसके समस्त कार्यके साक्षी रहेंगे और उसको सदा सत्य मार्ग

बताते रहेंगे। मौलवियोंका यह उत्तर सुन सम्राट्ने कहा कि तुम्हारा हृदय ठीक नहीं मालूम पड़ता। दूसरोंकी धन-संपत्ति स्वयं हड़प कर उसका समस्त दोष तुम उस मूर्ख तुर्कके सिरपर मढ़ना चाहते हो। मौलवियोंने कहा—अख़वन्द आलम (संसारके प्रभु), ईश्वरको साक्षी कर कहते हैं कि हमारे मनमें यह बात नहीं है। परन्तु सम्राट् अपनी ही बातपर डटा रहा, और इन दोनों मौलवियोंको शैख़ज़ादह नहावन्दी (नहवन्दके रहनेवाले) के पास ले जानेका आदेश किया।

यह व्यक्ति लोगोंको यंत्रणा देनेके लिए नियत किया गया था। जब दोनों मौलवी इसके सामने लाये गये तो इसने इनसे बहुत समझा कर कहा कि सम्राट् तुम्हारा वध किया चाहता है। जाओ सम्राट्का कथन स्वीकार कर अपनी देहको इन यंत्रणाओंसे बचाओ। परन्तु ये दोनों यही कहते रहे कि हमारे मनमें तो वही था जो हमने सम्राट्से निवेदन किया है। मौलवियोंका यह उत्तर सुन शैख़ज़ादहने अपने नौकरोंको इन्हें यन्त्रणाओंका कुछ कुछ सुख दिखलानेको आज्ञा दी। आज्ञा होते ही ऊर्ध्वमुख लिटा इनके वक्षःस्थलोंपर तप्त लोहेकी शिला रखकर उठा ली गयी जिससे इनकी त्वचा तक चिमटी हुई ऊपर चली आयी, और इनके घावोंपर मूत्र मिश्रित राख डाल दी गयी। अब मौलवियोंने स्वीकार कर लिया कि जो सम्राट् कह रहा था वही बात हमारे मनमें थी। हम अपराधी हैं और वध किये जानेके योग्य हैं।

मौलवियोंकी स्वीकारोक्ति उन्हींसे पत्रपर लिखवा कर क़ाज़ीके पास तसदीक़ करनेके लिए भेज दी गयी[1]। क़ाज़ीने

(१) जनताका इस प्रकार वध करनेपर भी सम्राट् वधसे प्रथम

भी अपनी मुहर लगा अपने हाथसे उसपर यह लिख दिया कि बिना किसीके बलप्रयोग अथवा दबावके इन दोनोंने यह पत्र लिखा है। (यदि यह लोग क़ाज़ीके संमुख यह कह देते कि यह स्वीकार पत्र बलप्रयोग कर हमसे लिखाया गया है तो इनको और भी विविध प्रकारकी यन्त्रणाएँ दी जातीं, जिनसे मृत्यु कहीं अधिक श्रेष्ठ थी।)

क़ाज़ीकी तसदीक हो जाने पर इन दोनोंका वध कर दिया गया (परमेश्वर इनपर कृपा करे)।

२८—शैख़ हूदका वध

शैख़ज़ादह हूद, रुक्न-उद्दीन मुलतानीका पोता था। सम्राट् शैख़ रुक्न-उद्दीन कुरैशी तथा उनके भ्राता इमाद-उद्दीन-का बहुत ही मान-सत्कार करता था।

इमाद उद्दीनका रूप सम्राट्से बहुत कुछ मिलता था और इसी कारण किशलू खाँके युद्धके समय शत्रुओंने सम्राट्के

सदैव मौलवियोंका आदेश प्राप्त कर लेता था। बदाऊनीके कथनानुसार ४ मुफ्ती सम्राट्-भवनमें इस कार्यके लिए सदैव रहा करते थे। सम्राट्की उनपर भी सदा यही ताकीद थी कि सर्वदा सत्य ही निर्णय करें, अन्यथा मनुष्योंके दण्डका पाप उन्हींपर रहेगा। बहुत वादानुवादके पश्चात् यदि अभियुक्त दोषी ठहरता तो आधी रात बीत जानेपर भी तुरन्त उसका वध कर दिया जाता था, परन्तु इसके विरुद्ध यदि सम्राट्के सिर कोई बात आती तो निर्णय अनिश्चित समयके लिए स्थगित कर दिया जाता था। इस बीचमें सम्राट् उत्तर सोचता था और तिथि नियत होनेपर पुनः स्वयं वादानुवाद करता था। मुफ्तियोंके उत्तर न दे सकने पर अभि-युक्तका तुरंत वध कर दिया जाता था और उनके उत्तर दे देनेपर वह निर्दोष कहकर छोड़ दिया जाता था।

धोखेमें इमाद-उद्दीनको पकड़ कर मार डाला। इमाद-उद्दीनके वधके उपरान्त सम्राट्ने उसके भाई शैख़ रुक्न-उद्दीनको, सौ गाँव जागीरमें दे, उनकी आय मठके क्षेत्रमें व्यय करनेकी आज्ञा दी। रुक्न-उद्दीनकी मृत्युके उपरान्त उनका पोता शैख़हूद उनकी वसीयतके अनुसार मठाधीश (मुतवल्ली) नियत हुआ।

परन्तु शैख़ रुक्न-उद्दीनके एक भतीजेने इस वसीयतका घोर विरोध कर अपनेको इस पदका न्याय्य अधिकारी बताया। विरोधके कारण, दोनों सम्राट्के पास दौलताबाद गये। यह नगर मुलतानसे अस्सी पड़ावकी दूरीपर है। शैख़-की वसीयतके अनुसार सम्राट्ने हूदको ही सज्जादा-नशीन नियत किया। शैख़ हूद वैसे भी परिपक्वावस्थाका था, उसके संमुख उसका भतीजा नितांत युवा था।

सम्राटकी आज्ञानुसार शैख़ हूदकी खूब अभ्यर्थना की गयी। प्रत्येक पड़ावपर सम्राट्की ओरसे उसको भोज दिया जाता था और राहके नगरोंके हाकिम (गवर्नर) और शैख़ आदि सम्राट्के आदेशानुसार उसके सत्कारार्थ अगवानीको आते थे। राजधानी पहुँचनेपर नगरके समस्त मौलवी, शैख़ तथा क़ाज़ी उसकी अभ्यर्थनाके लिए नगरसे बाहर गये। मैं भी इस अवसरपर इन पुरुषोंके साथ था। शैख़ पालकीपर सवार था और उसके घोड़े ख़ाली चल रहे थे। मैंने शैख़को सलाम तो किया परन्तु उसका इस प्रकार पालकीमें बैठ कर चलना मुझको अच्छा न लगा। मैंने कुछ लोगोंसे कहा भी कि इस पुरुषको क़ाज़ी, शैख़ आदि अन्य पुरुषोंके साथ घोड़ेपर चढ़ कर चलना चाहिये। यह बात किसीने जाकर उससे भी कह दी और वह यह कह कर कि दर्दके कारण मैं अब तक

पालकीपर सवार था, घोड़ेपर सवार हो गया। राजधानी पहुँचनेपर उसको सम्राट्की ओरसे एक भोज दिया गया जिसमें काज़ी, मौलवी तथा परदेशी आदि बहुतसे लोग सम्मिलित हुए। भोजकी समाप्ति पर प्रत्येक पुरुषको उसके पदानुसार कुछ उपहार भी दिया गया, उदाहरणार्थ क़ाज़ी उल कुज़्ज़ातको पाँचसौ और मुझको ढाईसौ दीनार मिले। (इस देशकी प्रथाके अनुसार सम्राट् द्वारा दिये गये प्रत्येक भोजके उपरान्त इस प्रकार उपहार दिया जाता है।)

इस प्रकार सम्मानित हो शैख़ मुलतान लौट गया। सम्राट्ने इस अवसरपर शैख़ नूर-उद्दीन शीराज़ीको भी उसके साथ वहाँ जाकर उसके दादाके पदपर प्रतिष्ठित करनेको भेजा। सम्मानका अन्त यहीं नहीं हुआ, मुलतान पहुँचने पर भी उसको सम्राट्की ओरसे एक भोज दिया गया। शैख़ कितने ही वर्षों तक सज्जादा-नशीन रहा। एक बार सिन्धु प्रान्तके गवर्नर इमादउल्मुल्कने सम्राट्को कहीं यह लिख दिया कि सज्जादा-नशीन और उसके कुटुम्बी सम्पत्ति बटोर बटोर कर अनुचित रीतिसे व्यय कर रहे हैं और मठमें किसीको रोटी तक नहीं देते। यह समाचार पाते ही सम्राट्ने इसकी कुल सम्पत्ति ज़ब्त करनेकी आज्ञा दे दी।

इमाद-उल-मुल्कने सम्राट्का आदेश होते ही सबको बुला कर किसीका तो. वध किया; और किसीको मारापीटा और इस प्रकारसे कुछ दिनोंतक उससे बीस सहस्र दीनार प्रतिदिनके हिसाबसे वसूल किये, यहाँतक कि उसके पास कुछ भी न रहा।

इसके घरसे भी अपरिमित द्रव्य सम्पत्ति निकली। एक

जोड़ा जूते ही सात सहस्र दीनारके बताये जाते थे। इनपर हीरक, लाल आदि रत्न जड़े हुए थे। कोई इन जूतोंको इसकी पुत्रीके बताता था और कोई इसकी दासीके।

अधिक कष्ट दिये जानेपर शैख़ने तुर्किस्तान भाग जानेका विचार किया; परन्तु एक आदमीने इसको पकड़ लिया। इमाद-उलमुल्कने यह सूचना भी सम्राट्को भेज दी। उसने शैख़ तथा इस आदमीको बाँध कर भेजनेका आदेश किया। राजधानी पहुँचनेपर द्वितीय व्यक्ति तो छोड़ दिया गया परन्तु शैख़से यह प्रश्न करनेपर कि तू कहाँ भागना चाहता था, उसने उत्तर दिया 'मैं तो कहीं भागना नहीं चाहता था'। सम्राट्ने कहा कि तेरा अभिप्राय तुर्किस्तानकी ओर भागनेका था। वहाँ जाकर तू कहता कि मैं बहा-उद्दीन ज़करिया मुलतानीका पुत्र हूँ। सम्राट्ने मेरे साथ ऐसे ऐसे बर्ताव किये हैं; और तुर्कोंको वहाँसे अपनी सहायतामें लाता। इसके उपरांत सम्राट्के इसको गर्दन मारनेकी आज्ञा देनेपर इसका सिर काट लिया गया। परमेश्वर इसपर कृपा करे!

२६—ताजउल आरफ़ीनका वध

संसार-त्यागी, ईश्वर-भक्त शैख़ शम्स-उद्दीन इब्न ताज उल आरफ़ीन कोयल नामक नगरमें रहते थे।

'कोयल' पधारनेपर सम्राट्ने उनको बुला भेजा परन्तु वह न आये। इसपर सम्राट् स्वयं उनके पास गया। जब घरके निकट पँहुचा तो शैख़ कहीं चल दिये। फल यह हुआ कि बादशाहको भेंट उनसे न हुई।

तत्पश्चात् एक बार संयोगवश एक अमीरके राजविद्रोह करनेपर लोगोंने उसकी भक्तिकी शपथ की। इस प्रसंगमें

किसीने सम्राट्से जाकर कह दिया कि एक बार उक्त शैख़ महोदयकी सभामें, किसीके द्वारा उक्त अमीरकी प्रशंसा सुनकर शैख़ महाशयने भी उसका समर्थन कर यह कहा था कि वह तो सम्राट्-पदके योग्य है। यह सुनते ही सम्राट्ने एक अमीरको शैख़ महाशयको पकड़ कर लानेकी आज्ञा दे दी।

बस फिर क्या था? अमीरने न केवल शैख़ और इनके पुत्रोंको बल्कि उस सभामें उपस्थित होनेके कारण कोयलके क़ाज़ी और मुहतसिब (लोगोंकी देखभाल करनेवाला अफ़-सर) को भी जा पकड़ा। सम्राट्ने इन तीनोंको बन्दीगृहमें डालने तथा क़ाज़ी और मुहतसिबकी आँखोंमें सलाई फेरनेकी आज्ञा दी।

शैख़ साहब तो बन्दीगृहमें जा बसे पर क़ाज़ी और मुह-तसिबको प्रत्येक दिन भिक्षा माँगनेके लिए वहाँसे बाहर लाते थे। अब सम्राट्को यह सूचना मिली कि शैख़के पुत्र हिन्दु-ओंसे मेल रखते हैं और विद्रोही हिन्दुओंके पास आते जाते हैं। बन्दीगृहमें शैख़का देहान्त होजाने पर जब उनके पुत्र वहाँसे बाहर लाये गये तो सम्राट्ने उनसे पुनः ऐसा न करनेको कहा परन्तु उन्होंने यही उत्तर दिया कि हमने कुछ नहीं किया है। यह उत्तर सुन सम्राट्को बहुत क्रोध आया और उनके वधकी आज्ञा दे दी। इसके उपरान्त क़ाज़ीको बुलाकर जब इनके साथियोंका नाम पूछा गया तो उसने बहुतसे हिन्दुओंके नाम लिखवा दिये। जब यह नामावली सम्राट्को दिखायी गयी तो उसने कहा कि यह मेरी प्रजाको उजाड़ना चाहता है, इसकी भी गर्दन मारनी चाहिये। इसपर क़ाज़ीका भी वध कर दिया गया।

३०—शैख़ हैदरीका वध

शैख़ अली हैदरी भारतदेशके वन्दरगाह खंभातमें रहा करते थे। इनका माहात्म्य दूर दूर तक प्रसिद्ध था। व्यापारीगण समुद्रमें ही इनके नामकी भेंट मान लिया करते थे और इसके पश्चात् जब वे इनकी वन्दनाको उपस्थित होते तो ध्यानके बलसे यह सब बातें उनपर प्रकट कर देते थे। कभी कभी बहुत अधिक भेंटकी मानता मानकर जब कोई व्यापारी मनमें पछताता हुआ इनके संमुख उपस्थित होता तो शैख़ महोदय बहुधा उसको बता देते थे कि तूने पहिले इतना देनेका विचार किया था और अब इतना देता है। बहुत बार ऐसे प्रसंग आ पड़नेके कारण शैख़ हैदरीकी बड़ी प्रसिद्धि होगयी थी।

क़ाज़ी जलालउद्दीन अफ़ग़ानीके खम्भात देशमें विद्रोह करनेपर, जब सम्राट्को यह सूचना मिली कि शैख़ महोदयने क़ाज़ीके लिए प्रार्थना की है, अपने सिरकी कुलाह (टोपी) उसको प्रदान की है और उसके हाथपर भक्तिकी शपथ की है तो वह स्वयं विद्रोहको शांत करने आया और क़ाज़ीको परास्त किया।

इसके उपरान्त सम्राट्ने शरफ़्-उल्-मुल्क अमीर वख़्तको खम्भातका हाकिम (गवर्नर) नियत कर उसको समस्त विद्रोहियोंके ढूँढ़नेकी आज्ञा दी। हाकिमके साथ कुछ धर्म-शास्त्रके ज्ञाता भी छोड़े गये जिनके व्यवस्था-पत्रोंके अनुसार ही हाकिमको कार्य करना पड़ता था।

शैख़ हैदरी भी हाकिमके संमुख लाये गये और यह बात सिद्ध हो जानेपर कि उन्होंने अपनी पगड़ी क़ाज़ीको दी थी और उसके लिए ईश्वरसे प्रार्थना भी की थी, धर्मशास्त्रज्ञाता-

ओंने उनके वधका व्यवस्थापत्र दे दिया। परन्तु जब वधिकने इनपर खड्गका प्रहार किया तो खड्गके कुंठित हो जानेके कारण लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। जनसाधारणका विश्वास था कि अब शैख़ महोदयको क्षमा प्रदान कर दी जायगी परन्तु वहीं शरफ़्-उल-मुल्कने द्वितीय वधिकको बुलाकर उनका सिर पृथक् करा दिया।

३१—तूग़ान और उसके भ्राताओंका वध

तूग़ान और उसके भ्राता फ़रग़ानाके रईस थे। अपने देशसे चलकर ये सम्राट्के पास आगये थे। उसने इनका बहुत आदर-सत्कार किया। रहते रहते बहुत काल व्यतीत हो जाने पर इन लोगोंने अपने देश लौटनेका विचार किया और यहाँसे भाग जानेको ही थे कि किसीने सम्राट्को इसकी सूचना दे दी। सम्राट्ने यह सुनते ही तत्देशीय प्रथानुसार इनके दो टुकड़े कर समस्त सम्पत्ति सूचना देनेवालेको देदेनेकी आज्ञा दे दी।

३२—इब्ने मलिक उलतुज्जारका वध

मलिक उलतुज्जारका एक युवा पुत्र था। इसकी मसें भी अभी न भीगीं थीं। ऐन-उल मुल्कके विद्रोह करनेपर (जिसका वर्णन अन्यत्र किया जायगा) मलिक उलतुज्जारका पुत्र भी, उसके वंशमें होनेके कारण, विद्रोही दलमें सम्मिलित हो गया। विद्रोह-दमनके उपरान्त जब ऐन-उल-मुल्क अपने मित्रों सहित बंधा हुआ सम्राट्के संमुख उपस्थित किया गया तो उसके साथ मलिक उल तुज्जारका पुत्र और उसका बहनोई कुतुब उलमुल्कका पुत्र भी था। सम्राट्ने इनके हाथ लकड़ीपर बाँध दोनोंको लटकानेकी आज्ञा दे अमीर-पुत्रों द्वारा इन्हें

बाणोंसे विद्ध किये जानेका आदेश दिया, और इस प्रकार इनके प्राणोंका हरण किया गया।

इनकी मृत्युके उपरान्त ख़्वाजा अमीर अली महाशय तबरेज़ीने क़ाज़ी कमाल-उद्दीनसे कहा कि यह युवा वध योग्य न था। सम्राट्को भी इस कथनकी सूचना मिली। फिर क्या था? उसने तुरंत ही ख़्वाजा महाशयको बुलाकर उनसे कहा कि तुमने उसके वधसे प्रथम यह बात क्यों न कही? उनको दो सौ दुर्रे (कोड़े) लगानेकी आज्ञा दे वंदीगृहमें भेज दिया। उनकी समस्त सम्पत्ति भी वधिकोंके अमीर (प्रधान वधिक) को दे दी गयी।

अगले दिन मैंने इसको अमीरअली तबरेज़ीके वस्त्र पहिने, उन्हींकी कुलाह लगाये और उन्हींके घोड़ेपर जाते देखा। इसको दूरसे देखनेपर मुझे अमीरअलीका ही भ्रम होगया था।

कई मासतक वंदीगृहमें रहनेके पश्चात् तबरेज़ी महाशयको सम्राट्ने मुक्तकर पुनः पूर्व पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। परन्तु फिर एक बार क्रोधित हो जानेके कारण इनको ख़ुरासानकी ओर निकाल दिया। जब हिरातमें जा इन्होंने सम्राट्की सेवामें प्रार्थनापत्र भेज कृपा-भिक्षा चाही तो उसने पत्रके पृष्ठपर यह लिख दिया कि 'अगर बाज़ आमदी बाज़ आई' (अगर पश्चात्ताप कर लिया है तो लौट आ)। फलतः अमीर अली पुनः लौट आये।

इसी प्रकार दिल्लीके ख़तीब उल ख़तबाको सम्राट्ने एक बार रत्नादिके कोषकी रक्षा करनेका आदेश दिया था। संयोगवश चोरोंने आकर रात्रिमें कुछ रत्नादि निकाल लिये। इसपर सम्राट्ने ख़तीबको पीटनेकी आज्ञा दी। पिटते पिटते ही उसका प्राणान्त होगया।

३३—सम्राट्का दिल्ली नगरको उजाड़ करना

समस्त दिल्ली-निवासियोंको निर्वासित[1] करनेके कारण सम्राट्की घोर निंदा की जाती है। उसका हेतु यह था कि यहाँकी जनता पत्र लिख, लिफ़ाफेमें बंदकर रात्रिके समय दीवानख़ानेमें डाल जाती थी।

यह पत्र सम्राट्के नाम होते थे और इनके लिफ़ाफोंपर भी सम्राट्के सिरकी सौगंद देकर यह लिख दिया जाता था कि उसके अतिरिक्त कोई पुरुष इनको न खोले। इस कारण

(१) बदाउनीके अनुसार हिजरी सन् ७२७ में सम्राट्ने देवगिरि नामक केन्द्रस्थ नगरमें अपनी राजधानी स्थापित की और इसका नाम परिवर्तन कर दौलताबाद रखा। राजधानी होनेपर सम्राट्, उसकी माता, कुटुम्बी, अमीर-उमरा, धनी-निर्धन, राजकोष, सैन्य इत्यादि सभी दिल्लीसे चलकर वहाँ पहुँच गये। स्थान-परिवर्त्तनके कारण प्रत्येकको दुगुने पारितोषिक और वेतन दिये गये। परन्तु लम्बी यात्रा होनेके कारण बहुत लोगोंको अत्यन्त कष्ट हुआ, यहाँ तक कि बहुतसे दुर्बल व्यक्तियोंका तो राहमें ही प्राणान्त होगया। परन्तु ७२९ हि० में सम्राट्ने यह आज्ञा दे दी थी कि दिल्ली तथा उसके आसपासके रहनेवालोंके गृह मोल ले लिये जायँ और वे सब दौलताबाद चले जायँ। गृह-मूल्यके अतिरिक्त जानेवालोंको राज्यकी ओरसे इनाम भी मिलते थे। दान-दण्ड-की इस रीति द्वारा दौलताबाद ऐसा बसा कि दिल्लीमें कुत्ते और बिल्ली तक जीते न बचे। इसके पश्चात् ७४३ हिजरीमें सम्राट्ने यह आज्ञा निकाल दी कि दौलताबादमें रहना लोगोंकी अपनी अपनी इच्छापर निर्भर है, जिसकी इच्छा हो वहाँ रहे, जिसकी इच्छा न हो वह दिल्ली लौट जाय। इस प्रकारसे भी जब दिल्लीकी बस्ती पूरी नहीं हुई तो पास पड़ोसकी जनताको दिल्लीमें बसनेका आदेश दिया गया।

सम्राट् ही स्वयं इनको खोलकर पढ़ता था। परन्तु इन पत्रोंमें सम्राट्को केवल गालियाँ लिखी होती थीं। इसपर उसने दिल्ली उजाड़नेका विचार कर नगर-निवासियोंके गृह मोल ले उनका पूरा पूरा मूल्य दे दिया और समस्त जनताको दौलताबाद जानेकी आज्ञा दी। जब लोगोंने वहाँ जाना अस्वीकार किया तो उसने मुनादी करा दी कि तीन दिनके पश्चात् नगरमें कोई व्यक्ति न रहे।

बहुतसे लोग तो चले गये पर कुछ अपने घरोंमें ही छिप कर बैठ रहे। अब सम्राट्ने अपने दासोंको नगरमें जाकर यह देखनेकी आज्ञा दी कि कहीं कोई व्यक्ति शेष तो नहीं रह गया है। दासोंको केवल दो व्यक्ति एक कूँचेमें मिले; एक अंधा था और दूसरा लूला। जब ये दोनों पुरुष सम्राट्के संमुख उपस्थित किये गये तो लूलेको तो मंजनीक़से उड़ा देनेकी आज्ञा हुई और अन्धेको दिल्लीसे दौलताबाद तक (जो ४० दिनकी राह है) घसीटकर ले जानेका आदेश हुआ। सम्राट्की आज्ञाका अक्षरशः पालन किया गया और उसका केवल एक पैर दौलताबाद पहुँचा। नगर-निवासी यह दशा देख अपनी अपनी सम्पत्ति छोड़ निकल भागे और नगर सुनसान होगया।

एक विश्वसनीय व्यक्ति मुझसे कहता था कि सम्राट्ने जब एक रात महलकी छतपरसे नगरकी ओर देखा तो न कहीं अग्नि थी, न धुआँ था, और न प्रदीप। ऐसा भयंकर दृश्य देख सम्राट्ने कहा कि अब मेरा हृदय शीतल हुआ।

तत्पश्चात् उसने दिल्ली निवासियोंको पुनः लौटनेका आदेश दिया। फल यह हुआ कि अन्य नगरोंके ऊजड़ होनेपर भी दिल्ली अच्छी तरह न बसा। हमारे नगर-प्रवेशके समय तक नगर में वास्तवमें बस्ती न थी। कहीं कहीं कोई गृह बसा हुआ था।

अब हम इस सम्राट्के शासनकी प्रधान घटनाओंका वर्णन करेंगे।

छठाँ अध्याय

प्रसिद्ध घटनाएँ

१—ग़यास-उद्दीन बहादुर-भौंरा

पिताकी मृत्युके पश्चात् सम्राट्के सिंहासनारूढ़ होने पर लोगोंने उसकी राजभक्तिकी शपथ ली। इस अवसरपर ग़यास-उद्दीन भौंरा भी सम्राट्के सामने उपस्थित किया गया। इसको सम्राट्के पिता ग़यास-उद्दीन तुग़लक़ने बंदीगृहमें डाल दिया था। परन्तु सम्राट्ने कृपाकर, इसको बन्दीगृहसे निकाल, हाथी, घोड़े, धन और संपत्ति दे, अपने भतीजे इब्राहीम ख़ाँके साथ विदा करनेकी आज्ञा दे दी; और इससे यह वचन ले लिया कि दोनों व्यक्ति मिलकर राज्य-शासन करेंगे, सिक्कोंपर दोनोंका ही नाम भविष्यमें लिखा जायगा और ख़तबा भी दोनोंके ही नामका पढ़ा जायगा। इसके अतिरिक्त ग़यास-उद्दीनको अपने पुत्र मुहम्मदको (जो उस समय परवातके नामसे अधिक प्रसिद्ध था) सम्राट्के पास प्रतिभूके रूपमें भेजनेका आदेश भी कर दिया गया था।

स्वदेश लौटने पर ग़यास-उद्दीनने सब शर्त्तोंका पालन किया, केवल अपने पुत्रको सम्राटके पास न भेजा और यह लिख दिया कि वह मेरे वशमें नहीं है, उद्धत हो गया है।

१—ग़यास-उद्दीन-(पुत्र-नासिर-उद्दीन महमूद-पुत्र ग़यास-उद्दीन बलबन) सम्राट् बलबनका पौत्र था।

सम्राट्ने यह देख कर, इब्राहीम खाँके पास सेना भेज दिलजली तातारीको उसपर अमीर (हाकिम) नियत कर दिया। इनलोगोंने ग़यास-उद्दीनका सामना कर उसका वध कर डाला। उसकी ख़ाल खिचवाकर उसमें भूसा भरवाया गया और तत्पश्चात् वह समस्त देशमें घुमायी गयी।

२—बहाउद्दीन गश्तास्पका विद्रोह

सम्राट् तुग़लक (अर्थात् सम्राट्के पिता) के एक भानजा था जिसका नाम था बहाउद्दीन गश्तास्प। यह किसी प्रान्तका गवर्नर था। सम्राट् (अर्थात् मामा) की मृत्युके उपरान्त इसने पुत्र (अर्थात् आधुनिक सम्राट्) को राजभक्तिकी शपथ लेना अस्वीकार किया। वैसे यह बड़ा साहसी था।

जब सम्राट्ने इसकी ओर मलिक मजीर और ख़्वाजा जहाँकी अध्यक्षतामें सेना भेजी तो यह घोर युद्धके पश्चात् कम्पिला[1] (काम्पिल) देशके रायके यहाँ भाग गया। (हिन्दी भाषामें 'राय' शब्द उसी प्रकारसे राजाके लिए व्यवहृत होता है जिस प्रकारसे अँग्रेजी भाषामें 'राँय')। 'कंपिला' अत्यन्त दुर्गम पर्वतोंके मध्यमें बसे हुए एक देशका नाम है। यहाँका राजा भी हिन्दुओंमें बड़ा समझा जाता है।

बहाउद्दीनके वहाँ पहुँचते ही सम्राट्की सेना भी पीछे

---

(१) कम्पिला—बीजापुरके पास, मदरासके बिलारी नामक ज़िलेमें था। कुछ इतिहाकार इस स्थानको कन्नौजके पासकी 'कम्पिला' नगरी बताते हैं। परन्तु उनकी सम्मति ठीक प्रतीत नहीं होती। इस दूसरे कंपिला नगरमें महाराज द्रुपदकी राजधानी थी। अब यह केवल एक गाँव मात्र है और यू० पी० में छोटी लाइनपर कायमगंज़से पहिला स्टेशन है। यहां एक प्राचीन कुंड बना हुआ है जो 'द्रौपदी कुंड' कहलाता है।

पीछे वहीं जा डटी और नगरको जा घेरा। रायकी सब सामग्री समाप्त हो जानेपर उसने बहा-उद्दीनको बुलाकर कहा कि यहाँकी कथा तो तुम सब जानते ही हो। मैं तो अब अपने कुटुम्ब सहित जलही मरूँगा; तुम चाहो तो अमुक राजाके पास जा सकते हो। यह कहकर उसने 'गश्तास्प' को वहीं भेज दिया।

उसके जानेके पश्चात् रायने प्रचंड अग्नि तैयार करायी और अपने समस्त पदार्थ उसमें होम, रानियोंको बुला यह कहा कि मैं अब अग्निमें जला चाहता हूँ, तुममेंसे जिसे मेरी भक्तिहो वह मेरा अनुसरण करे। फल यह हुआ कि एक-एक स्त्री स्नान कर चन्दन लगा, पृथ्वीका चुम्बन कर, राजाके देखते देखते अग्नि में कूदकर जल गयी। यही नहीं प्रत्युत नगरके अमीर, वज़ीर तथा बहुतसे जन साधारण भी इसी अग्निमें जल मरे। इसके पश्चात् राजा भी स्नान कर चंदन लेपकर, कवचके अतिरिक्त अन्य अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो अपने पुरुषों सहित सम्राट्की सेनापर जा कूदा और सबने लड़कर जान दे दी। इसके उपरान्त सम्राट्की सेनाने नगरमें प्रवेशकर निवासियोंको पकड़वाना प्रारंभ किया। इनमें राजाके ग्यारह पुत्र भी थे। सम्राट्के संमुख उपस्थित किये जानेपर सबने इस्लाम स्वीकार कर लिया। उच्चवंशीय होने तथा पिताकी वीरताके कारण सम्राट्ने उनको 'इमारत' का मन्सब दिया।

तीन पुत्रोंको मैंने भी देखा था। एकका नाम नासिर था, दूसरेका बख़तियार और तीसरेका मुहरदार। इसके पास सम्राट्की मुहर रहती थी जो भोजन तथा पानकी प्रत्येक वस्तुपर लगायी जाती थी। इसका उपनाम अबू मुसलिम था और इससे मेरी घनिष्ठ मित्रता हो गयी थी।

हाँ, तो फिर 'कम्पिला' के राजाकी मृत्युके उपरान्त सम्राट्की सेना उस राजाके[1] यहाँ पहुँची, जहाँ वहा-उद्दीनने जाकर आश्रय लिया था; परन्तु उस राजाने वहा-उद्दीनसे यह कहकर कि मैं कम्पिलाके राजाकी भाँति साहस नहीं कर सकता, उसको सम्राट्की सेनाके हवाले कर दिया। इसके

(१) यह राजा हयशाल वंशीय बल्लालदेव तानौरका अधिपति था जो मैसूरके निकट है।

बदाऊनी लिखता है कि जब सम्राट् दौलताबादमें था उस समय वहा-उद्दीनने दिल्लीमें विद्रोह किया। परन्तु फरिश्ता इब्नबतूताका समर्थन करता है। वह लिखता है कि वहा-उद्दीन सम्राट्का भाई (फूफीका बेटा) सागरका हाकिम था। उसके विद्रोह करने पर दिल्लीसे सेना भेजी गयी। दो युद्धोंमें सम्राट्की सेनाकी हार होने पर, सम्राट् स्वयं दौलताबादकी ओर बढ़ा परन्तु सम्राट्के आनेसे प्रथम ही सम्राट्के सेनानायक ख़्वाजा जहाँने इसको कम्पिलाके राजा सहित पराजित कर बल्लालदेवके देशकी ओर भगा दिया। इत्यादि इत्यादि।

फीरोजशाहके शासन-कालका प्रसिद्ध इतिहासकार "बरनी" भी फरिश्तेका ही समर्थन करता है।

कम्पिलाके राजाके यहाँ साधारण पुरुषों, वजीरों तथा अमीरोंके अग्निमें स्त्रियोंकी भाँति जलनेकी बात कुछ समझमें नहीं आती। बहुत संभव है कि इन पुरुषोंकी स्त्रियाँ भी रानियोंकी भाँति जलमरी हों और इब्नबतूताने या लेखकोंने प्रमादवश स्त्रियोंके स्थानमें 'पुरुष' लिख दिया हो। ऐसे वीर क्षत्रियकी सन्तानोंके इस प्रकार पकड़े जाने तथा धर्म-परिवर्त्तन करने पर भी कुछ आश्चर्य प्रतीत होता है। यदि यह शिशु भी थे तो भी ये वहा-उद्दीनकी भाँति, अन्यत्र भेजे जा सकते थे। जो हो, इस वर्णनसे मुसलमान शासकोंकी नीतिपर एक विचित्र प्रकाश पड़ता है।

उपरांत हथकड़ी तथा बेड़ी डालकर यह सम्राट्की सेवामें भेज दिया गया।

उपस्थित होनेपर सम्राट्ने इसको रनवासमें ले जानेकी आज्ञा दी और कुटुम्बकी स्त्रियोंने बुरा भला कह उसके मुखपर थूका। सम्राट्की आज्ञासे जीते जी इसकी खाल खिंचवा दी गयी और मांस चावलोंके साथ पकवा कर कुछ तो उसीके घर भेज दिया गया और शेष एक थालीमें रखकर एक हथिनीके संमुख खानेको धर दिया गया, पर उसने न खाया।

खाल, भुस भरवानेके बाद, बहादुर भौंरेकी खालके साथ समस्त देशमें घुमायी गयी।

३—किशलू ख़ाँका विद्रोह

जब ये दोनों खालें सिन्धु प्रान्तमें पहुँची तो वहाँके हाकिम (गवर्नर) सम्राट् तुग़लक़के मित्र किशलू ख़ाँने, जिनकी वर्तमान सम्राट् बहुत मान-प्रतिष्ठा करता था और चचा कह कर पुकारता था, इनको पृथ्वीमें गाड़नेकी आज्ञा दी।

सम्राट्ने जब यह सुना तो उसको बहुत बुरा लगा, और उसने किशलू ख़ाँके वधका निश्चय कर उनको बुला भेजा। परन्तु सम्राट्का विचार ताड़ जानेके कारण वह न आये और विद्रोह कर दिया।

विद्रोह करने पर किशलू ख़ाँने खुल्लम खुल्ला तुर्क, अफ़गान तथा खुरासान-निवासियोंसे सहायता प्राप्त कर सम्राट्की सेनासे भी बड़ी सेना एकत्र कर ली। इसपर सम्राट्ने भी सामना करनेकी तैयारी की और स्वयं रणस्थलमें जा डटा। मुलतानसे दो पड़ावकी दूरीपर अबोहरके जंगलमें दोनों सेनाओंका सामना हुआ।

सम्राट्ने उस दिन बुद्धिमत्तासे छत्रके नीचे शैख़ रुक्न-उद्दीनके भाई शैख़ इमाद-उद्दीनको, जिनका रूप सम्राट्से मिलता था, खड़ा कर दिया। संग्राम छिड़ते ही सम्राट् स्वयं चार सहस्र सैनिक लेकर एक ओर चल दिया और इधर किशलू ख़ाकी सेनाने छत्रके निकट जा शैख़ इमाद-उद्दीनका वध कर डाला। अब क्या था, समस्त सेनामें यही प्रसिद्ध हो गया कि सम्राट्की मृत्यु हो गयी। किशलू ख़ाँकी सेना युद्ध करना छोड़ लूट मारमें लग गयी और वह अकेले रह गये। यह अवसर देख सम्राट् अपने साथियों सहित किशलू ख़ाँ-पर आ टूटा और उनका सिर काट लिया।

यह समाचार पाते ही किशलू ख़ाँकी सेना भाग खड़ी हुई और सम्राट् मुलतानमें आ गया। इस नगरके क़ाज़ो करीम-उद्दीनकी भी अब ख़ाल खिचवायी गयी और किशलू ख़ाँका कटा हुआ सिर नगर-द्वारपर लटका दिया गया। इस नगरमें मेरे आनेके समय तक भी यह सिर इसी भाँति द्वारपर लटक रहा था।

सम्राट्ने इमाद उद्दीनके भ्राता शैख़ रुक्न-उद्दीन तथा उनके पुत्र शैख़ सदर-उद्दीनको सौ गाँव उनके निर्वाह और शैख़ बहा-उद्दीन ज़करिया मुलतानीके मठका धर्मार्थ भोजनालय चलानेके लिए दे दिये। यह बात स्वयं शैख़ रुक्न-उद्दीन मुझसे कहते थे।

इसके पश्चात् सम्राट्ने अपने मंत्री ख़्वाजाजहाँको कमालपुर[१]की ओर जानेका आदेश दिया। यह नगर समुद्र-तटपर है। यहाँके निवासी भी सम्राट्से विद्रोह कर बैठे थे।

---

(१) कमालपुर—काठियावाड़में भावनगर गोंडल रेलवेके लिमरी स्टेशनसे १७ मील पूर्वकी ओर स्थित है। बहुत सम्भव है कि यही वह नगर हो जिसका वर्णन इब्नबतूताने किया है।

एक धर्मशास्त्रका ज्ञाता मुझसे कहता था कि उस समय वह इसी नगरमें था। जब सम्राट्का वज़ीर वहाँ गया तो क़ाज़ी तथा ख़तीब वज़ीरके संमुख लाये गये और उनकी खाल खींचनेका आदेश हुआ।

जब इन दोनोंने वज़ीरसे किसी अन्य प्रकारसे वध किये जानेकी प्रार्थना की तो वज़ीरने इनसे अपने वध किये जानेका कारण पूछा। इन्होंने उत्तर दिया कि सम्राट्की आज्ञा भंग करनेके कारण हमारी यह दशा हो रही है। इस उत्तरको सुन वज़ीरने कहा कि फिर मैं सम्राट्की आज्ञाका किस प्रकार उल्लंघन कर सकता हूँ। सम्राट्का आदेश है कि तुम्हारा इसी प्रकार वध किया जाय।

इतना कह वज़ीरने ख़ाल खींचनेवालोंको इनके मुखके नीचे ज़मीनमें दो गड्ढे खोदनेकी आज्ञा दी जिससे साँस लेनेमें भी कुछ सुविधा हो। कारण यह है कि ख़ाल खींचते समय अपराधियोंको मुखके बल लिटा देते हैं। इसके पश्चात् सिन्धु प्रांतमें शान्ति हो गयी और सम्राट् भी राजधानीको लौट गया।

४—हिमालय पर्वतमें सम्राट्की सेना

कोह क़राजोल (अर्थात् हिमालय) एक महान् पर्वत है। इसकी लम्बाई इतनी अधिक है कि एक छोरसे दूसरे छोर तक पहुँचनेमें तीन मास लग जाते हैं। दिल्लीसे यह पर्वत दस पड़ावकी दूरीपर है।

यहाँका राजा भी बहुत बड़ा समझा जाता है। सम्राट्ने इस राजासे युद्ध करनेके लिए एक लाख सेना मलिक नकवह-की अधीनतामें भेजा।

सेनानायकने 'जद्दिया'[1] नामक नगरको अधिकृत कर देश-को भस्मीभूत कर दिया और बहुतसे काफ़िरों (हिंदुओं) को भी बन्दी बना डाला। यह देख हिन्दू पहाड़ोंपर चढ़ गये। पहाड़में केवल एक घाटी थी जिसके नीचे तो नदी बहती थी और ऊपरकी ओर पहाड़ थे। घाटीमें एक बार एक मनुष्यसे अधिक नहीं जा सकता था परन्तु सम्राट्की सेनाने इतनी सँकरी राह होनेपर भी ऊपर जा 'वरनगल' नामक पार्वत्य नगरपर अधिकार जमा लिया। जब सम्राट्के पास इस विषयके शुभ समाचार भेजे गये तो उसने क़ाज़ी और ख़तीब भेजकर सेनाको यहीं ठहरनेकी आज्ञा दी। अब बरसात सिरपर आगयी। मरी फैल जानेके कारण सेना क्षीण होने लगी, घोड़े मरने लगे और धनुष सीलके कारण व्यर्थ होगये। अमीरोंने फिर सम्राट्को लिखकर लौटनेकी आज्ञा माँगी और निवेदन किया कि वर्षा ऋतु तक तो हम पर्वतकी उपत्यकामें ही ठहरे रहेंगे परन्तु वर्षा समाप्त होते ही हम पुनः ऊपर चले जायँगे। सम्राट्ने इस बार लौटनेकी आज्ञा दे दी।

सम्राट्का आदेश पाते ही अमीर नकबहने पहाड़से नीचे उतारनेके लिए लोगोंका समस्त कोष और रत्नादिक तक बाँट दिये। समाचार पाते ही हिन्दुओंने पर्वतकी गुफाओं तथा अन्य संकीर्ण स्थानोंमें जाकर मार्ग रोक दिये और महान वृक्षोंको काट काट कर पर्वतोंसे लुढ़काना प्रारम्भ कर दिया। फल यह हुआ कि बहुतसे आदमी इन वृक्षोंकी ही झपेटमें आ गहरे खड्डोंमें जा पड़े और जानसे हाथ धो बैठे। इसी प्रकार बहुतसे सैनिकोंको (इन पर्वत-निवासियोंने)

(१) जद्दया या जद्वा नामक एक परगना आईने-अकबरीके अनु-सार कमायूँ प्रान्तमें है।

वन्दी कर लिया। निष्कर्ष यह कि समस्त धन-संपत्ति, अस्त्र-शस्त्र और घोड़े तक लुट गये। सेनामें केवल तीन व्यक्ति जीते बचे। एक तो स्वयं अमीर नक़बह था और दूसरा बद्र-उद्दीन दौलतशाह; तीसरेका नाम मुझे स्मरण नहीं रहा। सम्राट्की सैनाको इस चढ़ाईके कारण बड़ा धक्का पहुँचा और वह अत्यन्त निर्बल भी होगया।

पहाड़ियोंकी कुछ ज़मीन देशमें भी थी और वे सम्राट्की अनुमति प्राप्त किये विना इसे नहीं जोत सकते थे, अतएव उन्होंने कुछ राजस्व देकर सम्राट्से संधि कर ली।

५—शरीफ़ जलाल-उद्दीनका विद्रोह

सम्राट्ने सय्यद जलाल-उद्दीन अहसनशाहको मअवर[१] देशका (जो दिल्लीसे छः महीनेकी राह है) हाकिम (गवर्नर) नियत कर भेज दिया। परन्तु यह गवर्नर सम्राट्से विरोध कर स्वयं सम्राट् बन बैठा[२] और अपने नामका सिक्का प्रचलित कर इसने दीनारोंपर एक ओर तो "अलवासिक़ बताई-दुर्रहमान एहसन शाहुस्सुलतान" यह वाक्य अंकित करा

---

(१) मअवर—अरबी भाषामें घाटको कहते हैं। अरब निवासी पश्चिमीय घाटको मैलेबार (मालाबार) और पूर्वीयको 'मअवर' कहते थे। भारतके कुछ इतिहासकारोंने मालाबारको ही भूलसे 'मअवर' लिख दिया है। परन्तु वास्तवमें यह कर्नाटक देशका मुसलमानी नाम था। मार्कोपोलोके कथनानुसार यहाँपर उस समय ऐसी प्रथा थी कि ऋणदाताके एक लकीर खींच देनेपर ऋणी उसके बाहर न जा सकता था राजा तक इस लकीरकी पूरी पाबन्दी ऋणीसे करा देते थे।

(२) इस विद्रोहका विशद वर्णन अन्य इतिहासकारोंने नहीं किया है। यह व्यक्ति सम्राट्के ख़रीतेदार सय्यद इब्राहीमका पिता था।

दिया और दूसरी ओर "सलालतो त्वाहा व यासीन अबुल-फ़ुक़रा वल मसाकीन जलालुद्दुनिया वद्दीन।"

विद्रोहकी सूचना पाते ही सम्राट् स्वयं संग्रामके निमित्त चल पड़ा और कोशकज़र (अर्थात् स्वर्ण भवन) नामक एक गाँवमें सामान तथा अन्य आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए आठ दिवस पर्य्यंत ठहरा रहा। इन्हीं दिनोंमें ख़्वाजाजहाँ वज़ीरका भाँजा हथकड़ी तथा बेड़ीसे जकड़े हुए चार-पाँच अन्य अमीरोंके साथ सम्राट्की सेवामें उपस्थित किया गया।

बात यह थी कि सम्राट्ने वज़ीरको पहिलेसे ही आगे भेज रखा था। जब वह धार नामक नगरमें पहुँचा (जो दिल्लीसे बीस पड़ावकी दूरीपर है) तो इसके साहसी तथा मनचले भाँजेने कुछ अमीरोंकी सहायतासे षड्यंत्र रच अपने मामा वज़ीर महोदयका वध कर कोष तथा संपत्ति सहित सैय्यद जलाल-उद्दीनके पास मअबर प्रदेशमें भागना चाहा। इन लोगोंका विचार शुक्रवारकी नमाज़के समय वज़ीरको पकड़नेका था।

परन्तु इन षड्यंत्रकारियोंमेंसे मलिक नसरत हाजिब नामक एक व्यक्तिने वज़ीरको समयसे पूर्व ही सूचना दे कहा कि ये लोग इस समय भी अपने वस्त्रोंके नीचे लोहेका जिरह-बख्तर पहने हुए हैं। इसीसे इनके विचारोंका पता लग सकता है। इस कथनपर विश्वास कर जब वज़ीरने इनको बुलाकर देखा तो वास्तवमें इनके वस्त्रोंके नीचे लोहेके कवच पाये गये। यह देख वज़ीरने इनको सम्राट्के निकट भेज दिया।

जिस समय ये सम्राटकी सेवामें उपस्थित किये गये, उस समय मैं भी खड़ा था। इनमेंसे एक लम्बी दाढ़ीवाला पुरुष

तो भयसे काँप रहा था और निरंतर सूरह मसीन (अर्थात् कुरानके अध्याय विशेष) का पाठ करता जाता था। सम्राट्ने वज़ीरके भांजेको तो उसीके पास वध करनेकी आज्ञा देकर भेज दिया और शेष अमीरोंको हाथीके संमुख डलवा दिया।

जिन हाथियोंसे नर-हत्याका काम लिया जाता है उनके दाँतोंपर हलकी फालोंके सदृश दोनों ओर धारदार लोहेके दंदानोंवाले हलके खोल चढ़े रहते हैं। हाथीके ऊपर महावत बैठा रहता है। जब कोई पुरुष हाथीके सामने डाला जाता है तो हाथी उसको सूंड़से उठा आकाशकी ओर फेंक देता है और अधरमें ही दाँतोंपर ले अपने संमुख धरतीपर डाल अपना अगला पैर उसके वक्षःस्थलपर रख देता है। अन्यथा महावतके आदेशानुसार या तो दाँतोंसे ही दो टुकड़े कर देता है या योंही धरतोपर पड़ा रहने देता है। जिस पुरुषकी ख़ाल खिंचवायी जाती है उसके टुकड़े नहीं किये जाते। इन पुरुषोंकी भी ख़ाल ही खिंचवायी गयी थी। सम्राट्के राजप्रासादसे जब मैं मग़रिब (अर्थात् सूर्यास्त) की नमाज़के पश्चात् निकला तो क्या देखता हूँ कि कुत्ते इनका मांस भक्षण कर रहे हैं और इनकी ख़ालोंमें भूसा भरा जा रहा है। ईश्वर रक्षा करे।

मअबर जाते समय सम्राट् मुझको राजधानीमें ही ठहरनेका आदेश कर गया था। दौलताबाद पहुँचने पर अमीर हलाजोंके विद्रोहका समाचार सुनाई दिया। वज़ीर ख़्वाजाजहाँ सेना एकत्र करनेके लिए राजधानीमें ही ठहर गया।

६—अमीर हलाजोंका विद्रोह

सम्राट्के अपने देशसे बहुत दूर दौलताबाद पहुँचने पर

अमीर हल्लाजो लाहौरमें विद्रोह खड़ा कर स्वयं सम्राट् बन बैठा। कुलचंद्र[1] नामक अमीरने इस विद्रोहीकी सहायता की और इसी कारण हल्लाजोने इसको अपना मंत्री बना लिया।

विद्रोहका समाचार जब दिल्ली पहुँचा तो मंत्री ख्वाजा-जहाँ वहींपर था। सुनते ही वह समस्त दिल्लीकी सेना तथा खुरासानियोंको ले लाहौरकी ओर चल दिया। मेरे साथी भी इस अवसरपर उसके साथ गये। सम्राट्ने भी क़ीरान सफ़-दार और मलिक तैमूर शखदार अर्थात् साक़ी इन दो बड़े अमीरोंको वज़ीरकी सहायताके लिए भेजा।

हल्लाजो भी सेना सहित सामना करने आया। एक बड़ी नदीके किनारे दोनों सेनाओंकी मुठभेड़ हुई। हल्लाजो तो परा-जित होकर भाग गया परन्तु उसकी सेनाका अधिकांश नदीमें डूबकर नष्ट होगया।

वज़ीरने नगरमें प्रवेश कर बहुतसे लोगोंकी खालें खिंच-वायीं और बहुतोंके सिर कटवा लिये। वधका कार्य मुहम्मद बिन नजीब नामक नायब वज़ीरके सुपुर्द था। इसको 'अशदर मलिक' भी कहते थे और 'सगे-सुलतान' (सम्राट्का कुत्ता) भी इसकी उपाधि थी।

अत्यंत क्रूर तथा निर्दय होनेके कारण सम्राट् इसको 'बाज़ारी शेर' कहकर पुकारता था। यह व्यक्ति अपराधियोंको बहुधा अपने दाँतोंसे काटा करता था।

वज़ीरने विद्रोहियोंकी लगभग तीन सौ स्त्रियाँ बंदी कर ग्वालियरके दुर्गमें भेज दीं और वहाँ ये बंदीगृहमें डाल दी गयीं। कुछको मैंने स्वयं उस दुर्गमें देखा था। एक धर्मशास्त्री-

(१) कुलचंद्र—यह गक्खर जातिका सर्दार था। यह जाति पीछे मुसलमान होगयी।

की स्त्री भी बंदी बनाकर इन स्त्रियोंके साथ ग्वालियर भेज दी गयी थी, इस कारण यह महाशय भी बहुधा अपनी स्त्रीके पास आते जाते रहते थे। यहाँतक कि बंदीगृहमें इस स्त्रीके एक बच्चा भी उत्पन्न होगया।

७—सम्राट्की सेनामें महामारी

मअबर देशकी ओर यात्रा करते करते सम्राट् तैलिंगाना देशकी राजधानी 'बिदरकोट'[१] में ही पहुँचा था कि राज-सेनामें महामारी फैल गयी। मअबर देश इस स्थानसे अभी तीन महीनेकी राह था।

महामारीके कारण बहुतसे सैनिकों, दासों तथा अमीरोंकी मृत्यु होगयी। अमीरोंमें उल्लेखनीय मृत्यु एक तो मलिक दौलतशाहकी हुई जिसको सम्राट् 'चचा' कहकर पुकारता था और दूसरी मृत्यु हुई अमीर अबदुल्ला अरबीकी। यह ऐसा बलिष्ट था कि एक बार सम्राट्के यह आदेश देने पर कि राज-कोषसे जितना चाहो शक्तिभर धन ले जाओ, यह तेरह थैलियां अपनी बाहुओंपर बाँधकर एकही बारमें निकाल ले गया। महामारी फैलने पर सम्राट् तो दौलताबादको लौट आया और समस्त देशमें अव्यवस्था और विद्रोहसा फैल गया। यदि सम्राट्के भाग्यमें अन्यथा न लिखा होता तो देश इस समय हाथसे निकल ही गया था।

८—मलिक होशंगका विद्रोह

दौलताबादको लौटते समय सम्राट्के राहमें रोगग्रस्त हो

(१) बिदरकोट—बतूताका तात्पर्य यहाँ आधुनिक 'बिदर' से है। निजाम राज्यकी आधुनिक राजधानी हैदराबादसे यह नगर पश्चिमोत्तर कोणमें ७५ मीलकी दूरीपर बसा हुआ है।

जानेके कारण लोगोंमें उसके (सम्राट्के) प्राणान्तकी प्रसिद्धि होगयी।

मलिक कमाल-उद्दीन गुर्गका पुत्र मलिक होशंग इस समय दौलताबादका हाकिम (गवर्नर) था। इसने सम्राट्से यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं न तो सम्राट्के जीते जी और न उसके मरणोपरान्त ही किसीके प्रति राजभक्तिकी शपथ लूँगा। सम्राट्की मृत्युका समाचार सुन यह दौलताबाद और कंकण थाना[1] के मध्यस्थ भूभागके 'बरबरह' नामक राजाके पास भाग गया।

हाकिमके भागनेकी सूचना पाते ही, इस भयसे कि उत्पात कहीं और अधिक न बढ़ जाय, सम्राट्ने दौलताबाद आनेमें बहुत शीघ्रता की और तदुपरान्त होशंगका पीछा कर आश्रयदाता नृपतिका नगर घेर उसको होशंगके अर्पित करने-का वचन भेज दिया।

सम्राट्का यह वचन सुनकर राजाने कहला भेजा कि मैं कम्पिला देशके राजाकी भाँति आचरण करनेको विवश होने पर भी अपने आश्रितको कभी आपको अर्पित न करूँगा।

---

१ थाना—यह नगर अत्यन्त प्राचीन है। प्रसिद्ध विजेता महमूद ग़ज़नवीके साथ आनेवाला अबूरिहाँ नामक विख्यात लेखक इस नगरको कंकणकी राजधानी बतलाता है। अबुल फिदा नामक लेखकका कथन है कि प्राचीन कालमें (लेखकके समय) इस नगरमें 'तनासी' नामक एक तरहका सुन्दर वस्त्र बना करता था। सन् १३१८ में यह नगर प्रथम बार दिल्लीके बादशाहके अधीन हुआ। फिर सोलहवीं शताब्दीमें इसपर पुर्त्तगीजोंका आधिपत्य हुआ और उनसे मराठोंने १७३९ ई० में छीन लिया। मरहटोंके पतनके पश्चात् अब यह बम्बई सरकारमें है।

परन्तु होशंगने भयभीत होकर सम्राट्से लिखा पढ़ी प्रारम्भ कर दी और आपसमें यह समझौता हुआ कि अपने गुरु क़तलु (क़तलग़) ख़ाँको पीछे छोड़ सम्राट् दौलताबादको लौट जाय और होशंग इन गुरु महोदयके पास स्वयं आ जायगा।

ठहरावके अनुसार सम्राट् सेना ले पीछे लौट गया, और होशंग क़तलूख़ाँके पास आया। क़तलूख़ाँने इसको वचन दे दिया था कि सम्राट् न तो तुम्हारा वध करेगा और न तुम पदच्युत ही किये जाओगे। होशंग जब अपने पुत्र-कलत्र, धन सम्पत्ति तथा इष्ट मित्रों सहित सम्राट्की सेवामें उप-स्थित हुआ तो उसने बहुत प्रसन्न हो उसको ख़िलअत दे सन्तुष्ट किया।

क़तलूख़ाँ बातके बड़े धनी थे। लोगोंको इनपर बड़ा विश्वास था और सम्राट् भी इनका बहुत आदर करता था। इस कारणसे कि सम्राट्को मेरे उपस्थित होनेपर खड़ा होनेका वृथा कष्ट न करना पड़े, यह महाशय बिना बुलाये कभी राज-सभामें न जाते थे। यह सदा दीन दुखी लोगोंको दान देते रहते थे।

९—सय्यद इब्राहीमका विद्रोह

हाँसी और सिरसाके हाकिम (गवर्नर) का नाम सय्यद इब्राहीम था। यह 'ख़रीतेदार' (अर्थात सम्राट्को क़लम और क़ाग़ज रखनेवाले) के नामसे अधिक प्रसिद्ध था। मअबर देशके हाकिम (जो इसका पिता था) का विद्रोह दमन करनेके लिए सम्राट्के उधर जाने पर उसकी मृत्युकी प्रसिद्धि होते ही सय्यद इब्राहीमके चित्तमें भी राज्यकी लालसा

उत्पन्न हो गयी। यह पुरुष अत्यन्त सुन्दर, शूर एवं मुक्तहस्त था। इसकी भगिनी हूर-नसबसे मेरा विवाह हुआ था। यह भी अत्यन्त शीलवती थी और रात्रिको तहज्जुद (एक बजे रात्रिकी नमाज़) और वज़ीफ़ा पढ़ती रहती थी। इसके गर्भसे मेरे एक पुत्री उत्पन्न हुई। मैं नहीं जानता कि इस समय उनकी क्या दशा है। मेरी स्त्री पढ़ना तो खूब जानती थी परन्तु लिख न सकती थी।

हाँ, तो इब्राहीमके विद्रोहका विचार करनेके समय एक अमीर दिल्लीसे सिन्धुकी ओर कोष लिये इसी प्रान्तसे होकर जा रहा था। इब्राहीमने इस पुरुषको चोरोंका भय बता, शान्ति स्थापित होने तक अपने यहाँ ही ठहरा रखा परन्तु वास्तवमें यह, सम्राट्की मृत्युका समाचार सत्य सिद्ध होने-पर, इस कोषको हथियानेका विचार कर रहा था। फिर सम्राट्के जीवित रहनेकी बात ही जब ठीक निकली तो इसने इस अमीरको आगे बढ़ने दिया। इस अमीरका नाम था ज़िया-उल-मुल्क बिन शम्स-उल-मुल्क।

ढाई वर्षके पश्चात् जब सम्राट् राजधानीमें पहुँचा तो सय्यद इब्राहीम भी उसकी वन्दनाको उपस्थित हुआ और इसी समय इसके एक दासने इसकी चुग़ली खा सम्राट्पर इसके समस्त विचार प्रकट कर दिये। यह सुन सम्राट्का विचार तो इसका वध करनेका हुआ परन्तु अत्यन्त प्रेम करने-के कारण उसने अपने इस विचारको स्थगित कर दिया।

एक बार संयोगवश एक ज़िबह किया हुआ हिरण-शावक सम्राट्के सम्मुख उपस्थित किया गया। सम्राट्ने इसको ज़िबह होते देखा था, इस कारण उसने यह कहकर कि यह सम्यक् रूपसे ज़िबह नहीं हुआ है इसको फेंकने की आज्ञा दे

दी। परन्तु सय्यद इब्राहीमने यह कहा कि यह सम्यक् रूपसे ज़िबह हुआ है, मैं इसका भोजन कर लूँगा।

यह सुन सम्राट्ने क्रोधित हो इसको पहिले तो बन्दीगृहमें डालनेकी आज्ञा दी, तदुपरान्त इसपर उपर्युक्त ज़िया-उल-मुल्कके कोषको अपहरण करनेके प्रयत्नका दोष लगाया गया। इब्राहीम भी यह भलीभाँति समझ गया कि मेरे पिताके विद्रोहके कारण सम्राट् मेरा अवश्य ही प्राणापहरण करेगा। अपराध अस्वीकार करने पर वृथा यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ेंगी, और घोर यन्त्रणाओंसे मृत्यु कहीं अधिक श्रेष्ठ है; इन सब बातोंको सोच समझ सय्यदने अपना दोष स्वीकार कर लिया और सम्राट्ने इसकी देहके दो टूक करनेकी आज्ञा दे दी।

इस देशकी प्रथाके अनुसार सम्राट्की आज्ञासे वध किये हुए पुरुषका शव तीन दिवस पर्य्यन्त उसी स्थानपर पड़ा रहता है। तीन दिनके पश्चात् क़ाफ़िर (हिन्दू) वधिक[1] शवको नगरकी खाईके बाहर ले जाकर डाल देते हैं।

वध किये हुए पुरुषोंके उत्तराधिकारी कहीं उनके शवोंको उठाकर न ले जायँ, इस भयसे इन वधिकोंके गृह भी नगरकी खाईके निकट ही बने होते हैं। मृतकके उत्तराधिकारी इन लोगोंको घूँस देकर शव उठाकर अन्तिम संस्कार करते हैं। सय्यद इब्राहीम भी इसी विधिसे धरतीमें गाड़ा गया।

१०—सम्राट्के प्रतिनिधिका तैलिंगानेमें विद्रोह

तैलिंगानेसे लौटने पर जब सम्राट्की मृत्युकी झूठी अफ़वाह फैली, उस समय उस देशका हाकिम नसरतख़ाँ तुर्क था। यह सम्राट्का पुराना सेवक था। सम्राट्की मृत्युकी सूचना

(१) वधिक—संभवतः भंगी यह कृत्य करता था।

पाने पर इसने प्रथम तो समवेदना प्रकट की और तदुपरान्त जनतासे तैलिंगानेकी राजधानी बिदर-कोट (बिदर) में अपने प्रति राजभक्तिकी शपथ ली

यह समाचार सुन सम्राट्ने अपने आचार्य क़तलूख़ाँकी अधीनतामें एक बड़ी सेना इस ओर भेजी। घोर युद्धके पश्चात्, जिसमें बहुतसे पुरुषोंने प्राण खोये, सम्राट्के सेनानायकने बिदरकोटको चारों ओरसे घेर लिया। नगरके अत्यन्त दृढ़ होनेके कारण क़तलूखाँने अब सुरंग लगाना प्रारम्भ किया, परन्तु नसरतखाँने अपने प्राणोंकी भिक्षा चाही।

क़तलूखाँने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इसपर वह नगरके बाहर आगया और सम्राट्को सेवामें भेज दिया गया। इस प्रकारसे समस्त नगर-निवासियों और नसरतखाँकी कुल सेनाके प्राण बच गये।

११—दुर्भिक्षके समय सम्राट्का गंगातटपर गमन

देशमें दुर्भिक्ष पड़ने पर सम्राट् सेना सहित गंगातट[1] पर चला गया। हिंदू इस नदीको बहुत पवित्र समझते हैं और

(१) स्वर्ग-द्वार—यह स्थान फर्रुख़ाबादके ज़िलेमें शमसाबादके निकट था। केवल सेनाका पड़ाव होनेके कारण यहाँका कोई चिन्ह भी इस समय अवशेष नहीं है। सम्राट् यहाँ ढाई-तीन वर्षपर्यंत रहा। और सम्राट्ने यहाँके अपने निवास-स्थानका नाम स्वर्गद्वार रखा था। बदाऊनी लिखता है कि प्रथम तो सम्राट्ने दुर्भिक्षमें दीन-दुखियाओंको खूब अनाज बाँटा, परंतु जब इसपर भी कुछ अंतर न पड़ा और दुर्भिक्ष बढ़ता ही गया तो विवश होकर सम्राट् तो गंगा किनारे उपर्युक्त स्थानपर चला गया और लोगोंको भी पूर्वीय भागोंमें या जहाँ इच्छा हो वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी।

प्रत्येक वर्ष इसकी यात्रा करने जाते हैं। जिस स्थानपर सम्राट् जाकर ठहरा था वह दिल्लीसे दस पड़ावकी दूरीपर था। सम्राट्की आज्ञाके कारण लोगोंने इस स्थानपर प्रथम तो फूँसके छप्पर बना लिये पर इनमें बहुधा अग्नि लग जानेके कारण लोगोंको बड़ा कष्ट होता था। जब बादमें बचावका अन्य कोई साधन नहीं रह गया, तब धरतीमें तहख़ाने बना दिये गये। अग्निकांड होनेपर लोग अपनी धन-संपत्ति तथा अन्य पदार्थ इन तहख़ानोंमें डाल इनके मुख मिट्टीसे मूँद देते थे।

इन्हीं दिनोंमें मैं भी सम्राट्के कैम्पमें पहुँचा था। गंगा नदीके पश्चिमीय तटपर तो अत्यन्त भयंकर दुर्भिक्ष पड़ रहा था, परन्तु पूर्वकी ओर अनाजका भाव सस्ता था। सम्राट्की ओरसे अवज़ (अवध), ज़फ़राबाद[1] तथा लखनऊका हाकिम (गवर्नर) इस समय अमीर ऐन-उल-मुल्क था। यह अमीर प्रत्येक दिन सम्राट्की सेनामें पचास सहस्र मन गेहूँ और चावल, और पशुओंके लिए चने भेजा करता था। तदुपरान्त सम्राट्ने अपने हाथी, घोड़े और खच्चर भी नदी-पार पूर्वकी ओर चरनेके लिए भेजनेकी आज्ञा दे ऐन-उल-मुल्कको उनका संरक्षक बना दिया।

ऐन-उल-मुल्कके चार भाई और थे। इनमेंसे एकका नाम था शहर-उल्ला, दूसरेका नसर-उल्ला और तीसरेका फ़ज़ल-उल्ला; चौथेका नाम मुझको अब स्मरण नहीं रहा।

इन चारों भाइयोंने ऐन-उल-मुल्कके साथ मिलकर सम्राट्

(१) ज़फ़राबाद—अबुलफ़ज़लके समय सरकार जौनपुरमें एक महाल था। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्राट् अला-उद्दीन ख़िलजीके राजत्वकालमें ज़फ़र ख़ाँने इस स्थानको बसाया था। उस समय सूबेका हाकिम यहीं रहा करता था।

के हाथी, घोड़े तथा अन्य पशुओंके अपहरण करने तथा ऐन-उल-मुल्कके साथ राजभक्तिकी शपथ लेकर उसको सम्राट् बनानेका षड्यंत्र रचा। ऐन-उल-मुल्क तो रात्रिमें ही भाग गया और सम्राट्को बिना सूचना मिले ही इन पुरुषोंके मनोरथ सफल होते होते रह गये।

भारतवर्षका सम्राट् अपना एक दास प्रत्येक छोटे बड़े-अमीरके पास इसलिये रख देता है कि उसकी समस्त विस्तृत कथा सम्राट्को उसके द्वारा ज्ञात होती रहे। इसी प्रकार अमीरोंकी स्त्रियोंके पास भी सम्राट्की कोई न कोई दासी अवश्य बनी रहती है और ये दासियाँ अमीरोंके घरका सब वृत्तान्त भंगनों द्वारा सम्राट्के दूतोंके पास भेज देती हैं, और दूत इसको सम्राट् तक पहुँचा देते हैं। कहा जाता है कि एक अमीरने अपनी स्त्रीके साथ, रात्रिको शयन करते समय, भोग करना चाहा। भार्याने सम्राट्के सिरकी शपथ दिला ऐसा करनेसे उसको रोकना चाहा परन्तु अमीरने न माना। प्रातःकाल होते ही सम्राट्ने उस अमीरको बुला इसी कारण प्राण-दण्ड दे दिया।

सम्राट्का एक दास, जिसका नाम मलिक शाह था, ऐन-उल-मुल्कके पास भी इसी प्रकारसे रहा करता था। इसने सम्राट्को उसके भागनेकी सूचना दे दी। समाचार सुनते ही सम्राट्के होश-हवास जाते रहे और मृत्यु संमुख दीखने लगी। कारण यह था कि सम्राट्के समस्त हाथी-घोड़े आदि पशु और संपूर्ण खाद्य पदार्थ ऐन उल मुल्कके ही पास थे और सेनामें अबतरी फैल रही थी। प्रथम तो सम्राट्ने राजधानी जा वहाँसे सुसंगठित सैन्यकी सहायतासे ऐन-उल-मुल्कसे युद्ध करनेका विचार किया परन्तु अमीरोंको

एकत्र कर मंत्रणा करने पर खुरासानी तथा अन्य परदेशि योंने—सम्राट् द्वारा विदेशियोंका अधिक सम्मान होनेके कारण, हिंदुस्तानी अमीर ऐन-उल मुल्क और इन परदेशियोंके मध्य आपसकी अनबन करानेके लिए—तुग़लककी सम्मति स्वीकार न की और कहा कि हे अख़वन्द-आलम (संसारके प्रभु), आपके राजधानी-गमनकी सूचना पाते ही ऐन-उल-मुल्क सेना एकत्र करने लगेगा और बहुतसे धूर्त्त चारों ओरसे आकर उसके पास एकत्र हो जायँगे। इससे अधिक उत्तम बात यही है कि उसपर तुरन्त आक्रमण कर दिया जाय। सर्वप्रथम यह प्रस्ताव नासिर-उद्दीन-आहरीने सम्राट्के संमुख उपस्थित किया और शेष अमीरोंने इसका समर्थन किया। सम्राट्ने भी इनकी सम्मति स्वीकार कर रात्रिमें ही पत्र लिख आस-पासके अमीरों तथा सैन्य-दलोंको तुरन्त ही बुला लिया। इसके अतिरिक्त सम्राट्ने एक और युक्तिसे काम लिया। वह यह थी कि यदि सौ पुरुष सम्राट्की ओरसे आते तो यह उनकी अभ्यर्थनाको एक सहस्र सैनिक भेजते और इस प्रकार ग्यारह सौ सैनिक सम्राट्के डेरोंमें प्रवेश होते देख शत्रुओंको अधिक संख्याका भ्रम हो जाता था।

अब सम्राट्ने नदीके किनारे किनारे चलना प्रारम्भ किया, और दृढ़ स्थान होनेके कारण, कन्नौज पहुँच वहाँका दुर्ग अधिकृत करना चाहा, परन्तु यह नगर तीन पड़ाव दूर था। प्रथम पड़ाव पार करनेके पश्चात् सम्राट्ने सैन्यको युद्धके लिए सुसज्जित किया। सैनिक पंक्तिवद्ध खड़े किये गये, घोड़े उनके बराबर आगये। प्रत्येक सैनिकने समस्त अस्त्र-शस्त्रादि अपनी अपनी देहपर लगा लिये। सम्राट्के पास केवल एक छोटा सा डेरा था और इसीमें उसके भोजन एवं स्नानादिका

प्रबंध था। बड़ा कैम्प यहाँसे दूर था। तीन दिवस पर्य्यन्त सम्राट्ने न तो शयन ही किया और न कभी छायामें ही बैठा।

एक दिन मैं अपने डेरेमें बैठा हुआ था कि मेरे नौकर सुम्बुलने मुझसे तुरन्त बाहर आनेको कहा। मेरे बाहर आने पर उसने कहा कि सम्राट्ने अभी आज्ञा निकाली है कि जिस पुरुषके पास उसकी स्त्री या दासी बैठी हो उसका तुरन्त वध कर दिया जाय। मेरे साथ भी दासियाँ थीं और इसीसे नौकरने बाहर आनेको कहा था। कुछ अमीरोंके प्रार्थना करने पर सम्राट्ने पुनः कैम्पमें किसी भी स्त्रीके न रहनेका आदेश कर दिया। इसके पश्चात् कैम्पमें कोई स्त्री न रही; यहाँ तक कि सम्राट्ने भी अपनी दासियाँ हटा दीं। यह रात्रि भी तैयारीमें ही बीत गयी। सब स्त्रियाँ कम्बेल[1] नामक दुर्गमें तीन कोसकी दूरीपर भेज दी गयीं।

दूसरे दिन समाट्ने अपनी समस्त सेना कई भागोंमें विभक्त कर दी। प्रत्येक भागके साथ सुरक्षित हौदेयुक्त हाथी कर दिये और समस्त सेनाको कवच धारण करनेकी

---

(१) कम्बेल (काम्पिल्य)—फरुंख़ाबादकी कायमगंज नामक तहसीलमें यह स्थान इस समय उजड़ कर एक गाँवके रूपमें अवशिष्ट है। आईने-अकबरीमें यह स्थान सरकार कन्नौजका एक महाल बताया गया है। ग़यास-उद्दीन बलबनके समय यहाँपर डाकुओंका अड्डा होनेके कारण सम्राट्ने यहाँपर एक दुर्ग निर्माण करा दिया था।

कहा जाता है कि महाभारतके प्रसिद्ध राजा द्रुपद इसी स्थानपर राज्य करते थे। एक टीलेको यहाँके निवासी आज कल भी राजा द्रुपदका दुर्ग बताते हैं। उस समय इस नगरका नाम 'कांपिल्य' था और यह दक्षिण पांचाल नामक प्रान्तकी, जिसका सीमाविस्तार आधुनिक बदायूँ और फरुंख़ाबादके मध्यतक था, राजधानी था।

आज्ञा दे दी गयी। द्वितीय रात्रि भी इसी प्रकार तैयारीमें ही व्यतीत होगयी।

तीसरे दिन ऐन-उल-मुल्कके नदी पार करनेका समाचार मिला। यह सुनकर सम्राट्ने इस सन्देहसे कि वह अब नदी पारके समस्त अमीरोंकी सहायता प्राप्त कर लौटा है—अपने समस्त मुसाहबोंको भी एक एक घोड़ा दिये जानेकी आज्ञा दे दी। मेरे पास भी कुछ घोड़े आये। मेरे साथ मीर मीरां किरमानी नामक एक बड़ा साहसी घुड़सवार था। उसको मैंने सब्ज़ा घोड़ा दिया परन्तु उसके सवार होते ही घोड़ा ऐसा भागा कि वह रोक न सका; घोड़ेने उसको नीचे गिरा दिया और उसका प्राणान्त हो गया। सम्राट्ने इस दिन चलनेमें बड़ी ही शीघ्रता की और अस्र (संध्याके चार बजेकी नमाज) के पश्चात् हम कन्नौज पहुँच गये। सम्राट्को यह भय था कि कहीं ऐन-उल-मुल्क हमसे प्रथम ही कन्नौजपर अधिकार न जमाले, अतएव रात्रि भर सम्राट् सेनाका संगठन करता रहा। आज हम सेनाके अग्र भागमें थे। सम्राट्के चचाका पुत्र मलिक मुल्क फीरोज़ तथा उसके साथी, अमीर ग़द्दा इब्न मुहन्ना, और सय्यद नासिरउद्दीन तथा अन्य खुरासानी अमीर भी हमारे ही साथ थे। सौभाग्यसे सम्राट्ने आज हमको अपने भृत्योंमें सम्मिलित कर अपने ही पास रहनेको कह दिया था, इसीसे कुशल हुई। क्योंकि पिछली रात्रिके समय ऐन-उल-मुल्कने हमारी सेनाके अग्र भागपर, जो मंत्री ख़्वाजा जहाँके अधीन था, छापा मारा। इस आक्रमणके कारण लोगोंमें बड़ा कोलाहल मच गया। सम्राट्ने लोगोंको अपने स्थानसे न हटने तथा तलवारों द्वारा ही युद्ध करनेकी आज्ञा दी। सारी शाही सेना अब शत्रुओंकी ओर अग्रसर होने लगी।

इस रात्रिको सम्राट्ने अपना गुप्त सांकेतिक चिन्ह 'दिल्ली' तथा 'ग़ज़नी' नियत किया था। हमारी सेनाका सैनिक किसी दूसरे सैनिकको मिलने पर 'दिल्ली' कहता था और इसके उत्तरमें द्वितीय सैनिकके 'ग़ज़नी' न कहने पर शत्रु समझ कर उसका वध कर दिया जाता था।

ऐन-उल-मुल्क तो सम्राट् पर ही छापा मारनेका विचार कर रहा था, परन्तु पथप्रदर्शकके धोखा देनेके कारण वज़ीर-पर आक्रमण होगया। ऐन-उल-मुल्कने यह देख पथप्रदर्शकका वध कर दिया।

वज़ीरकी सेनामें अजमी अर्थात् अरब देशके बाहरके. तुर्क और खुरासानियोंकी ही संख्या अधिक थी। भारतीयोंसे शत्रुता होनेके कारण इन लोगोंने जी तोड़कर ऐसा युद्ध किया कि ऐन-उल-मुल्ककी पचास सहस्र सेना प्रातःकाल होते होते भाग खड़ी हुई।

इब्राहीम तातारी (लोग इसको भंगी कहकर पुकारते थे) संडीलेसे ऐन-उल-मुल्कके साथ हो लिया था। यह उसका नायब था। इसके अतिरिक्त कुतुब-उल-मुल्कका पुत्र दाऊद, और सम्राट्केघोड़े-हाथियोंका अफ़सर, जो मलिक-उल तज्जा-रका पुत्र था, ये दोनों सरदार भी इस विद्रोहीसे जा मिले थे। दाऊदको तो ऐन-उल मुल्कने अपना हाजिब बना दिया था।

जब ऐन-उल-मुल्कने वज़ीरकी सेनापर आक्रमण किया तो यही दाऊद सम्राट्को उच्च स्वरसे गन्दी गन्दी गालियाँ देने लगा। सम्राट्ने भी इनको सुन दाऊदका स्वर पहि-चान लिया।

अपनी सेनाके पराजित होने पर, बड़े बड़े सरदारोंको

भागते देख ऐन-उल-मुल्कने जब अपने नायब इब्राहीमसे पलायन करनेका परामर्श किया तो उसने तातारी भाषामें अपने साथियोंसे कहा कि भागनेका विचार करते ही मैं इसके लम्बे केश पकड़ लूँगा और मेरे केश ग्रहण करते ही तुम लोग इसके घोड़ेको चाबुक मारकर गिरा देना। फिर हम सब इसको सम्राट्की सेवामें बाँध कर ले जायँगे। बहुत सम्भव है कि इस सेवासे प्रसन्न हो सम्राट् हमारा अपराध क्षमा करदे।

ऐन-उल-मुल्कने जब भागनेका विचार किया तो इब्राहीमने यह कहकर कि 'सम्राट् अलाउद्दीन (एन-उल-मुल्कने यह उपाधि सम्राट् होने पर धारण कर ली थी), कहाँ जाते हो?' उसके केश-पाश दृढ़तासे पकड़ लिये। अन्य तातारियोंने इसी समय उसके घोड़ेको चाबुक मार भगा दिया। ऐन-उल-मुल्क धरती-पर गिर पड़ा और इब्राहीमने उसको अपने वशमें कर लिया। वज़ीरके साथियोंने जब ऐन-उल-मुल्कको उनसे छुड़ा कर स्वयं पकड़ना चाहा तो इब्राहीमने यह कहा कि लड़कर मर जाउँगा परन्तु यह क़ैदी किसीको न दूँगा। मैं स्वयं इसको वज़ीरके संमुख उपस्थित करूँगा। इसके पश्चात् ऐन-उल-मुल्क वज़ीरके सामने लाया गया। इस समय प्रातःकाल हो गया था, सम्राट् संमुख लाये हुए हाथी तथा ऊँटोंका निरीक्षण कर रहा था। मैं भी वहीं सेवामें था। इतनेमें किसी (ईराक़-निवासी) ने आकर यह समाचार सुनाया कि ऐन-उल-मुल्क पकड़ा गया और वज़ीरके संमुख उपस्थित है। इस कथनपर विश्वास न कर मैं कुछ ही दूर गया था कि मलिक तैमूर शरबदारने आकर मुझसे कहा 'मुबारक हो। ऐन-उल-मुल्क बंदी कर वज़ीरके सामने उपस्थित कर दिया गया।' यह समाचार सुन सम्राट् हम सबको साथ ले ऐन-उल-मुल्कके कैम्पकी ओर

चल दिया। हमारी सेनाने उसके डेरे इत्यादि लूट लिये और उसके बहुतसे सैनिक नदीमें घुसनेके कारण डूबकर मर गये। कुतुब-उल-मुल्क और मलिक-उल-तज्जार दोनोंके पुत्र पकड़ लिये गये। सम्राट्ने इस दिन नदी किनारे ही विश्राम किया।

वज़ीर, ऐन-उलमुल्कको नंगे-बदन, बैलपर चढ़ा, सम्राट्के संमुख लाया। केवल एक लंगोटी उसके शरीरपर थी और वही गर्दनमें डाल दी गयी थी। डेरेके द्वारपर ऐन-उलमुल्कको छोड़ वज़ीर स्वयं सम्राट्के संमुख भीतर गया और सम्राट्ने उसको शर्बत दिया। अमीरोंके पुत्र संमुख आ ऐन उलमुल्कको गालियाँ देते और उसके मुखपर थूकते थे। जब सम्राट्ने मलिक कबीरको उसके पास भेजकर यह कुकृत्य करनेका कारण पूछा तो वह चुप हो रहा। फिर सम्राट्ने ऐन-उल-मुल्कको निर्धनोंकेसे वस्त्र पहिना, पैरोंमें चार चार बेड़ियाँ डालकर, हाथ गर्दनपर बाँध वज़ीरके सुपुर्द कर दिया और इसको सुरक्षित रखनेकी आज्ञा दे दी।

ऐन-उल-मुल्कके भाई नदी पार कर भाग गये। और अवधमें जा अपने पुत्र-कलत्रादि तथा धन-सपत्तिको यथा-शक्ति बटोर तथा बेचकर निकल गये। इन्होंने अपने भाई ऐन-उल-मुल्ककी स्त्रीसे भी धनसंपत्ति लेकर भागनेको कहा परन्तु उसने यह कहा कि 'अपने पतिके सहित जल जानेवाली हिन्दू स्त्रियोंसे भी क्या मैं गयी-बीती हूँ,' और उनके साथ जाना अस्वीकार कर दिया। यह स्त्री तो यह कहती थी कि पतिकी मृत्यु होने पर मैं भी देह छोड़ दूँगी और उनके जीवित रहने पर मैं भी जीवित रहूँगी। यह समाचार सुन सम्राट् भी बहुत प्रसन्न हुआ और उसको भी उस स्त्रीपर दया आ गयी।

सुहेल नामक एक पुरुषने ऐन-उल-मुल्कके भाई नसरुल्ला-

का सिर काटकर, उसकी भगिनी और ऐन-उल-मुल्ककी स्त्री के सहित सम्राट्के संमुख उपस्थित किया। सम्राट्ने स्त्रीको भी वज़ीरकेही पास भेज दिया, और उसने इसके लिए एक पृथक् डेरा ऐन-उल-मुल्कके डेरेके पास लगवा दिया। ऐन-उल-मुल्क इसके पास बैठकर फिर वंदीगृहमें चला जाता था।

विजयके दिन सम्राट्ने अस्रके समय बाज़ारी पुरुषों दासों तथा दीनोंको (जो इनके साथ पकड़े गये थे) छोड़नेकी आज्ञा दे दी। मलिक इब्राहीम भंगी भी सम्राट्के संमुख उपस्थित किया गया। सेनापति मलिक बुग़राने अख़वन्द आलमसे इसका सिर काटनेकी प्रार्थना की परंतु ऐन-उल-मुल्कको वंदी करनेके कारण वज़ीरने इसको क्षमा कर दिया था। सम्राट्ने भी इसी हेतु इसको अब क्षमा कर अपनी जागीरपर लौटनेकी आज्ञा दे दी।

मग़रिबकी नमाजके पश्चात् जब पुनः सम्राट् लकड़ीके बुर्जमें विराजमान हुआ तो ऐन-उल-मुल्कके साथियोंमेंसे बासठ बड़े बड़े पुरुष उसके संमुख उपस्थित किये गये। इनको हाथियोंके संमुख डालनेकी आज्ञा हुई। कुछ एक-को तो हाथियोंने अपने लोहे मढ़े हुए दाँतोंसे टुकड़े टुकड़े कर डाला और शेषको उछाल उछाल कर मार डाला। इस समय नौबत, नगाड़े और सहनाइयोंके बजनेका तुमुल शब्द हो रहा था। ऐन-उल-मुल्क भी खड़ा खड़ा यह व्यापार देख रहा था। मृत पुरुषोंके देह-खंड इसकी ओर फेंके जाते थे। साथियोंके वधके उपरांत इसको पुनः वंदीगृहमें ले गये।

पुरुषोंकी संख्या तो बहुत अधिक थी, परंतु नावें थोड़ी-ही थीं, इस कारण सम्राट्को नदीके किनारे देर तक ठहरना

पड़ा। सम्राट्का निजी असबाब तथा राजकोष तो हाथियोंकी पीठपर लाद कर पार उतारा गया। कुछ हाथी अमीरोंको सामान लादकर पार भेजनेके लिए दे दिये गये। मुझको भी एक हाथी मिला; उसीपर सामान लादकर मैंने भी नदीके पार भेजा।

१२—बहराइचकी यात्रा

इसके पश्चात् सम्राटका विचार बहराइच[1] की ओर जानेका हुआ। यह सुन्दर नगर सरजू नदीके तटपर बसा हुआ है। सरजू भी एक बड़ी नदी है। इसके तट बहुधा गिरते रहते हैं। शैख़ सालार मसऊद[2] की समाधिके दर्शनार्थ सम्राट्को नदीके पार जाना पड़ा। शैख़ सालारने यहाँके आसपासका बहुत अधिक भूभाग विजय किया था; और उनके संबंधमें लोग बहुतसी अलौकिक बातें बताते हैं।

नदी पार करते समय लोगोंकी बहुत भीड़ एकत्र हो

(१) बहराइच—शैख़ सालार मसऊदकी समाधिके अतिरिक्त यहाँ सालार रजब (फीरोज़शाहके पिता) की भी क़ब्र बनी हुई है। यह नगर वास्तवमें घग्घर नदीके तटपर बसा हुआ है। परन्तु मुसलमान इतिहासकार इसको सरजूके ही नामसे पुकारते हैं।

(२) शैख़ सालार मसऊद अर्थात् ग़ाज़ी मियाँ—कोई इनको महमूद ग़ज़नवीका भांजा बताता है और कोई उसका वंशज। यह महमूदके वंशजोंके समय भारतमें आये थे और हिन्दुओं द्वारा इनका वध किया गया। इनकी समाधि इसी नगरमें बनी हुई है और उसपर प्रत्येक ज्येष्ठ मासके प्रथम रविवारको बड़ा भारी मेला लगता है। सहस्रों हिन्दू-मुसलमान नर-नारी इन्हीं शैख़ महाशयकी क़ब्रकी पूजा करते हैं और कार्य-पूर्ति पर मिठाई इत्यादि चढ़ाते हैं।

गयी और तीन सौ पुरुषों सहित एक बड़ी नाव भी डूब गयी। केवल एक पुरुष जीवित बचा। यह जातिका अरब था और इसको 'सालिम' कहते थे। यह अमीर ग़द्दाका साथी था। छोटी डोंगीमें होनेके कारण ईश्वरने हम सबकी रक्षा की।

सालिमका विचार हमारे साथ नावमें बैठनेका था परन्तु हमारी नावके तनिक आगे बढ़ आनेके कारण वह उसी डूबनेवाली नावमें जा बैठा। मैं तो इसको भी एक बड़ी अद्भुत बात समझता हूँ। जब वह नदीसे बाहर आया तो हमारे साथियोंने यह समझ कर कि वह हमारे साथ था, उसको अकेला देख कर यह अनुमान किया कि हम सब डूब गये और रोना-पीटना प्रारंभ कर दिया। फिर जब हम कुछ काल पश्चात् जीते-जागते दृष्टिगोचर हुए तो उन्होंने ईश्वरको अनेक धन्यवाद दिये।

इसके पश्चात् हमने शैख़ सालारकी समाधिके दर्शन किये। समाधि एक बुर्जमें बनी हुई है, परन्तु भीड़ अधिक होनेके कारण मैं भीतर न गया। इस स्थानके निकट ही एक बाँसोंका वन है। वहाँ हमने एक गैंड़ेका वध किया। यह पशु था तो हाथीसे छोटा परन्तु इसका सिर हाथीके सिरसे कहीं अधिक बड़ा था।

ऐन-उल-मुल्कपर विजय प्राप्त कर ढाई वर्षके उपरान्त सम्राट् राजधानीमें पहुँचा। ऐन-उल-मुल्क और तैलंगानेमें विद्रोह फैलानेवाले नसरत ख़ाँ दोनोंको ही सम्राट्ने क्षमा प्रदान कर अपने उपवनोंका नाज़िर नियत कर दिया। दोनोंको ख़िलअतें तथा सवारियाँ प्रदान की गयीं और इनको नित्य प्रति आटा और मांस सर्कारी गोदामसे मिलने लगा।

१३—सम्राट्का राजधानीमें आना और अलीशाह वहरःका विद्रोह

अब क़तलूखाँके साथी अलीशाह (अर्थात् वहरः) के विद्रोहका समाचार सुननेमें आया। यह पुरुष अत्यन्त रूपवान्, साहसी तथा अच्छी प्रकृतिका था। इसने विदरकोटपर अधिकार कर उसको अपने देशकी राजधानी बना लिया।

यह समाचार सुन सम्राट्ने अपने गुरुको उससे युद्ध करनेकी आज्ञा दी। क़तलूखाँने भी आदेश पाते ही बड़ी सेना ले विदरकोटको जा घेरा और बुर्जोंपर सुरंग लगा दी। अन्तमें अलीशाहने बहुत तंग आकर सन्धि करनी चाही। गुरुने भी तदनुसार सन्धि कर इसको सम्राट्के पास भेज दिया। सम्राट्ने अपराध तो क्षमा कर दिया, पर इसको निर्वासित कर ग़ज़नीकी ओर भेज दिया। परन्तु इसके सिरपर तो मौत खेल रही थी, अतएव कुछ कालतक वहाँ रहनेके पश्चात् इसके चित्तमें पुनः स्वदेश लौटनेकी चाह उत्पन्न हुई। लौटने पर सिन्धु प्रांतमें पकड़ लिया गया और सम्राट्के संमुख उपस्थित किये जाने पर देशमें आकर पुनः उत्पात फैलानेकी आशंकासे उसके वधकी आज्ञा दे दी गयी।

१४—अमीर बख़्तका भागना और पकड़ा जाना

हमारे साथ जो पुरुष सम्राट्की सेवा करने विदेशोंसे आये थे उनमें एक पुरुष अमीरबख़्त अशरफ उल मुल्क नामका था। सम्राट्ने क्रोधित हो इस पुरुषको चालीस-हज़ारीसे पदच्युत कर एक-हज़ारी बना, वज़ीरके पास भेज दिया। तैलंगानेमें इसी समय अमीर अब्दुल्ला हिरातीकी महामारीसे मृत्यु होगयी परन्तु उसकी सम्पत्ति उसके साथियोंके

पास दिल्लीमें होनेके कारण उन लोगोंने अमीर बख़्तके साथ भागनेका षड्यन्त्र रचा, और जब वज़ीर, सम्राट्के दिल्ली शुभागमनके अवसर पर उनकी अभ्यर्थनाके निमित्त बाहर गया हुआ था तो ये लोग भी अमीरके साथ निकल भागे, और अच्छे घोड़ोंके कारण चालीस दिनकी राह सात ही दिनमें पार कर सिन्धु प्रान्तमें पहुँच गये। वहाँ पहुँच सिन्धु नदको तैर कर पार करना चाहते थे, परन्तु अमीरबख़्त तथा उसके पुत्रने भली भाँति तैरना न जाननेके कारण, नरकुलके टोकरों-में—जो इसी हेतु बनाये जाते हैं—बैठ कर नदीके पार जानेकी ठानी। इस कार्यके लिए इन्होंने पहिलेसे ही रेशमकी रस्सियाँ भी तैयार कर रखी थीं।

परन्तु नदी तटपर पहुँचने पर तैरनेका साहस जाता रहा, अतएव इन लोगोंने दो पुरुषोंको ऊचहके हाकिम जलाल-उद्दीनके पास भेज कर यह कहलाया कि कुछ व्यापारी नदी पार करना चाहते हैं और आपको यह ज़ीन उपहारस्वरूप भेंट करते हैं। आप उन्हें नदी पार करनेकी आज्ञा कृपा कर दे दीजिये।

परन्तु ज़ीनकी ओर देखते ही अमीर तुरंत समझ गया कि ऐसी ज़ीन भला व्यापारियोंके पास कहाँसे आ सकती है, और इस कारण उसने दोनों पुरुषोंके पकड़नेकी आज्ञा दी। इनमेंसे एक पुरुष जो भाग कर अशरफ़-उल मुल्कके पास लौटा तो क्या देखता है कि वह सब निरन्तर जागनेके कारण थक कर सो गये हैं। उसने उनको तुरन्त ही जगा कर जो कुछ हुआ था कह सुनाया। सुनते ही वे घोड़ोंपर सवार हो पल भरमें वहाँसे चल दिये।

उधर जलाल-उद्दीनने द्वितीय पुरुषको खूब पीटनेकी आज्ञा

दी। फल यह हुआ कि उसने अशरफ़-उल-मुल्कका सारा भेद खोल दिया। जलाल-उद्दीनने ये बातें ज्ञात होते ही अपने नायबको अशरफ़-उल-मुल्क और उसके साथियोंकी ओर सेना सहित भेजा, परन्तु ये लोग तो वहाँसे प्रथम ही चल दिये थे। अतएव नायबने उनको ढूँढ़ना प्रारम्भ किया और बहुत शीघ्र ही उनको जा पकड़ा। सेनाने अब बाण-वर्षा प्रारम्भ की। एक बाण अशरफ़-उल-मुल्कके पुत्रकी बाँहमें लगा और नायबने उसको पहिचान कर पकड़ लिया। सब पुरुष अब बन्दी कर जलाल-उद्दीनके सम्मुख लाये गये। इनके हाथ बाँध पावोंमें बेड़ियाँ डलवा, वज़ीरसे पूछा कि इनका क्या किया जाय। ये उसकी आज्ञा आते ही राजधानी भेज दिये गये। राजधानी पहुँचने पर ये बन्दीगृहमें डाल दिये गये। ज़ाहिर तो बन्दीगृहमें ही मर गया। उसकी मृत्युके उपरांत सम्राट्ने अशरफ़-उल-मुल्कको प्रत्येक दिन सौ दुर्रे (कोड़े) मारनेकी आज्ञा दी। इतनी मार खाने पर भी जब इसके प्राण न निकले, तो सम्राट्ने सब अपराध क्षमाकर इसको अमीर निज़ाम-उद्दीनके साथ चंदेरी भेज दिया। वहाँ इसकी ऐसी दुर्दशा हो गयी कि सवारीके लिए एक घोड़ा भी पास न रहा। लाचार होकर यह बैलपर ही चढ़ा फिरता था। वर्षों तक यही दशा रही। फिर एक बार अमीर निज़ाम-उद्दीन-ने इसको कुछ पुरुषोंके साथ सम्राट्की सेवामें भेज दिया और उसने इसको अपना चाशनगर नियत किया। इस पदा-धिकारीका काम था भोजन लेकर सम्राट्के सम्मुख जाना और मांसके टुकड़े टुकड़े कर सम्राट्के दस्तरख़्वानपर रखना।

तत्पश्चात् सम्राट्ने पुनः कृपा कर इसका पद यहाँ तक बढ़ा दिया कि इसके रोगी हो जाने पर सम्राट् स्वयं सहानु-

भूति प्रकट करनेके लिए इसके पास गया और इसके बोझ-के बराबर तौल कर सुवर्ण इसको दिया। अपनी भगिनीका विवाह भी इसके साथ कर इसको उसी चंदेरीमें, जहाँ यह एक बार निज़ाम-उद्दीनके भृत्यके रूपमें बैलपर चढ़ा फिरता था, हाकिम बना कर भेजा। परमात्मा प्राणियोंके हृदयमें महान् परिवर्तन करनेवाले हैं और कुछका कुछ कर देते हैं।

१५—शाह अफ़ग़ानका विद्रोह

शाह अफ़ग़ानने मुलतान देशमें विद्रोह कर वहाँके अमीर बहज़ादका वध कर स्वयं सम्राट् बनना चाहा। यह समाचार सुन सम्राट्ने इसके वधका विचार भी किया परन्तु यह भाग कर दुर्गम पर्वतोंमें अपने सजातीय अन्य पठानोंसे जा मिला। यह देख सम्राट्ने अत्यन्त क्रोधित हो समस्त स्वदेशस्थ पठानोंके पकड़नेकी आज्ञा देदी और इसी कारणसे क़ाज़ी जलाल-उद्दीनने विद्रोह किया।

१६—गुजरातका विद्रोह

क़ाज़ी जलाल और कुछ अन्य पठान खम्बायत (खम्बात) और बलोज़रा[1]के निकट रहते थे। जब सम्राट्ने अपने साम्राज्यके समस्त पठानोंको पकड़नेकी आज्ञा दी तो गुजरातके क़ाज़ी जलाल तथा उनके साथियोंको भी युक्ति द्वारा पकड़नेकी आज्ञा मलिक मुक़बिलके[2] नाम भेजी गयी। इसका कारण

(१) बलोज़रा—हमारा अनुमान है कि इस शब्दसे बतूताका अभिप्राय आधुनिक बड़ोदासे है। परंतु कोई कोई इतिहासकार इसको 'भड़ौच' बताते हैं।

(२) इसका शुद्ध नाम मक़बूल था। कहा जाता है कि यह व्यक्ति, तैलंगानेके राजाका कोई उच्च पदाधिकारी था। उस समय इसका नाम

यह था कि 'गुजरात' तथा 'नहरवाले' में यह पुरुष वज़ीरकी ओरसे नायबके पदपर नियत किया गया था।

परंतु बलोज़राका इलाका मुल्क़-उल-हुकमाँकी जागीरमें था। इस व्यक्तिका विवाह सम्राट्के पिताकी विधवा रानीकी पुत्रीसे हुआ था जिसका पालन-पोषण सम्राट् द्वारा ही हुआ था। इसी विधवाकी अन्य सम्राट् (अर्थात् पूर्व पति) द्वारा उत्पन्न पुत्रीका विवाह सम्राट्ने अमीर गद्दाके साथ कर दिया था।

उसकी जागीर मलिक मक़बिलके इलाकेमें होनेके कारण मलिक उल हुकमाँ इन दिनों यहींपर था। गुजरात पहुँचने पर मलिक मक़बिलने मलिक उल-हुकमाँको काज़ी जलाल और उसके साथियोंको पकड़नेकी आज्ञा दी। मलिक-उल हुकमाँ आज्ञानुसार उनको पकड़ने तो गया परंतु एकही देशका होनेके कारण इसने उनको प्रथम ही सूचना दे दी कि बंदी करनेके लिए नायबने तुमको बुलाया है, सब सशस्त्र चलना। यह सुन क़ाज़ी जलाल तीन सौ सशस्त्र कवचधारी सवारोंको लेकर आया और सबने एकही साथ भीतर घुसना चाहा। रंग इस प्रकार बदला हुआ देखकर मुक़बिल समझ गया कि इनको बंदी करना कठिन है, अतएव उसने डरकर इनको लौटा कर कहा कि भयका कोई कारण नहीं है।

परंतु इन लोगोंने 'खम्बात' नगरमें जाकर राजविद्रोही हो इब्न उल कोलमी नामक धनाढ्य व्यापारी, साधारण प्रजा और राजकोष, सबको खूब लूटा।

'कट्टु' था। राजाके साथ दिल्ली आने पर यह मुसलमान बना लिया गया और स्वयं सम्राट्ने इसका उपर्युक्त नाम 'मक़बूल' रख इसको उच्चपद दे दिया, यहाँतक कि प्रधान मन्त्रीकी मृत्युके उपरांत यही पुरुष ख़्वाजा-जहाँकी उपाधिसे विभूषित हो सम्राट्का मन्त्री हुआ।

इस इब्नउल कोलमीने एक पाठशाला इसकंदरिया (एलैक्ज़ैण्ड्रिया) नामक नगरमें भी स्थापित की थी जिसका वर्णन हम अन्यत्र करेंगे।

जब मलिक मुक़बिल इनका सामना करने आया तो इन्होंने उसको पराजित कर भगा दिया। इसके पश्चात् मलिक अज़ीज़ ख़भार और मलिक जहाँमम्बलको भी सात सहस्र सेना सहित हराया। इनकी ऐसी कीर्त्ति सुन धूर्त्त तथा अपराधी पुरुषोंने इनके पास आ आकर इकट्ठा होना प्रारंभ कर दिया। क़ाज़ी जलाल अब सम्राट् बन बैठा और उसके साथियोंने उसकी राजभक्तिकी शपथ ली। सम्राट्ने इनका सामना करनेके लिए कई सैन्यदल भेजे परन्तु सबकी पराजय हुई।

यह देख दौलताबादके पठान-दलने भी विद्रोह आरंभ कर दिया। यहाँपर मलिक मल रहता था। सम्राट्ने अब अपने गुरु किशलू ख़ाँके भ्राता निजामउद्दीनको बेड़ी तथा शृंखलाओं सहित इनके पकड़नेको भेजा और शिशिर ऋतुकी खिलअत[1] भी साथ कर दी।

भारतवर्षकी ऐसी परिपाटी है कि सम्राट् प्रत्येक नगरके हाकिम तथा सेनाके अफसरोंके लिए एक ख़िलअत शिशिरमें

(१) ख़िलअत—'मसालिक उल अबसार' नामक ग्रंथके लेखकके अनुसार ख़िलअतें सम्राट्केही कारख़ानेमें तैयार की जाती थीं। रेशमी वस्त्र तो कारखानोंमेंही बनता था परन्तु ऊनी चीन, ईरान और इसकन्दरियासे भी आता था। कारखानेमें चार सौ पुरुष रेशम तैयार करते थे और पाँच सौ ज़रदोजीका काम। यह सम्राट् प्रत्येक वर्ष दो लाख ख़िलअतें बाँटता था जिनमें एक लाख रेशमकी वसंतऋतुमें दी जाती थीं और एक लाख ऊनी शिशिरमें। उच्च पदाधिकारियोंके अतिरिक्त मठाधीशों तथा मसजिदोंके शैख़ोंको भी ख़िलअतें दी जाती थीं।

और दूसरी ग्रीष्मऋतुमें भेजता है। ख़िलअत आने पर प्रत्येक हाकिमको ससैन्य उसकी अभ्यर्थनाके लिए नगरसे वाहर आना पड़ता है और ख़िलअत लानेवालेके निकट आने पर लोग अपनी अपनी सवारियोंसे उतर पड़ते हैं। और प्रत्येक पुरुष अपनी अपनी खिलअत ले कन्धेपर रख सम्राट्की ओर मुख कर वन्दना करता है।

सम्राट्ने निज़ामउद्दीनको पत्र द्वारा यह सूचना दे रखी थी कि परिपाटीके अनुसार ज्योंही पठान नगरसे वाहर आ खिलअत लेने सवारियोंसे उतरें तुम उनको बन्दी वना लेना। खिलअत लानेवाले पुरुषोंमेंसे एक सवार द्वारा पठानोंको भी सूचना मिल जानेके कारण निज़ामउद्दीनका पासा उलटा पड़ा। अर्थात् जव नगरके पठानों सहित वह खिलअतकी अभ्यर्थनाके लिए नगरसे वाहर आया तो घोड़ेसे उतरते ही निज़ामउद्दीनपर पठानोंने प्रहार किया और वन्दी वना उसके वहुतसे साथियोंका वध कर डाला।

पठानोंने अव राजकोष लूट नगरपर अपना अधिकार जमा मलिक मलके पुत्र नासिरउद्दीनको अपना हाकिम वना लिया। वहुतसे उद्दण्ड तथा झगड़ालू पुरुषोंके इनमें आ मिलनेके कारण भीड़भाड़ और भी अधिक होगयीं।

खम्बायत तथा अन्य स्थानोंसे पठानोंकी इस प्रकार विजयकी सूचना आने पर सम्राट्ने स्वयं खम्बायतकी ओर प्रस्थान करनेका विचार किया, और अपने जामाता मलिक अअ़ज़म वायज़ीदीको चार सहस्र सेना लेकर आगे आगे भेजा।

काज़ी जलालकी सेनामें 'जलूल' नामक एक पुरुष वड़ा साहसी तथा शूरवीर था। यह व्यक्ति सैन्यपर आक्रमण कर वहुतसे पुरुषोंका वध कर यह घोषित करता था कि यदि कोई

शूरवीर हो तो मेरा सामना करने आवे; और किसीका भी साहस इससे लड़नेका न होता था।

एक बार संयोगवश यह पुरुष घोड़ा दौड़ाते समय घोड़े सहित एक गड़हेमें जा गिरा। वहाँपर किसीने उसका वध कर डाला। कहते हैं कि इसकी देहपर दो घाव थे। उसका सिर सम्राट्के पास भेज दिया गया, शव बलोज़राके प्राचीर-पर लटका दिया गया और हाथ-पाँव अन्य प्रान्तोंमें भेज दिये गये।

अब स्वयं सम्राट्के ससैन्य आ जानेके कारण क़ाज़ी जला-लउद्दीनका पाँव न टिका और वह स्त्री-पुत्रादिको छोड़ साथियों सहित भाग खड़ा हुआ। शाही सेना, लूट खसोट मचाती हुई नगरमें प्रविष्ट हुई। कुछ दिन पर्यन्त यहाँ रहनेके उपरान्त, अपने उपर्युक्त जामाता अशरफ़-उल-मुल्क अमीर बख़्तको यहाँ छोड़ सम्राट् फिर चल पड़ा परन्तु चलते चलते भी क़ाज़ी जलाल-उद्दीनके प्रति भक्तिकी शपथ लेनेवाले पुरुषोंको ढूँढ़ निकालने और उनको धर्माचार्योंके आदेशानुसार सज़ा देनेका आदेश कर गया। उपर्युक्त शैख़ अली हैदरीका वध भी इसी समय हुआ।

क़ाज़ी जलालउद्दीन भाग कर दौलताबादमें जा नासिर-उद्दीन बिन मलिक मलका अनुयायी होगया।

सम्राट्के यहाँ आने पर इन लोगोंने अफ़गान, तुर्क, हिंदू और दासोंकी चालीस सहस्र सेना एकत्र की और सैनि-कोंने भी शपथ खाकर न भागने तथा सम्राट्का डटकर सामना करनेकी प्रतिज्ञा कर ली। परंतु सम्राट्के छत्र न धारण करनेके कारण शाही सेनाके संमुख आने पर इन विद्रोही सैनिकोंको यह भ्रम हो गया कि सम्राट युद्धमें उपस्थित नहीं

है। फिर युद्धके विकट रूप धारण कर लेने पर सम्राट्ने ज्योंही सिरपर छत्र लगाया त्योंही विद्रोही दलके पाँव उखड़ गये। नासिरउद्दीन तथा काज़ी जलाल दोनों (विजय लक्ष्मीको इस प्रकार जाते देख) अपने चार सौ साथियों सहित देवगिरिके दुर्गमें, जिसकी गणना संसारके अत्यन्त दृढ़ दुर्गोंमें की जाती है, चले गये और सम्राट् दौलतावादमें आ गया। (दुर्गको देवगिरि तथा नगरको दौलताबाद कहते हैं।)

अब सम्राट्ने उनसे दुर्गके बाहर आनेको कहा परंतु दुर्गके बाहर आनेसे प्रथम उन्होंने प्राणभिक्षा चाही। सम्राट्ने प्राणभिक्षा देना तो अस्वीकार किया परंतु कृपा प्रदर्शित करनेके लिए उनके पास कुछ भोजन अवश्य भेजा और स्वयं नगरमें ठहर गया। यहाँ तकका वृत्त मेरे सामनेका है

१८—मुक़बिल और इब्न उल कोलमीका युद्ध

यह युद्ध क़ाज़ी जलालके विद्रोहसे प्रथम हुआ था। बात यह थी कि ताज-उद्दीन इब्न उल कोलमी नामक एक बड़ा व्यापारी सम्राट्के लिए तुर्किस्तानसे दास, ऊँट, अस्त्र तथा वस्त्रादिकी बहुमूल्य भेंट लाया। जनताके कथनानुसार यह भेंट एक लाख दीनारसे अधिककी न थी परन्तु सम्राट्ने प्रसन्न हो इसको बारह लाख दीनार प्रदान कर खम्बायतका हाकिम बनाकर भेज दिया। यह देश नायब वज़ीर मलिक मुक़बिलके अधीन था।

व्यापारीने वहाँ पहुँचते ही मअबर (कर्नाटक) तथा सीलोनमें पोत भेजना प्रारंभ कर दिया और उन देशोंसे अत्यंत अद्भुत पदार्थ आनेके कारण यह थोड़े ही कालमें धनाढ्य बन बैठा। सर्कारी कर समयपर राजधानीमें न

पहुँचने पर जब मलिक मुक़बिलने इससे तकाज़ा किया तो इसने सम्राट्को कृपाके गर्वपर यह उत्तर दिया कि मैं वज़ीर या नायब वज़ीरके अधीन नहीं हूँ। मैं स्वयं अथवा नौकरोंके द्वारा कर सीधे राजधानी भेज दूँगा।

नायबके पत्र द्वारा सूचना मिलने पर वज़ीरने उसीको पीठपर नायबको यह लिख भेजा कि यदि तू (अर्थात् नायब) प्रबन्ध करनेमें असमर्थ है तो लौट आ। यह संकेत मिलते ही नायब सैन्य तथा दास आदिसे सुसज्जित हो व्यापारीका सामना करने आ गया। युद्धमें व्यापारी पराजित हुआ और उसकी सेनाके बहुतसे अमीर मारे गये। अन्तमें सम्राट्की सेवामें कर और उपहार भेज देने पर व्यापारीको प्राण-भिक्षा दे दी गयी।

परन्तु उपहार तथा कर भेजते समय मलिक मुक़बिलने सम्राट्को पत्र द्वारा व्यापारीकी शिकायत लिख भेजी और व्यापारीने नायबकी। दोनोंकी शिकायतें आने पर सम्राट्ने मलिक-उल-हुकमाँको झगड़ा निपटानेको भेजा ही था कि क़ाजी जलालका विद्रोह प्रारंभ हो गया और विद्रोहियों द्वारा व्यापारीकी धन-सम्पत्ति लुट जाने पर वह अपने इलाकेमें होकर सम्राट्के पास भाग गया।

१८—भारतमें दुर्भिक्ष

सम्राट्के मअबर (कर्नाटक) की राजधानीकी ओर जानेके पश्चात् भारतमें ऐसा घोर दुर्भिक्ष पड़ा कि एक मन अनाज दिरहमका मिलने लगा। जब भाव इससे भी अधिक मंहँगा हो गया तो लोगोंकी विपत्तिका ठिकाना न रहा।

एक बार वज़ीरसे भेंट करने जाते समय मैंने तीन स्त्रियोंको महोनोंके मरे हुए घोड़ेकी खाल काट मांस खाते देखा। इन दिनों लोगोंकी यह दशा थी कि ख़ालोंको पका पकाकर बाज़ारमें बेचते थे और गायोंके वधके समय चूती हुई रुधिर-धारा तकको पी जाते थे। (मुसलमान धर्ममें रुधिर पीना हराम है।)

कुछ खुरासानी विद्यार्थी तो मुझसे यह कहते थे कि हमने हाँसी और सिरसेके बीच 'अगरोहा'[1] नामक नगरमें यह दृश्य देखा कि समस्त नगर तो वीरान पड़ा हुआ था परंतु एक घरमें, जहाँ हम रात्रि बितानेको घुस गये थे, एक पुरुष अन्य मृत पुरुषकी टाँग अग्निमें भून भूनकर खा रहा है।

जनताका असीम कष्ट देख सम्राट्ने समस्त दिल्ली-निवासियोंको छः छः महीनेके निर्वाहके लिए पर्याप्त अन्न देनेकी आज्ञा दी। सम्राट्के इस आदेशानुसार मुंशियोंको लिये हुए काज़ी मुहल्ले-मुहल्ले और कूँचे-कूँचे फिर फिर कर लोगोंके नाम लिख डेढ़ रतल प्रतिदिनके हिसाबसे छः छः महीनेके लिए पर्य्याप्त अन्न प्रत्येकको देते जाते थे।

इसी समय में भी सम्राट् कुतुब-उद्दीनके मक़बरेके धर्मार्थ भोजनालय (लंगर) में भोजन बाँटा करता था। लोग भी

---

(१) अगरोहा—हिसार और फ़तेहाबादकी सड़कपर हिसारसे १३ मीलकी दूरीपर स्थित है। किसी समय तो यह ख़ासा नगर था परन्तु इस समय एक गाँव मात्र है। अग्रवाल वैश्य अपनी उत्पत्ति इसी स्थानसे बताते हैं। कहावत है कि किसी अन्य नगरसे अग्रवालके यहाँ आने पर नगरका प्रत्येक अग्रवाल उसको एक एक ईंट और एक एक पैसा दे गृह-निर्माण तथा लक्षपति होनेके लिए प्रचुर सामग्री दे देता था। यहाँके खँडहरोंपर पटियाला राज्यके किसी अधिकारी द्वारा निर्मित प्राचीन दुर्गके ध्वंसावशेष अब भी वर्त्तमान हैं।

फिर धीरे धीरे सँभलने लगे। और ईश्वरने मुझे इस परिश्रम और प्रेमका बदला दिया।

सातवाँ अध्याय

निज वृत्तान्त

१—राजभवनमें हमारा प्रवेश

यहाँ तक मैंने सम्राट्के समय तकको घटनाओंका वर्णन किया है। इसके पश्चात् मैं अब अपना निजी वृत्तान्त, अर्थात् मैंने किस प्रकार सम्राट्की सेवा प्रारंभ की, किस प्रकार उसको छोड़ सम्राट्की ओरसे चीन देशकी यात्रा की, और फिर वहाँसे किस प्रकार अपने देशको लौटा—ये सभी घटनाएँ विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा।

सम्राट्की राजधानी दिल्ली पहुँचने पर हम सब राजभवनकी ओर चले और महलके प्रथम और द्वितीय द्वारोंको पार-कर तृतीय द्वारपर पहुँचे। यहाँ नक़ीब (घोषक), जिनका वर्णन मैं पहले ही कर आया हूँ, बैठे हुए थे। हमारे यहाँ आते ही एक नक़ीब उठा और हमको एक विस्तृत चौकमें ले गया जहाँ पर 'ख़्वाजा जहाँ' नामक वज़ीर हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे।

वज़ीर महाशयके निकट जानेके पश्चात् तृतीय द्वारमें प्रवेश करने पर हमको हज़ारसतून (सहस्रस्तंभ) नामक बड़ा दीवानख़ाना दिखाई दिया। इसी स्थानपर बैठकर सम्राट् साधारण दरबार किया करता है।

हम लोगोंने यहाँ इस क्रमसे प्रवेश किया—सबसे आगे तो खुदावन्दज़ादह ज़ियाउद्दीन थे, तत्पश्चात् उनके भ्राता क़वाम-उद्दीन और उनके पश्चात् सहोदर इमाद-उद्दीन, फिर मैं और मेरे बाद ख़ुदावन्दज़ादहके भ्राता बुरहान-उद्दीन, तत्पश्चात् अमीर मुबारक समरक़न्दी और फिर अरनी बुग़ा तुर्की, उनके पीछे खुदावन्दज़ादहका भांजा और फिर बदर-उद्दीन क़फ़्फ़ाल थे।

सबसे प्रथम वज़ीर महोदयने इतना झुककर वंदना की कि उनका मस्तक धरतीके निकट आगया। तत्पश्चात् हम लोगोंने वंदना की, यद्यपि हम केवल रुकूअ (अर्थात् घुटनोंपर हाथ रखकर नमाज़ पढ़नेके समय जिस प्रकार झुकते हैं उसी तरह) झुके थे तथापि हमारी उँगलियाँ तक पृथ्वीके निकट पहुँच गयीं। प्रत्येक आगन्तुकको इसी प्रकारसे सम्राट्के सिंहासनकी वंदना करनी पड़ती है। हमारे सबके इस प्रकार वंदना कर चुकने पर चोबदारने उच्च स्वरसे "बिस्मिल्लाह" उच्चारण किया और हम बाहर आगये।

२—राजमाताके भवनमें प्रवेश

सम्राट्की माताको "मख़दूमे जहाँ" कह कर पुकारते हैं। यह बहुत वृद्धा हैं और सदा दान-पुण्य करती रहती हैं। इन्होंने बहुतसे ऐसे मठ (ख़ानकाह) निर्मित करवाये हैं, जहाँ यात्रियोंको धर्मार्थ भोजन मिलता है। राजमाताके नेत्र ज्योति-विहीन हैं। कहा जाता है कि इनके पुत्रको राज्य-सिंहासन मिलने पर जब अमीर तथा उच्च पदाधिकारियोंकी स्त्रियाँ इनकी वंदना करने आयीं तो अपने स्वर्ण-सिंहासन तथा आगन्तुक स्त्रियोंके रंग-बिरंगे रत्नजटित वस्त्रोंकी

आभासे इनके नेत्रोंको ज्योति जाती रही। भाँति भाँतिकी औषधि और उपचार करने पर भी यह ज्योति पुनः न आयी।

सम्राट् इनको बड़े आदर तथा पूज्य दृष्टिसे देखता है। कहा जाता है कि एक बार यह सम्राट्के साथ कहीं बाहर यात्राको गयी थीं परंतु सम्राट् कुछ दिन पहिले ही लौट आया। तदुपरान्त जब यह राजधानीमें पधारीं तो सम्राट् स्वयं इनकी अभ्यर्थनाको गया और इनके आने पर घोड़ेसे उतर पड़ा। इनके शिविकारूढ़ होने पर सब लोगोंके सामने उसने इनका पद-चुम्बन किया।

हाँ, तो मैं अब अपने कथनपर आता हूँ। राजभवनसे लौटने पर वज़ीर महाशयके साथ हम सब अन्तःपुरके द्वारकी ओर गये। मख़दूमे-जहाँ इसी गृहमें रहती हैं। द्वारपर पहुँचते ही हम सब अपने घोड़ोंसे उतर पड़े। इस समय हमारे साथ बुरहान-उद्दीनके पुत्र क़ाज़ी उलकुज़्ज़ात जमाल-उद्दीन भी थे। द्वारपर हम सबने भी क़ाज़ी तथा वज़ीर महोदयकी भाँति वंदना की।

हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी सामर्थ्यानुसार राज-माताके लिए कुछ न कुछ भेंट लाया था। द्वारस्थ मुंशीने हमारी इन भेंटोंको लिख लिया। इसके पश्चात् कुछ बालक बाहर आये और इनमेंसे सबसे बड़ा लड़का कुछ कालतक वज़ीर महोदयसे धीरे धीरे कुछ बात कर पुनः प्रासादकी ओर चला गया। इसके बाद वज़ीरके पास दो दास और आये और पुनः महलोंमें चले गये। अबतक हम खड़े थे। अब हमको एक दालानमें बैठनेकी आज्ञा हुई। इसके पश्चात् भोजन आया और फिर वहाँ सुवर्णके लोटे, रकाबी, प्याले, बड़े बड़े पतीलोंकी भाँति बने हुए स्वर्णके मटके तथा

घड़ौंचियां लाकर रखी गयीं और दस्तरख़्वान बिछा दिये गये। प्रत्येक दस्तरख़्वानपर दो पंक्तियाँ थीं। प्रत्येक पंक्तिमें सर्वश्रेष्ठ अतिथिको प्रथम आसन दिया जाता है।

दस्तरख़्वानकी ओर अग्रसर होनेके बाद हाजिबों तथा नक़ीबोंके वंदना करने पर हम लोगोंने भी वंदना की। सर्वप्रथम शरबत आया, शरबत पीनेके पश्चात् हाजिबोंके 'बिस्मिल्लाह' उच्चारण करने पर हमने भोजन प्रारम्भ किया। भोजनके पश्चात् नबीज़ (अर्थात् मादक शर्बत) आया और तदुपरान्त पान दिये गये और हाजिबोंके पुनः 'बिस्मिल्लाह' उच्चारण करते ही हम सबने पुनः वंदना की।

अब हमको अन्यत्र ले जाकर 'ज़रे-बफ़्' (अर्थात् सुनहरी कामकी मखमल) की ख़िलअतें प्रदान की गयीं। हमने पुनः महलके द्वारपर आ वन्दना की, तथा हाजिबोंने 'बिस्मिल्लाह' उच्चारण किया। वज़ीर महाशयके यहाँ रुकनेके कारण हम भी रुक गये और इस प्रकारसे थोड़ा ही समय बीता होगा कि महलके भीतरसे पुनः रेशम-कताँ तथा रुईके बिना सिले हुए थान आये। इनमेंसे हममेंसे प्रत्येकको कुछ कुछ भाग दिया गया।

तदुपरान्त स्वर्ण-निर्मित तीन थालियाँ आयीं। एकमें शुष्क मेवा था, दूसरीमें गुलाब और तीसरीमें पान। जिसके लिए ये चीजें आती हैं, वह इस देशकी प्रथाके अनुसार एक हाथमें थाली ले दूसरे हाथसे पृथ्वीका स्पर्श करता है। वज़ीर महोदयने प्रथम थाली अपने हाथमें लेकर मुझको किस प्रकारका आचरण करना चाहिये यह भलीभाँति समझाया और वैसा करनेके उपरान्त हम सब उस गृहकी ओर चलदिये जो हमारे ठहरनेके लिए नियत किया गया था।

यह गृह नगरमें पालम दरवाजेके पास था। यहाँ पहुँचने पर मैंने फ़र्श, बोरिया, बर्त्तन, खाट, बिछौना इत्यादि सभी आवश्यक चीजें प्रस्तुत पायीं। इस देशकी चारपाइयाँ बहुत ही हलकी होती हैं। प्रत्येक पुरुष इनको बड़ी सुगमता-से उठा सकता है। यात्रामें भी प्रत्येक पुरुष चारपाई सदा अपने साथ रखता है। यह काम दासके सुपुर्द रहता है। वही इसको स्थान स्थानपर ले जाता है।

खाटोंके चारों पाये गाजरके आकारके (अर्थात् सूला-कृति) होते हैं और इनमें चार लकड़ियाँ लम्बाई तथा चौड़ाईमें ठुकी रहती हैं। रेशम या रुईकी रस्सियोंसे ये बुनी जाती हैं। ठंडी होनेके कारण शयनके समय इन्हें गीली करनेकी आवश्यकता नहीं होती।

हमारी चारपाईपर रेशमके बने हुए दो गद्दे, दो तकिये और एक लिहाफ था। इस देशमें गद्दों, तकियों तथा लिहाफों-पर कताँ या रुईके बने हुए श्वेत गिलाफ चढ़ानेकी प्रथा है। ग़िलाफ मैला हो जाने पर धो दिया जाता है और गद्दे आदिक भीतरसे सुरक्षित रहते हैं।

हमारे यहाँ आते ही प्रथम रात्रिमें ख़रास (अर्थात् आटे वाला) और क़स्साब (मांस बेचनेवाला कसाई) हमारे पास भेजे गये और हमको प्रतिदिन इन दोनों पुरुषोंसे नियत परिमाणमें आटा तथा मांस लेनेका आदेश होगया। इन दोनों पदार्थोंके यथावत् परिमाण तो मुझे इस समय याद नहीं रहे परन्तु इतना अवश्य कह सकता हूँ कि इस देशमें ये दोनों पदार्थ समान मात्रामें दिये जाते हैं।

उपर्युक्त आतिथ्यका प्रबन्ध राज-माताकी ओरसे था। आतिथ्यकी सम्राट्के वर्णन अन्यत्र दिया जायगा।

३—राज-भवनमें प्रवेश

इसके पश्चात् राजभवनमें जाकर हमने वज़ीरको प्रणाम किया और उन्होंने मुझको दो थैलियोंमें दो सहस्र दीनार सर शुस्ती (अर्थात् सिर धोनेका उपहार) के लिए देनेके अनन्तर एक रेशमी खिलअत भी प्रदान की। मेरा इस प्रकार सम्मान कर वज़ीर महोदयने मेरे अनुयायियों तथा दास और भृत्योंके नाम लिख इनको चार श्रेणियोंमें विभक्त किया। प्रथम श्रेणीवालोंको दो-दो सौ दीनार, द्वितीय श्रेणीवालों-को डेढ़-डेढ़ सौ, तृतीय श्रेणीवालोंको सौ-सौ और चतुर्थ श्रेणीवालोंको पचहत्तर पचहत्तर दिये। मेरे साथ सब मिला-कर कोई चालीस आदमी थे और इन सबको कोई चार सहस्र दीनार मिले होंगे।

इसके पश्चात् सम्राट्की ओरसे भोज देनेका आदेश होने पर एक हज़ार रतल आटा और इतना ही मांस भेजा गया। आटेका एक तृतीयांश तो मैदा था और शेष बिना छना हुआ आटा। इसके अतिरिक्त शक्कर, घी तथा फोफिल (सुपारी) भी कई रतल[1] आयी पर इनका ठीक ठीक परिमाण मुझे स्मरण नहीं रहा। हाँ तांबूल संख्यामें एक सहस्र अवश्य थे।

---

(१) 'भारतीय रतल' से बतूताका आशय तत्कालीन प्रचलित 'मन' से है। यह आजकलके १४½ सेरके बराबर होता था। परन्तु फरिश्ताके कथनानुसार यह प्राचीन मन आधुनिक १२ सेरके बराबर था। यही लेखक अलाउद्दीन खिलज़ीके समय एक मन चालीस सेरका और प्रत्येक सेर २४ तोलेका बताता है। परन्तु प्रश्न यह है कि तोलेकी क्या तौल थी? वह आधुनिक तोलेके ही बराबर था या इससे कुछ न्यूनाधिक?

भारतीय रतल बीस पश्चिमीय तथा पच्चीस मिश्र देशीय रतलके बराबर होता है।

ख़ुदावन्दज़ादहके भोजनके लिए चार सहस्र रतल आटा, इतना ही मांस तथा अन्य आवश्यक पदार्थ भेजे गये।

४—मेरी पुत्रीका देहावसान और अंतिम संस्कार

यहाँ आनेके डेढ़ महीनेके पश्चात् मेरी पुत्रीका प्राणान्त हो गया। इसकी अवस्था एक वर्षसे भी कम थी। सूचना पाते ही वज़ीरने पालम दरवाज़ेके बाहर इब्राहीम कूनवीके मठके निकट अपने बनवाये हुए मठमें इसको गाड़नेकी आज्ञा दी। उसने इस घटनाकी सूचना सम्राट्को भी भेजी और इस पड़ावके दूरीपर होते हुए भी उसका उत्तर दूसरे ही दिन संध्या समय आ गया।

इस देशमें तीसरे दिन प्रातःकाल होते ही मृतककी क़ब्रपर जानेकी परिपाटी चली आती है। क़ब्रपर फूल रख चारों ओर रेशमी वस्त्र तथा गद्दे बिछा दिये जाते हैं। फूल प्रत्येक ऋतुमें मिलते हैं। साधारणतया चम्पा, यासमन (माधवी), शब्बो (पीला फूल विशेष), रायबेल (श्वेत पुष्प विशेष) और चमेलीके (श्वेत तथा पीत दोनों प्रकारके) पुष्प ही कब्रोंपर बखेरे जाते हैं। इसके अतिरिक्त, कब्रोंपर नीबू तथा नारंगियोंकी फलयुक्त डालियाँ भी धर दी जाती हैं। फल न होने पर शाखाओंमें विविध प्रकारके मेवे डोरेसे बाँध दिये जाते हैं। प्रत्येक पुरुष अपनी अपनी कुरान लाकर यहाँ पाठ करता है। इसके बाद उपस्थित व्यक्तियोंको गुलाब पिलाते हैं और उनपर गुलाब ही छिड़कते हैं। फिर पान देकर सबको बिदा कर देते हैं।

तीसरे दिन प्रातः काल होते ही मैं भी परिपाटीके अनुसार समस्त पदार्थ यथाशक्ति एकत्र कर बाहर निकला ही था कि मुझे यह सूचना मिली कि वज़ीरने क़ब्रपर स्वयं सब पदार्थ एकत्र कर डेरा लगवा दिया है। वहाँ जाकर जो देखा तो सिन्धु प्रान्तमें हमारी अभ्यर्थना करनेवाले हाजिब शम्स-उद्दीन फ़ोशिन्जी और क़ाज़ी निजाम-उद्दीन करवानी तथा नगरके समस्त गण्यमान्य पुरुष वहाँ उपस्थित थे। यह भद्र पुरुष मेरे आनेसे प्रथम ही वहाँ पहुँच कर कुरानका पाठ कर रहे थे और हाजिब इनके संमुख खड़ा था। मैं भी अपने साथियों सहित क़ब्रपर जा बैठा। पाठके अनंतर क़ारियोंने (अर्थात् कुरानका शुद्ध स्वरसे पाठ करनेवालोंने) बड़े सुन्दर शब्दोंमें कलाम अल्लाह (कुरान) का पाठ किया। तत्पश्चात् क़ाज़ीने खड़ा हो एक मरसिया (अर्थात् शोकमयी कविता जो मृत्युके अवसर पर पढ़ी जाती है) पढ़ा और सम्राट्की वंदना की। सम्राट्का नाम आते ही समस्त उपस्थित जनता खड़ी हो उसी प्रकारसे वंदना कर फिर बैठ गयी। अंतमें क़ाज़ीने दुआ माँगी (अर्थात प्रार्थना की) और हाजिब तथा उसके साथियोंने गुलाबके शीशे ले लोगोंपर छिड़का और मिसरीका शरबत पिला तांबूल बाँटे।

अब मुझको तथा मेरे साथियोंको ग्यारह खिलअतें सम्राट्की ओरसे प्रदान की गयीं और हाजिब घोड़ेपर सवार हो राजभवनकी ओर चल दिया। हम भी उसके साथ साथ वहाँ गये और राजसिंहासनके निकट जा परिपाटीके अनुसार वंदना की।

इसके पश्चात् जब मैं निवासस्थानपर आया तो मालूम हुआ कि दिन भरका सारा भोजन राज-माताके भवनसे आया

हुआ धरा है। यह भोजन सबने किया। दीन-दुखियोंको भी खूब बाँटा गया और फिर भी बहुतसी रोटियाँ, हलुआ, चीनी, मिसरी इत्यादि चीजें बच रहीं और कई दिनों तक पड़ी रहीं। यह सब सम्राट्की आज्ञासे किया गया था।

कुछ दिन पश्चात् मख़दूमे-जहाँ अर्थात् राजमाताके घरसे डोला आया। इस देशकी स्त्रियाँ और कभी कभी पुरुष भी इस सवारीमें बैठते हैं। यह आकारमें रेशम अथवा रुई (सूत) की डोरी द्वारा बुनी हुई चारपाईके सदृश होता है। इसके ऊपर एक लकड़ी होती है जो ठोस बाँसको टेढ़ा कर बनायी जाती है। चारपाई इस लकड़ीमें लटकती रहती है। और इस बाँसको चार चार पुरुष क्रमसे इस प्रकार उठाते हैं कि जब आधे पुरुष भार-वहन करते हैं तो उस समय शेष आधे खाली रहते हैं। जो कार्य मिश्र देशमें गदहोंसे लिया जाता है वही भारतमें डोलियों द्वारा संपादित होता है। बहुतसे पुरुषोंका निर्वाह इसी व्यवसायपर निर्भर है। वैसे तो डोलियाँ दासों द्वारा वहन की जाती हैं परन्तु दास न होने पर कियायेपर बहुतसे पुरुष नगरमें राजभवन तथा अमीरोंके द्वारके पास और बाज़ार इत्यादिमें मिल जाते हैं। इन लोगोंकी जीविका इसी कार्य द्वारा चलती है। कोई भी व्यक्ति इनको किरायेपर डोलियाँ उठवानेके लिए ले जा सकता है। जिन डोलियोंमें स्त्रियाँ बैठती हैं उनपर रेशमी पर्दे पड़े रहते हैं।

राजमाताके डोलेपर भी रेशमी पर्दा पड़ा हुआ था। अपनी मृतक पुत्रीकी माताको इसमें बिठा और उपहारस्वरूप एक तुर्की दासी साथ कर मैंने डोला पुनः राजभवनकी ओर भेज दिया। रात्रिभर अपने पास रख राजमाताने मेरी दासी-स्त्रीको अगले दिन एक सहस्र मुद्रा, स्वर्णके जड़ाऊ कड़े, स्वर्णहार,

ज़रदोज़ी कताँका कुर्ता और सुनहरी कामदार रेशमकी ख़िलअत तथा अन्य कई प्रकारके सूती वस्त्रोंके थान देकर बिदा किया। सम्राट्के दूत मेरे रत्ती रत्ती वृत्तान्तकी सूचना सम्राट्को देते रहते थे। इस कारण, अपनी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए, मैंने ये वस्तुएँ अपने मित्रों तथा ऋणदाताओंको दे डालीं।

सम्राट्ने अब मुझको पाँच सहस्र दीनारकी वार्षिक आयके कुछ गाँव जागीरमें दिये जानेका आदेश दिया। सम्राट्की आज्ञानुसार वज़ीर और उच्च न्यायाधिकारियोंने मेरे लिए बावली, बसी, और बालड़ा नामक गाँवका अर्ध भाग इस कार्यके लिए नियत किया। ये सभी ग्राम दिल्लीसे सोलह कोसकी दूरीपर हिन्द-पत[1]की 'सदी' में स्थित थे। सौ ग्रामोंके समूहको इस देशमें सदी कहते हैं। प्रत्येक सदीपर एक "चौतरी" (चौधरी) होता है। कोई बड़ा हिन्दू इस पदपर नियत किया जाता है। इसके अतिरिक्त कर-संग्रहके लिए "मुतसर्रिफ़" भी नियत किया जाता है।

इसी समय बहुतसी हिन्दू स्त्रियाँ भी लूटमें आयी थीं। वज़ीरने इनमेंसे दस दासियाँ[2] मेरे पास भेज दीं। मैंने इनमेंसे एक दासी लानेवाले पुरुषको देना चाहा परन्तु उसने

---

(१) हिंदपत—सम्भव है, आधुनिक सोनपत या सम्पतको ही बतूताने 'हिंदपत' लिख दिया हो। 'बावली' नामक उक्त गाँव भी सोन-पत-दिल्लीकी सड़कपर दिल्लीसे ५—६ मीलकी दूरीपर है। बादला नामक गाँव भी इसीके पास है। बतूताने इसको 'बालदा' लिखा है।

(२) दासी—उस समय साधारण दासीका मूल्य आठ टंक-से अधिक न था और पत्नी बनाने योग्य दासी १५ टंकको मिलती थी। मसालिकउल अबसारके लेखकका, जो बतूताका समसामयिक था, कथन है कि इन दासियोंमेंसे किसी एक सुंदर दासीके साथ विवाह कर-

लेना स्वीकार न किया। तीन छोटी छोटी दासियाँ तो मेरे साथियोंने ले लीं और शेषका हाल मुझे मालूम नहीं।

गन्दी तथा सभ्यतासे अनभिज्ञ होनेके कारण इस देशमें लूटकी दासियाँ खूब सस्ती मिलती हैं। जब शिक्षित दासियाँ ही सस्ती मिल जाती हैं तो फिर कोई व्यक्ति ऐसी दासियों-को क्यों मोल ले?

सारे देशमें हिन्दू और मुसलमान मिले हुए रहने पर भी मुसलमान हिन्दुओंपर गालिब हैं। बहुतसे हिन्दुओंने दुर्गम पर्वतों तथा अगम्य वनोंका आश्रय ले रखा है। बाँस इस देशमें खूब लम्बा होता है और इसकी शाखा-प्रशाखाएँ भी इतनी होती हैं कि अग्निका भी इनपर कुछ प्रभाव नहीं होता। ऐसे ही बाँसके गम्भीर वनोंमें जाकर हिन्दुओंने आश्रय लिया है। बाँसकी बाढ़ दुर्ग-प्राचीरोंका सा काम देती है। इसके भीतर इनके ढोर रहते हैं और खेती आदिका भी काम होता है। वर्षा ऋतुका जल भी पर्याप्त राशिमें सदा प्रस्तुत रहता है। उपयुक्त अस्त्रों द्वारा इन बाँसोंको बिना काटे कोई व्यक्ति इनपर विजय प्राप्त नहीं कर सकता।

५—सम्राट्के आगमनसे प्रथमकी ईदका वर्णन

जब ईद-उल-फ़ितर (अर्थात् रमज़ानके पश्चात्की ईद) तक भी सम्राट् राजधानीमें लौट कर न आया तो ईदके दिन ख़तीब कृष्णवस्त्र पहिन, हाथीपर सवार हो, नगरमें निकला। हाथीकी पीठपर चोकीके समान कोई चीज़ रख चारों कोनों-पर चार झंडे लगाये गये थे।

नेकी प्रथा भी उस समय थी। बतूताने भी ऐसी दासियोंसे अनेक विवाह समय समयपर किये थे।

ख़तीबके आगे आगे हाथियोंपर सवार मोअज़्ज़िन तकबीर पढ़ते जाते थे। इनके अतिरिक्त नगरके क़ाज़ी और मौलवी भी जलूसके साथ सवारियोंपर चढ़े ईदगाहकी राहमें सदक़ा (दान) बाँटते चले जाते थे।

ईदगाहपर रुईके कपड़ेके सायबान (शामियाना) के नीचे फर्श लगा हुआ था। सब लोगोंके एकत्र हो जाने पर ख़तीबने नमाज़ पढ़ाकर ख़ुतबा पढ़ा (अर्थात् धर्मोपदेश दिया)। तदुपरान्त और लोग तो अपने अपने घरोंकी ओर चले गये परन्तु हम राज-प्रासादमें गये। वहाँ सब परदेशियों तथा अमीरोंको सम्राट्की ओरसे भोज देनेके उपरान्त कहीं हमको अपने घर आनेका अवकाश मिला।

६—सम्राट्का स्वागत

शव्वाल नामक मासकी चतुर्थ तिथिको सम्राट्ने राजधानीसे सात मीलकी दूरीपर तलपत नामक भवनमें विश्राम किया। समाचार पाते ही वज़ीरकी आज्ञानुसार हम लोग सम्राट्की अभ्यर्थनाके लिए चल पड़े। सम्राट्की भेंटके लिए, ऊँट, घोड़े, ख़ुरासान देशके मेवे, तलवार, मिसरी और तुर्की-दुम्बे प्रत्येकके पास प्रस्तुत थे।

राजप्रासादके द्वारपर आगन्तुक सर्वप्रथम एकत्र हुए और तत्पश्चात् क्रमानुसार भीतर प्रवेश करने पर प्रत्येकको कताँकी कामदार खिलअत मिली।

अब मेरे प्रवेश करनेकी बारी आयी। मैंने सम्राट्को कुर्सीपर बैठे हुए पाया। देखने पर पहले तो मुझे वह हाजिब सा प्रतीत हुआ, परंतु उसके निकट ही अपने परिचित मलिक उल नुदमा नासिर-उद्दीन काफ़ी हरवीको खड़ा देख संदेह

दूर होगया और मैं तुरंत समझ गया कि भारत-सम्राट् यही हैं। हाजिबके वंदना करने पर मैंने भी ठीक उसी प्रकार सम्राट्की वंदना की और सम्राट्के चचाके पुत्र फीरोज़ने, जो अमीर (अर्थात् प्रधान) हाजिब था, मेरी अभ्यर्थना की। इसपर मैंने सम्राट्को पुनः वंदना की। तदुपरान्त मलिक-उल-नुदमाके 'बिस्मिल्लाह मौलाना बद्र-उद्दीन' उच्चारण करने पर मैं सम्राट्के निकट चला गया। (भारतवर्षमें मुझको लोग बद्र-उद्दीन कहा करते थे। इस देशमें प्रत्येक अरब देशीय पंडितको मौलाना कहनेकी प्रथा है। इसी कारण नासिर-उद्दीनने मुझे मौलाना बद्र-उद्दीन कहकर पुकारा।) सम्राट्ने मुझसे हाथ मिलाया और तदुपरांत मेरा हाथ अपने हाथमें ले अत्यन्त कोमल स्वरसे फ़ारसी भाषामें मुझसे कहा कि तुम्हारा आना शुभ हो, चित्त प्रसन्न रखो, तुमपर मेरी सदा कृपा बनी रहेगी। दान भी मैं तुमको इतना अधिक दूँगा कि उसका वर्णन मात्र सुनकर तुम्हारे देशभाई तुम्हारे पास आ एकत्र हो जायँगे। इसके उपरांत देशके संबंधमें प्रश्न करने पर मैंने जब अपना देश पश्चिममें बताया तो उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या तुम अमीर उल मोमनीन[1]के देशमें रहते हो? मैंने इसके उत्तरमें 'हाँ' कहा। सम्राट्के प्रत्येक वाक्यपर मैं उसका हस्त-चुम्बन करता था। सब मिलाकर मैंने उस समय सात बार हस्त-चुम्बन किया होगा। इसके पश्चात् मुझको ख़िलअत दी गयी और मैं वहाँसे लौटा।

अब समस्त नवागन्तुकोंके लिए दस्तरख़्वान बिछाया गया। प्रसिद्ध क़ाज़ी उलकुज़्ज़ात[2] सदरे-जहाँ नासिरउद्दीन

(१) अमीरउल-मोमनीनका देश—इससे 'मोराको' का तात्पर्य है।

(२) सदरे-जहाँ और क़ाज़ी-उलकुज़्ज़ात, इन दोनों पदोंपर एक ही

ख्वारज़मीं, क़ाज़ी-उल-कुज़्ज़ात सदरे-जहाँ कमाल-उद्दीन ग़ज़-नवी, और इमाद-उल-मुल्क बख़्शी तथा जलालउद्दीन केजी आदि अन्य बहुतसे हाजिब और अमीर उस समय हमारी सेवामें वहाँ उपस्थित थे। दस्तरख़्वानपर तिरमिज़के क़ाज़ी ख़ुदावन्दज़ादह क़ाज़ी क़वाम-उद्दीनके चचाके पुत्र, ख़ुदा वन्दज़ादह ग़यासउद्दीन भी उपस्थित थे। सम्राट् इनको बहुत आदर और सम्मानकी दृष्टिसे देखता था; यहाँ तक कि वह उन्हें भाई कह कर पुकारा करता था। यह महाशय अपने देशसे कई बार सम्राट्के पास आये थे।

उस दिन परदेशियोंमेंसे निम्न लिखित व्यक्तियोंको ख़िल-अत दी गयी। प्रथम तो ख़ुदावन्दज़ादह क़वाम-उद्दीन और उनके भ्राता ज़िया-उद्दीन, इमाद-उद्दीन और बुरहान-उद्दीनने ख़िलअत पायी। तदुपरांत उनके भांजे अमीर बख़्त बिन सय्यद ताज-उद्दीनका भी इसी प्रकार सम्मान किया गया। इनके दादा वजीह-उद्दीन ख़ुरासान देशके वज़ीर थे और मामा अला-उद्दीन भारतमें अमीर तथा वज़ीर थे। फ़ालकिया नामक ज्योतिषविद्यालय स्थापित करनेवाले ईराक़ देशके उप-मंत्रीके पुत्र हैबत-उल्ला इब्नुल-फ़लक़ीको भी ख़िलअत मिली।

व्यक्तिकी नियुक्ति की जाती थी। इस पदाधिकारीको सदरअस्सुदूर भी कहते थे। समस्त दीवानीके पदाधिकारी इनकी अधीनतामें काम करते थे। मसालक-उल-अबसारके अनुसार तत्कालीन पदाधिकारी क़ाज़ी कमाल-उद्दीन, सदरे-जहाँकी जागीरकी साठ हज़ार टंक वार्षिक आय थी।

इसी प्रकार संत, साधुओं (फ़क़ीरों) के सर्वोच्च पदाधिकारीको शैख़ उल-इसलाम कहते थे। इनको भी सदरे-जहाँके बराबर ही वार्षिक आयकी जागीर दी जाती थी।

सम्राट् नौशेरवाँके मुसाहिब बहराम चोबीके वंशज और लाल (चुन्नी रत्न विशेष) तथा लाजवर्द आदि रत्नोंके उत्पादक वदख़शाँ प्रदेशकी पर्वतमालाओंके निवासी मलिक कराम तथा समरक़न्द निवासी अमीर मुबारक, अरनवग़ा तुरकी, मलिकज़ादह तिरमिज़ी और सम्राट्के लिए भेंट लानेवाले शहाबउद्दीन गाज़रौनी नामक व्यापारीको भी (जिसकी सब सम्पत्ति राहमें ही लुट गयी थी) सम्राट्ने ख़िलअत प्रदान की।

७—सम्राट्का राजधानी-प्रवेश

अगले दिन सम्राट्ने हममें से प्रत्येकको अपने निजी घोड़ोंमें से, सोने चाँदीके कामवाली ज़ीन तथा लगाम सहित, एक एक घोड़ा प्रदान किया।

राजधानीमें प्रवेश करते समय सम्राट् अश्वारूढ़ था और हम सब अपने अपने घोड़ोंपर सवार हो सदरे-जहाँके साथ उससे आगे आगे चलते थे। सम्राट्की सवारीके आगे आगे सोलह सुसज्जित हाथियोंपर निशान फहरा रहे थे। सम्राट् तथा हाथियोंके ऊपर जड़ाऊ तथा सादे सुवर्णके छत्र सुशोभित हो रहे थे, और उसके संमुख रत्न-जटित ज़ीनपोश उठाये लिये जाते थे।

किसी किसी हाथीपर छोटी छोटी मंजनीकें भी रखी हुई थीं। सम्राट्के नगरमें प्रवेश करते ही इन मंजनीक़ोंमें दिरहम तथा दीनार भर भर कर फेंके जाने लगे और सम्राट्के आगे आगे चलनेवाले सहस्रों सैनिक तथा जनसाधारण इनको उठाने लगे। राज-प्रासादतक इसी प्रकार न्योछावर होती रही। राहमें स्थान स्थानपर रेशमी वस्त्राच्छादित काठके बुर्जोंपर गानेवाली स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। परन्तु इन बातोंका

विस्तृत वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ, अतएव यहाँ दुहरानेकी आवश्यकता नहीं।

८—राजदरबारमें उपस्थिति

अगला दिन शुक्रवार था। भीतर प्रवेश करनेकी आज्ञा न आनेके कारण हम सब राज-प्रासादके दीवानख़ानेके द्वारसे प्रवेश कर तृतीय द्वारकी सहनचियों (तिदरियों) में जाकर बैठ गये। इतनेमें शमृस-उद्दीन नामक हाजिबने यह कह कर कि इन सबको भीतर प्रवेश करनेकी आज्ञा है, मुतसद्दियोंको हमारे नाम लिखनेकी आज्ञा दी और हममें से प्रत्येकके अनुगामियोंकी संख्या भी, जो उसके साथ भीतर प्रवेश कर सकते थे, नियत कर दी गयी। मुझको केवल आठ पुरुषोंको अपने साथ भीतर ले जानेका आदेश हुआ।

हम सबने अपने अपने अनुगामियों सहित भीतर प्रवेश ही किया था कि दीनारोंकी थैलियाँ तथा तराज़ू आ गये और क़ाज़ी-उल-कुज़्ज़ात तथा मुतसद्दीगण प्रत्येक परदेशीको द्वार-पर बुला बुला कर नियत भाग देने लगे। इस बाँटमें मुझे पाँच सहस्र दीनार मिले और सब मिला कर कोई एक लाख रुपया बाँटा गया। राजमाताने यह धन अपने पुत्रके राज-धानीमें सकुशल लौट आनेके उपलक्ष्यमें सदक़े (दान) के लिए निकाला था। इस दिन हम लौट गये।

इसके पश्चात् सम्राट्ने हमको कई बार बुला कर अपने दस्तरख़्वानपर भोजन कराया और बड़े मृदुल स्वरसे हमारा वृत्तांत पूछा। एक दिन तो सम्राट्ने हमसे यह कहा कि तुमने जो मेरे देशमें आनेकी कृपा की और कष्ट सहे, उनके प्रती-कारमें मैं तुमको क्या दे सकता हूँ। तुममेंसे वयोवृद्ध पुरुषों-

को मैं पितातुल्य, समवयस्कोंको भ्रातृवत् तथा छोटोंको पुत्रवत् मानता हूँ। इस नगरकी समता करनेवाला इस देशमें कोई अन्य नगर नहीं है। तुम इसको अपनी ही मिल कियत समझो। सम्राट्के ऐसे वचन सुन हमने उसको धन्यवाद दिया और उसके निमित्त ईश्वरसे प्रार्थना भी की। इसके पश्चात् हम लोगोंका पद तथा वेतन नियत किया गया। मेरा वेतन बारह हज़ार दीनार वार्षिक नियत कर, मेरी तीन गाँवोंकी पहली जागीरमें जोरह और मिलकपुर[1] नामक दो गाँव और मिला दिये गये।

एक दिन ख़ुदावन्दज़ादह ग़यासउद्दीन और सिंधु-प्रदेश-के हाकिम क़ुतुब-उल मुल्कने आकर हमसे कहा कि अख़वन्दे आलम् (सम्राट्) चाहते हैं कि योग्यता तथा रुचिके अनुसार तुम लोगोंको कोई भी कार्य दिया जा सकता है। वज़ीर, शिक्षक, मुन्शी (लेखक), अमीर या शेख़, जो पद चाहो ले सकते हो। हम लोगोंका विचार तो पारितोषिक ले अपने अपने घरोंको लौटनेका था, अतएव यह बात सुन पहले तो हम सब चुप हो रहे। परन्तु उपर्युक्त अमीरबख़्त बिन सय्यद ताज-उद्दीनने अन्तमें यह कह ही डाला कि मेरे पूर्वज तो वज़ीर थे और मैं लेखक हूँ। इन दो कार्योंके अतिरिक्त मैं किसी अन्य कार्यका सम्पादन नहीं कर सकता। हैबत-उल्ला फ़लकीने भी कुछ ऐसा ही कहा। ख़ुदावन्दज़ादहने अब मेरी ओर देख कर अरबी भाषामें पूछा कि कहिये "सैय्यदना" (अर्थात् हे सय्यद) आप क्या कहते हैं? (सम्राट्के अरब देश-वासियोंको सम्मानार्थ सय्यद कह कर पुकारनेके कारण,

---

१ मिलकपुर नामक गाँव कुतुबके पश्चिम दो-तीन मीलकी दूरीपर पहाड़ीकी दूसरी तरफ बसा हुआ है।

इस देशमें सभी अरबोंको सय्यद ही कहकर सम्बोधन करनेकी प्रथा है)।

मैंने कहा कि लेखक होना या मंत्रित्व करना मेरा कार्य नहीं है, हमारे यहाँ तो बाप-दादाके समयसे क़ाज़ी और शैख़ ही होते आये हैं। रही अमीरी अथवा सेनामें उच्च पदकी बात। उसके सम्बन्धमें तो आप भी भलीभांति जानते ही हैं कि अरब देशीय तलवारके कारण ही सभी बाह्य देशोंने मुसलमान धर्मकी दीक्षा ली है। तात्पर्य्य यह कि सैनिक हो खड्गप्रहार करना तो हमारी घुट्टीमें सम्मिलित है। सम्राट् उस समय सहस्र-स्तम्भ नामक भवनमें भोजन कर रहा था। मेरा उत्तर सुन कर वह बहुत प्रसन्न हुआ और हम सबको बुला भेजा। सम्राट्के साथ भोजन कर हम पुनः प्रासादसे बाहर आ बैठ गये। फोड़ा निकल आनेसे बैठनेमें असमर्थ होनेके कारण केवल मैं अपने घर चला आया।

तदनन्तर पुनः प्रासादमें उपस्थित होनेका सम्राट्का आदेश होते ही मेरे सब साथी भीतर गये और मेरी अनुपस्थितिकी क्षमा चाही। इसके पश्चात् असकी नमाज़ पढ़ कर मैं भी पुनः दीवानख़ानेमें जा बैठा, और वहीं मैंने मग़रिब (अर्थात् सूर्यास्तके पश्चात्) की नमाज़ तथा इशा (अर्थात् चार घड़ी रात बीतनेके पश्चात्) की नमाज़ पढ़ी। इतनेमें एक और हाजिबने बाहर आ हमसे कहा कि सम्राट् तुमको याद करते हैं। यह सुन सबसे प्रथम, अपने अन्य भ्राताओंमें सबसे बड़े होनेके कारण, खुदावन्दज़ादह ज़िया-उद्दीन प्रासादके भीतर गये और सम्राट्ने उसी समय उनको मीरदाद (अर्थात् प्रधान-न्यायाधीश) के पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। यह पद केवल कुलीन व्यक्तियोंको ही दिया जाता है। यह पदाधिकारी

(नित्य-प्रति) क़ाज़ी महोदयके साथ न्यायासनपर बैठ, किसी उच्च कुलोत्पन्न अमीरके विरुद्ध आरोप होने पर उसे क़ाज़ीके समक्ष उपस्थित करता है। इस पदपर पचास सहस्र वार्षिक वेतन नियत है और इतनी ही वार्षिक आयकी जागीर इस पदाधिकारीको दी जाती है।

परंतु सम्राट्ने खुदावन्दज़ादहको उसी समय पचास सहस्र दीनार दिये जानेका आदेश दिया और 'शेर-सूरत' नामक सोनेके तार युक्त रेशमी ख़िलअत भी उनको उसी समय पहिरायी गयी। (पीठ तथा वक्षःस्थलपर सिंहकी आकृति बनी होनेके कारण इस खिलअतको उक्त नाम दिया गया है, खिल-अतमें सुवर्णका कितना परिमाण है, यह बात भी उसमें लगे हुए पर्चेसे विदित हो जाती है।) इसके अतिरिक्त 'प्रथम श्रेणी' का एक अश्व भी उनको प्रदान किया गया।

अश्वोंकी इस देशमें चार श्रेणियाँ हैं और मिश्र देशकी ही भांति इनपर जीन रखी जाती है। केवल लगामोंके कुछ भागमें चाँदी लगी होती है परन्तु उसपर सोनेका मुलम्मा कर देते हैं।

इसके पश्चात् अमीरबख़्त भीतर गये। इनको वज़ीरके साथ मसनदपर बैठ दीवान उपाधिधारी पुरुषोंके हिसाब किताब देखनेका भार दिया गया। इनको चालीस सहस्र दीनार वार्षिक दिये जानेका आदेश हुआ और इसी आयकी भू-सम्पत्ति (जागीर) इनके नाम कर दी गयी। इसके अतिरिक्त चालीस सहस्र दीनार तथा उपर्युक्त प्रकारका घोड़ा और खिलअत भी उसी समय दे इनको 'अशरफ़-उल-मुल्क' की उपाधि प्रदान की गयी।

तदनंतर हैबत-उल्ला फ़लकी भीतर गये। चौबीस सहस्र

दीनार इनका वार्षिक वेतन कर दिया गया और इतनी ही वार्षिक आयकी जागीर दे, इनको सम्राट्ने रसूलदार अर्थात् हाजिबउल अरसालके पदपर प्रतिष्ठित किया। वहा-उल-मुल्ककी उपाधिसे विभूषित कर इनको भी चौवीस सहस्र दीनार उसी समय दिये गये।

अब मेरी बारी आयी। प्रासादके भीतर जा मैंने देखा कि सम्राट् तख़्तका तकिया लगाये राजभवनकी छतपर बैठा हुआ है। वजीर ख़्वाजा उसके सामने बैठा था और अमीर क़बूला पीछेकी तरफ खड़ा था। मेरे सलाम करते ही मलिके कबीरने कहा कि वंदना करो, क्योंकि अख़वन्दे आलम (संसारके प्रभु) ने तुमको राजधानी अर्थात् दिल्लीका क़ाज़ी नियत किया है। बारह सहस्र रुपया वार्षिक तुमको वेतनमें मिलेगा और इतनी ही वार्षिक आयकी जागीर तुमको प्रदान की जायगी। इसके अतिरिक्त कल तुमको बारह सहस्र दीनार राजकोषसे दिये जाने तथा जीन लगाम सहित अश्व और 'महराबी' खिलअत प्रदान करनेका भी सम्राट्ने आदेश किया है। (पीठ तथा वक्षः-स्थलपर वृत्ताकार चिन्ह बना होनेके कारण इसको मिहराबी ख़िलअत कहते हैं।)

मेरे वंदना करते ही जब 'कबीर' मेरा हाथ पकड़ कर सम्राट्के सामने ले गये, तो उसने कहा कि दिल्लीके क़ाज़ी-का पद कोई ऐसा वैसा पद नहीं है। हम इसको बड़ा महत्व देते हैं। मैं फारसी भाषा समझ तो लेता था पर बोल न सकता था और सम्राट् अरबी भाषा नहीं बोल सकता था परन्तु समझ लेता था। मैंने उत्तर दिया—"मौलाना महोदय, मैं तो इमाम मालिकका धर्म पालन करता हूँ (यह सुन्नी धर्मकी एक शाखा है) और समस्त नागरिक

हनफ़ी सुन्नियोंकी द्वितीय शाखावलंबी हैं और इसके अतिरिक्त मैं यहाँकी भाषासे भी अनभिज्ञ हूँ। इसपर सम्राट्ने अपने श्रीमुखसे पुनः कहा कि वहा-उद्दीन मुलतानी तथा कमाल-उद्दीन बिजनौरीको हमने (इसी कारण) तेरी अधीनतामें कार्य करनेको नियत कर दिया है। ये दोनों तेरे हीं परामर्शसे कार्य-सम्पादन करेंगे और समस्त दस्तावेज़ोंपर तेरी ही मुहर होगी। मैं तुझको पुत्रवत् समझता हूँ। मैंने कहा "श्रीमान मुझे अपना सेवक तथा दास समझें"।

सम्राट्ने फिर अरबी भाषामें 'अन्ता सय्यदना मखदूमना' (तुम सैयद और हमारे संरक्षक हो) कह कर शर्फ़-उल-मुल्कको आदेश कर कहा कि यह पुरुष खूब व्यय करनेवाला है, इतना वेतन इसके लिए पर्याप्त न होगा, इसलिये यदि यह साधुओंकी दशापर भी विचार करनेके लिए समय दे सके तो मेरी इच्छा एक मठका कार्य भी इसीको देने की है। यह समझ कर कि शर्फ़-उल-मुल्क भली भाँति अरबी भाषामें बातचीत कर सकता है, सम्राट्ने उसीसे यह बात मुझको समझानेको कहा। वास्तवमें यह अमीर इस भाषामें बात करनेमें नितांत असमर्थ था। सम्राट्ने यह बात जानने पर फारसी भाषामें उससे कहा 'बिरौ यकजाबे खुसपी व आं हिकायत बर ओ बिगोई व तफ़हीम कुनी, ता फरदा इन्शा अल्लाह पेशे मन बियाई व जवाबो ओ बिगोई' अर्थात् जाओ, रात्रिको एक ही स्थानपर जाकर शयन करो और इसको सब बातें समझा दो। कल इंशा अलाह (ईश्वरकी इच्छा हो तो) मेरे पास आकर सब समाचार कहना कि यह क्या उत्तर देता है।

जब हम राज-प्रासादसे लौटे तो रात्रिका तृतीयांश बीत चुका था और नौबत भी बज चुकी थी। नौबत बजनेके

पश्चात् कोई व्यक्ति बाहर नहीं निकल सकता, इस कारण हमने वज़ीरके आगमनकी प्रतीक्षा की और उसीके साथ बाहर आये। नगर द्वार बंद हो जानेके कारण यह रात्रि हमने सरापूर ख़ाँ की गलीमें, ईराक़-निवासी सय्यद अबुल हसन इबादीके ही घर रहकर व्यतीत की। यह व्यक्ति सम्राट्की ही संपत्तिसे व्यापार करता था, और उसके लिए ईराक तथा खुरासान देशसे अस्त्र तथा अन्य पदार्थ लाया करता था।

दूसरे दिन धन, घोड़े और खिलअत मिलने पर हम इस देशकी परिपाटीके अनुसार ख़िलअत कंधोंपर रख पूर्व क्रमानुसार पुनः सम्राट्की सेवामें उपस्थित हुए। तत्पश्चात् अश्वोंके सुमोंपर वस्त्र डाल चुम्बन कर हम स्वयं उनको लगाम द्वारा पकड़ राज-भवनके द्वारपर ले गये और वहाँ उनपर आरूढ़ हो अपने अपने घर लौटे।

सम्राट्ने मेरे अनुयायियोंको भी दो सहस्र दीनार तथा दस ख़िलअतें प्रदान कीं। सभी आगन्तुकोंके अनुयायियोंको उपहार दिये गये हों सो बात न थी। मेरे अनुयायी रंगरूपमें अच्छे थे और वस्त्रादि भी स्वच्छ पहिरे हुए थे, इसीसे उन्हें देख प्रसन्न हो सम्राट्ने उनको सब कुछ दिया। सम्राट्की वंदना करने पर उसने उनको भी धन्यवाद दिया।

६—सम्राट्का द्वितीय दान

क़ाज़ी नियत होनेके बहुत दिवस बीत जाने पर मैं एक बार दीवानख़ानेके चौकमें पेड़के नीचे तिरमिज़ निवासी धर्मोपदेशक मौलाना नासिर-उद्दीनके साथ बैठा हुआ था कि मौलाना को भीतरसे बुलावा आया। वहाँ जानेपर सम्राट्ने उनको ख़िलअत और मुक्ताजटित ईश्वरवाक्य (अर्थात् कुरान) कृपा

कर प्रदान किया। इतनेमें एक हाजिब दौड़ा हुआ मेरे पास आय और कहने लगा कि सम्राट्ने आपके लिए भी बारह सहस्र दीनारका पारितोषिक देनेकी आज्ञा दी है। यदि आप मुझको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करें तो मैं 'छोटी-चिट्ठी' अभी ला सकता हूँ। हाजिब तो सत्य ही कह रहा था परन्तु मैंने यही समझा कि यह छल-कपट द्वारा मुझसे कुछ ऐंठा चाहता है। फिर भी मेरे एक मित्रने उसको 'पत्र' लाने पर दो दीनार देनेकी प्रतिज्ञा की: बस फिर क्या था, वह जाकर तुरन्त ही 'छोटी-चिट्ठी' ले आया।

इस चिट्ठीमें यह लिखा रहता है कि अख़वन्दे-आलमकी आज्ञा है कि अमुक पुरुषको अमुक हाजिबके पहिचाननेपर अनंत कोषसे इतने परिमाणमें धनराशि दे दो।

इस चिट्ठीपर सर्वप्रथम उस पुरुषके हस्ताक्षर होते हैं जिसके पहिचानने पर रुपया मिलता है। तत्पश्चात् तीन अमीरों अर्थात् सम्राट्के आचार्य 'ख़ाने आज़म कतलू खां, ख़रीतेदार (सम्राट्का कलमदान रखनेवाला) और दवादार (सम्राट्की दवात रखनेवाला) अमीर नक़बा के हस्ताक्षर होते हैं। इतने हस्ताक्षर हो जाने पर यह चिट्ठी मंत्रिविभागके दीवानके पास जाती है। वहाँ मुत्सद्दी इसकी प्रतिलिपि ले लेते हैं और तत्पश्चात् दीवान अशराफ़में और फिर दीवान-उल नज़रमें इसको प्रतिलिपि हो जाने पर, वज़ीर कोषाध्यक्षको धन देनेका आज्ञापत्र लिखता है। कोषाध्यक्ष उसको अपनी पुस्तकमें लिख प्रत्येक दिनके आज्ञापत्रोंका चिट्ठा बना सम्राट्-की सेवामें भेजता है।

तुरन्त दान देनेकी सम्राट्की आज्ञा होनेपर रुपया मिलनेमें कुछ भी देर नहीं लगती, उसी समय धन मिल जाता है।

परंतु यह आज्ञा होने पर कि विलंबसे भी कोई हानि न होगी, रुपया तो मिल जाता है परंतु बहुत विलंबसे। उदाहरणार्थ, मुझको ही यह पारितोषिक अन्यत्र वर्णित दानके साथ कोई छः मास पश्चात् मिला।

भारतवर्षकी ऐसी परिपाटी है कि दानका दशमांश राजकोषमें ही काट कर शेष रुपया लोगोंको मिलता है; यथा एक लाखकी आज्ञा होने पर नव्वे हज़ार और दश सहस्रकी आज्ञा होने पर केवल नौ सहस्र ही मिलते हैं।

१०—महाजनोंका तक़ाज़ा और सम्राट् द्वारा ऋणपरिशोधका आदेश

मैं ऊपर ही यह लिख चुका हूँ कि मेरा समस्त मार्गव्यय, सम्राट्की भेंटका मूल्य और तत्पश्चात् जो कुछ भी ख़र्च हुआ वह सब मैंने व्यापारियोंसे ऋण लेकर किया। जब इन लोगोंके स्वदेश जानेका समय आया तो इनसे तंग आकर मैंने सम्राट्की प्रशंसामें एक "क़सीदा" (अर्थात् प्रशंसात्मक कविता) लिखा जिसकी प्रथम पंक्ति तथा अन्य प्रारंभिक पद यह हैं—

इलैका अमीरुल मोमनीं अलमुवजला।
अतैना नजद्दुस्सैरो नह्का फ़िल फ़ुला ॥१॥
फ़ज़ैता मेहलन मिन अलायका ज़ायरा।
व मुग़नाका कहफ़ा लिज़्ज़ियाते अहला ॥२॥
फ़लौ अन फ़ौक़श्शमस लिलमजदे रुतबन।
लकुंता ले आलाहा इमामन मुहैला ॥३॥
फ अन्तलइमामल माजैदो इन्ना वहदह्लज़ी।
सजायाहो हतमन अयीं यकूलो वयफ़्अला ॥४॥

वली हाज तुन मिन फ़ैज़े जुदेका अरतजी ।
क़ज़ाहा वक़सदी इन्दा मजदेका सहला ।.५।।
अअ़ज़ कुरोदा अमक़द कफ़ानीहयाओकुम ।
फ़इन हयाकुम ज़िकर हू काना अजमला ।।६।।
फ़अ़ज्जिल लमन व अ़फ़ा महल काज़ाअरा ।
क़ज़ा दैनहू इब्नल अ़ज़ीमा तअजला ।.७।।

[तेरे पास, हे अमीरुल मोमनीन ! (मुसलमानोंके सम्राट्) इस दशामें कि आदर करनेवाला हूँ—आया हूँ—और यत्न करता हूँ तेरी ओर आनेका जंगलोंमें ।।१।। मैं तेरी ओर ऊपर-की दिशासे उतरने वाला हूँ और वह भी दर्शनके लिए, क्योंकि दर्शनार्थियोंको तेरा दान और धन्यवाद-योग्य आश्रय मिलता है ।।२।। यदि मेरे पदके ऊपर भी कोई और पद दान करने योग्य होता तो मुबारक इमाम होनेके कारण तू इससे भी ऊँचा चला आता ।।३।। हेतु इसका यह है कि संसारमें केवल तू ही एक अद्वितीय इमाम है—और प्रतिज्ञाको पूर्ण करना तेरा स्वभाव है ।।४।। मेरी भी एक प्रार्थना है—और उसके पूर्ण होनेकी आशा तेरी दयापूर्ण दान-भिक्षापर अवलंबित है—तेरी दानशीलताके संमुख मेरा मनोरथ अत्यंत ही तुच्छ है ।।५।। मैं (अपना मनोरथ) तुझसे क्या वर्णन करूँ—मेरे लिए तो तेरी 'दया' ही काफ़ी है—तेरी दयाके नज़दीक मुझसे प्रार्थीका संक्षिप्त रूपसे यह संकेत मात्र ही पर्याप्त होगा ।.६।। आशाएँ पूर्ण कर दे-इष्ट देवके समान तेरी ज्यारत करनेसे मेरा तात्पर्य ही यह है कि मेरा ऋण दूर हो जाय । ऋणदाता तक़ाज़ा कर रहे हैं ।]

एक दिन सम्राट् कुर्सीपर बैठा हुआ था कि मैंने यह क़सीदा सेवामें उपस्थित किया । सम्राट्ने उसको अपनी

जंघापर रख, एक सिरा अपने हाथसे पकड़ लिया और दूसरा मेरे ही हाथमें रहा। मैंने एक एक शेर पढ़ना प्रारम्भ किया और क़ाज़ी-उल कुज़्ज़ात कमालउद्दीन उसका अर्थ करते जाते थे जिसको सुनकर सम्राट् अत्यन्त प्रसन्न होता था। भारतीय कवि (मुसलमानोंसे तात्पर्य है) अरबीसे बहुत प्रेम करते हैं। सातवाँ शेर पढ़ने पर सम्राट्ने अपने श्रीमुखसे "मरहमत" शब्दका उच्चारण किया जिसका अर्थ यह होता है कि मैंने तुमपर कृपा की।

इस पर हाजिब मेरा हाथ पकड़ कर अपने खड़े होनेके स्थलपर सम्राट्की वंदना करनेके लिए ले जाना चाहते थे कि सम्राट्ने उनको मुझे छोड़ने और प्रशंसात्मक कविता (कसीदा) को अंततक पढ़नेकी आज्ञा दी। सम्राट्के आदेशानुसार मैंने पहले तो कविता अंततक पढ़ सुनायी और तदनंतर उनकी वंदना की। इसपर लोगोंने मुझको खूब सराहा।

परन्तु बहुत काल बीत जाने पर भी, जब मुझको कुछ पता न चला तो मैंने सम्राट्की सेवामें सिंधु देशके हाकिम कुतुबउल मुल्क द्वारा एक प्रार्थनापत्र भेजा। सम्राटके संमुख आने पर उसने उसे वज़ीर ख़्वाजा जहाँके पास ऋण चुकवा देनेकी आज्ञा दे भेज दिया। कुतुब-उल मुल्कने जाकर सम्राट् का आदेश वज़ीरको सुना दिया परंतु उसके 'हाँ' कर लेने पर भी कुछ फल न हुआ। इन्हीं दिनों सम्राट्ने दौलताबादकी यात्राका आदेश निकाल दिया और स्वयं कुछ दिनके लिए वज़ीरके साथ बाहर आखेटको चल दिया, इस कारण मुझे बहुत काल बीते यह पारितोषिक मिला। अब मैं विलम्ब होनेके कारणोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ।

मेरे ऋणदाताओंकी यात्राका समय आने पर मैंने उनको

यह सुझाया कि मेरे राज-प्रासादकी ड्योढ़ीमें प्रवेश करते ही तुम इस देशकी परंपराके अनुसार सम्राट्की दुहाई देना। ऐसा करने पर बहुत संभव है कि सम्राट्को भी इसकी सूचना मिल जाय और वह तुम्हारा ऋण चुका दे।

इस देशमें कुछ ऐसी प्रथा है कि किसी बड़े पुरुषके ऋण चुकानेमें असमर्थ होने पर ऋणदाता राज-द्वारपर आकर खड़े हो जाते हैं, और ऋणीको, उच्चस्वरसे सम्राट्की दुहाई तथा शपथ देकर, विना ऋण चुकाये भीतर प्रवेश करनेसे रोकते हैं। ऐसे समयमें ऋणीको या तो विवश होकर सब चुकाना ही पड़ता है या अनुनय-विनय द्वारा कुछ समय लेना पड़ता है।

हाँ, तो एक दिन जब सम्राट् अपने पिताकी क़ब्र पर दर्शनार्थ गया और वहींपर एक राज-प्रासादमें जाकर ठहरा, तो मैंने अवसर देख अपने ऋणदाताओंको संकेत कर दिया। इसपर उन्होंने मेरे राज-भवनमें प्रवेश करते ही, उच्च स्वरसे सम्राट्की दुहाई दे विना ऋण चुकाये मुझसे भीतर घुसनेका निषेध किया। ऋणदाताओंकी पुकार सुनते ही मुत्सद्दियोंने क्षण भरमें इसकी सूचना सम्राट्को लिख भेजी। धर्मशास्त्रज्ञ शमस-उद्दीन नामक हाजिबने बाहर आ उन लोगोंसे दुहाई देनेका कारण पूछा। ऋणदाताओंने इसपर कहा कि यह पुरुष हमारा ऋणी है। यह सुनते ही हाजिबने इसकी सूचना सम्राट्को दे दी। अतः सम्राट्ने पुनः हाजिबको भेज ऋणकी तादाद मालूम करनी चाही। ऋणदाताओंने मुझपर पचीस सहस्र दीनार ऋण निकाला। हाजिबने फिर जाकर सम्राट्को इसकी भी सूचना कर दी और बाहर आकर उनसे कहा कि सम्राट्का आदेश यह है कि

हम यह समस्त ऋण राज-कोषसे देंगे, तुम इस पुरुषसे कुछ न कहो।

सम्राट्ने अब इमाद-उद्दीन समनानी तथा खुदावन्द-ज़ादह ग़यास-उद्दीनको हज़ार-सतून (सहस्र-स्तम्भ) नामक भवनमें बैठ इन दस्तावेजोंका इस विचारसे निरीक्षण तथा अनुसन्धान करनेकी आज्ञा दी कि यह ऋण इस समय भी पावना है या नहीं। आज्ञानुसार ये दोनों व्यक्ति वहाँ जाकर बैठ गये और ऋणदाताओंने अपने अपने दस्तावेजोंका निरी-क्षण कराना आरम्भ कर दिया। अनुसन्धानके पश्चात् इन्होंने सम्राट्से जाकर निवेदन कर दिया कि सभी दस्तावेज ठीक हैं। यह सुनकर सम्राट्ने हँस कर कहा, क्यों नहीं, आखिर तो वह काज़ी ही है, अपना काम क्यों न ठीक ठीक करेगा। फिर उसने खुदावन्द-ज़ादहको राजकोषसे ऋण चुकानेकी आज्ञा दे दी। परन्तु घूँसके लालचके कारण उन्होंने छोटी चिट्ठी भेजनेमें देर की। यह देख मैंने सौ 'टङ्क' भी उनके पास भेजे परन्तु उन्होंने न लिये। उनका दास मुझसे पाँच सौ टङ्क माँगने लगा पर मैं इतनी रक़म देना नहीं चाहता था। अतएव मैंने यह सब बातें इमाद-उद्दीन समनानीके पुत्र अब्दुल मलिकसे जाकर कह दीं। उसने अपने पिताको और पिता-ने यह हाल जाकर वज़ीरको जतला दिया। वज़ीर तथा खुदावन्दज़ादहमें आपसका द्वेष होनेके कारण वज़ीरने सम्राट्से सब वार्ता निवेदन कर दी और साथ ही साथ कुछ और शिकायतें भी कीं। फल यह हुआ कि सम्राट्ने कुपित हो खुदावन्दज़ादहको नगरमें नज़रबन्द कर कहा कि अमुक व्यक्ति इनको घूँस किस कारणसे देता था। उसने इस बात-का अनुसन्धान करनेकी आज्ञा दीं कि खुदावन्दज़ादह घूँस

चाहते थे अथवा उन्होंने इसे लेना अस्वीकार किया। इन्हीं कारणोंसे मेरे ऋण चुकानेमें विलम्ब हुआ।

११—आखेटके लिए सम्राट्का बाहर जाना

जब सम्राट् आखेट[1]के लिए दिल्लीसे बाहर गया, उस समय मैं भी उसके साथ था। यात्राके लिए डेरा (सराचा) इत्यादि सभी आवश्यक वस्तुएँ मैंने पहिलेसे ही मोल ले रखी थीं।

इस देशमें प्रत्येक पुरुष अपना निजका डेरा रख सकता है। अमीरोंके लिए तो वह बड़ी आवश्यक वस्तु है। सम्राट्के डेरे रक्त वर्णके होते हैं और अमीरोंके श्वेत, परन्तु उनपर नील वर्णका काम होता है।

डेरेके अतिरिक्त मैंने एक सैवान (सायबान) भी मोल ले रखा था। यह डेरेके भीतर, छायाके लिए, दो बड़े बाँसोंपर खड़ा कर लगाया जाता है। यह बाँस "कैवानी"[2] नामधारी पुरुष अपने कन्धोंपर लेकर चलते हैं। भारतवर्षमें बहुधा यात्री इन कैवानियोंको किरायेपर नौकर रख लेते हैं। घोड़ोंको भूसा न देकर घास ही दी जाती है, इसलिये घास लानेवाले, रसोईघरके बर्त्तन उठाकर ले चलनेवाले कहार, डोला उठाकर

---

(१) मसालिक-उल-अबसारके लेखकके कथनानुसार आखेटको जाते समय सम्राट्के साथ एक लाख सवार और दो सौ हाथी होते थे। सम्राट्का दो-मंज़िला दो-चोबी डेरा भी दोसौ ऊटोंपर चलता था। इस बड़े डेरेके अतिरिक्त और भी राजकीय डेरे होते थे। सैरको जाते समय सम्राट्के साथ केवल तीस सहस्र सैनिक और दो सौ हाथी ही चलते थे। ऐसे अवसरोंपर सोनेकी ज़ीन तथा लगामों, और आभूषणादिसे सुसज्जित एक सहस्र ख़ाली घोड़े भी सम्राट्के साथ चलते थे।

(२) कैवानी—यह शब्द किस भाषाका है, यह पता नहीं चलता।

ले चलनेवाले पुरुष सभी मज़दूरीपर रख लिये जाते हैं। अन्तिम श्रेणीके पुरुष डेरा भी लगाते हैं, फर्श भी बिछाते हैं और ऊँटोंपर असबाब भी लादते हैं। "दवादवी" नामधारी भृत्य राहमें आगे आगे चलते हैं और रातको मशाल दिखाते जाते हैं। अन्य पुरुषोंकी भाँति मैं भी इन सब भृत्योंको मज़दूरीपर रख बड़े ठाठसे चला। जिस दिन सम्राट् नगरसे बाहर आया उसी दिन मैं भी वहाँसे चल दिया, परन्तु मेरे अतिरिक्त अन्य पुरुष तो दो-दो और तीन-तीन दिन पश्चात् नगरसे चले।

सवारी निकलनेके दिन सम्राट्के मनमें अस्त्रकी नमाजके पश्चात् यह देखनेका विचार हुआ कि कौन तैयार है, किसने तैयारीमें शीघ्रता की है और किसने विलम्ब। सम्राट् अपने डेरेके संमुख कुरसीपर बैठा था। मैं सलाम कर दायीं ओर अपने नियत स्थानपर जाकर खड़ा होगया। इतनेमें सम्राट्ने 'सरजामदार' (सम्राट्परसे चँवर द्वारा मक्खियाँ उड़ानेवाले) मलिके क़बूलाको मेरे पास भेज कर मुझे बैठनेकी आज्ञा दे अपनी अनुकम्पा ही प्रकट की, अन्यथा उस दिन कोई अन्य पुरुष न बैठ सकता था।

अब सम्राट्का हाथी आया और सीढ़ी लग जानेपर सम्राट् उसपर खवासों (भृत्यविशेष) सहित सवार हुआ। इस समय सम्राट्के सिरपर छत्र लगा हुआ था। कुछ देरतक घूमनेके पश्चात् सम्राट् अपने डेरेको लौटा।

इस देशकी प्रथा ऐसी है कि सम्राट्के सवार होते ही प्रत्येक अमीर अपनी सेना सुसज्जित कर ध्वजा, पताका तथा ढोल-नगाड़े, शहनाई इत्यादि सहित सवार हो जाता है। सर्वप्रथम सम्राट्की सवारी होती है, उसके आगे आगे

केवल पर्देदार (अर्थात् हाजिब) और गायक (या नर्तकियाँ) तथा तबलची गलेमें तबले लटकाये सरना बजानेवालोंके साथ साथ चलते हैं। सम्राट्की दाहिनी तथा बायीं ओर पन्द्रह पन्द्रह पुरुष चलते हैं – इनमें केवल वज़ीर और बड़े बड़े उमरा तथा परदेशी ही होते हैं। मेरी गणना भी इन्हींमें थी। सम्राट्-के आगे पैदल तथा पथप्रदर्शक चलते हैं और पीछेकी ओर रेशमी तथा कामदार वस्त्रकी ध्वजा-पताका तथा ऊँटोंपर तबल आदि चलते हैं। इनके पश्चात् सम्राट्के भृत्यों तथा दासोंका नम्बर आता है और उनके पश्चात् अमीरोंका और फिर जनसाधारणका।

यह कोई नहीं जानता कि विश्राम कहाँ होगा। नदी-तट अथवा वृक्षोंकी सघन छायामें किसी रम्य स्थलको देख सम्राट् वहीं विश्रामकी आज्ञा दे देता है। सर्वप्रथम सम्राट्का डेरा लगता है। जबतक यह न लग जाय तबतक कोई व्यक्ति अपना डेरा नहीं लगा सकता।

इसके पश्चात् नाज़िर आकर प्रत्येक व्यक्तिको उचित स्थान बतलाते हैं। सम्राट्का डेरा मध्यमें होता है। बकरीका मांस, मोटी मोटी मुर्गियाँ तथा 'कराकी' इत्यादि भोज्य पदार्थ पहलेसे ही प्रस्तुत कर दिये जाते हैं। पड़ावपर पहुँचते ही अमीरोंके पुत्र सीख़ें हाथमें लिये आ उपस्थित होते हैं और अग्नि प्रज्वलित कर मांस भूनना आरम्भ कर देते हैं। सम्राट् एक छोटेसे डेरेके संमुख विशेष अमीरोंके साथ आकर बैठ जाता है, फिर दस्तरख़्वान आता है और सम्राट् इच्छानुसार व्यक्ति विशेषोंके साथ बैठ कर भोजन करता है।

एक दिनकी बात है कि सम्राट्ने डेरेके भीतरसे पूछा कि बाहर कौन खड़ा है। इसपर सम्राट्के मुसाहिब सय्यद नासिर-

उद्दीन मथहरश्रोहरीने उत्तर दिया 'अमुक पश्चिमीय पुरुष बड़े उदासीन भावसे सेवामें उपस्थित है।' सम्राट्ने जब उदासीनताका कारण पूछा तो सैयदने निवेदन किया कि 'उसपर ऋणदाताओंका सख़्त तक़ाज़ा हो रहा है। अख़्वन्दे‌आलमने वज़ीरको ऋण भुगतानेकी आज्ञा दी थी, परन्तु वह तो उसके पहले ही यात्राको चले गये। श्रीमान् यदि उचित समझें तो ऋणदाताओंको वज़ीरकी प्रतीक्षा करने अथवा राजकोषसे धन दिये जानेकी आज्ञा देदें।' इस समय मलिक दौलतशाह भी उपस्थित थे। सम्राट् इनको चचा कहकर पुकारा करता था। इन्होंने भी अख़्वन्दे‌आलमसे प्रार्थना कर कहा कि यह व्यक्ति मुझसे भी प्रतिदिन अरबी भाषामें कुछ कहा करता है। मैं तो समझ नहीं सकता परन्तु नासिर-उद्दीन जानते होंगे कि इसका क्या तात्पर्य है। इन महाशयका इस कथनसे यह अभिप्राय था कि सैयद नासिर-उद्दीन पुनः ऋण चुकानेकी बात छेड़ें। सैयद नासिर-उद्दीनने इसपर यह कहा कि आपसे भी वह ऋणके ही सम्बन्धमें कहना था। यह सुन सम्राट्ने कहा कि चचा, जब हम राजधानी पहुँचें तो तुम जाकर स्वयं इस पुरुषको राजकोषसे धन दिलवा देना। खुदावन्दज़ादह भी उस समय वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने अख़्वन्दे‌आलमसे कहा कि यह व्यक्ति सदा खूब हाथ खोल कर व्यय करता है। मावरा उन्नहरके सम्राट् तरमशीरींके दर्बारमें मेरा इससे समागम हुआ था और उस समय भी इसका यही हाल था। इसके पश्चात् सम्राट्ने मुझे अपने साथ भोजन करनेका आदेश किया। मुझे इस वार्तालापका कुछ भी पता न था, भोजन कर बाहर आने पर सैयद नासिर-उद्दीनने मुझसे दौलतशाहको और उन्होंने खुदावन्दज़ादहको धन्यवाद देनेको कहा। इन्हीं

दिनों जब मैं सम्राट्के साथ आखेटमें था तो वह एक दिन मेरे डेरेके संमुख होकर निकला। इस समय मैं उसकी दाहिनी ओर था और मेरे अन्य साथी डेरेमें थे। सम्राट्के उधर होकर जाने पर उन्होंने बाहर आ सलाम किया। यह देख सम्राट्ने इमाद-उल मुल्क तथा दौलतशाहको भेज कर पुछवाया कि यह किसका डेरा है। उन लोगोंके यह उत्तर देनेपर कि अमुक पुरुषका है, सम्राट् मुस्कराया। दूसरे दिन मुझको, सय्यद नासिर-उद्दीन और मिश्रके क़ाज़ीके पुत्र तथा मलिक सबीहा-को ख़िलअत प्रदान की गयी और राजधानीको लौट जानेका आदेश होगया। आज्ञा होने पर हम वहाँसे लौट पड़े।

१२—सम्राट्को एक ऊँटकी भेंट

इन्हीं दिनों सम्राट्ने मुझसे एक दिन पूछा कि मलिके नासिर[1] ऊँटपर सवार होता है या नहीं। मैंने इसपर यह निवेदन किया कि हजके दिनोंमें साँड़नीपर सवार हो वह मिश्र देशसे मक्का शरीफ़ दस दिनमें पहुँच जाता है। मैंने सम्राट् से यह भी कहा कि उस देशके ऊँट यहाँकेसे नहीं होते; मेरे पास वहाँका एक पशु है। राजधानीमें आते ही मैंने एक मिश्र-देशीय अरबको बुलाकर साँड़नीकी काठीके लिए कै.र[2]

(१) मलिके नासिर—मिश्रका प्रसिद्ध अरब विजेता। इसने ख़लीफ़ा उमरके राजत्वकालमें मिश्र देशको अपने अधिकारमें किया था। इसके पश्चात् २५४ हिजरी तक अब्बास वंशीय अरब ख़लीफ़ाओंका इस देशपर प्रभुत्व रहा। इसके बाद कुछ कालतक एक तुर्क गुलाम वहाँका सम्राट् बना रहा। यह ठीक है कि ख़लीफ़ाओंका थोड़ा बहुत प्रभुत्व पुनः इस देशपर स्थापित हो गया परंतु पहिली सी बात नहीं हो पायी।

(२) कैर—एक पदार्थ विशेष जो फ़रात नदीके तटपर हैत नगरके

नामक पदार्थका एक 'कालबुत' बनवाया, और फिर एक बढ़ईको बुला कर उसी नमूनेका एक सुन्दर पालान तैयार करा बानातसे मढ़वाया, रकाबें बनवायीं और ऊँटपर एक बहुत सुन्दर झूल डाल रेशमकी मुहार तैयार करायी। ऊँटको इस प्रकारसे सुसज्जित कर मैंने यमन (अरबका एक प्रान्त) निवासी अपने एक अनुयायीसे, जो हलुआ बनानेमें बहुत सिद्ध-हस्त था, कई तरहके हलुए तैयार कराये। एक प्रकारका हलुआ तो खजूरोंका सा दीखता था। शेष भिन्न भिन्न प्रकारके थे।

साड़नी और हलुए मैंने सम्राट्को सेवामें भेजे, परंतु इन वस्तुओंके ले जानेवालेको संकेत कर दिया कि ये दोनों वस्तुएँ लेजाकर सर्वप्रथम मलिक दौलतशाहको देना। मैंने एक घोड़ा और दो ऊँट उन महानुभावके लिए भी भृत्य द्वारा भेजे। दासने ये सब वस्तुएँ आदेशानुसार मलिक दौलतशाहको जाकर दे दीं और उन्होंने इनको लेकर सम्राट्से जा निवेदन किया कि अखवन्देआलम, मैंने आज एक अत्यंत अद्भुत पदार्थ देखा है। सम्राट्के प्रश्न करने पर कि वह पदार्थ क्या है, अमीरने यह उत्तर दिया कि ज़ीन कसा हुआ ऊँट। सम्राट्ने यह सुन कर उसको देखनेकी इच्छा प्रकट की और ऊँट डेरेके भीतर लाया गया। देखकर सम्राट्ने बहुत प्रसन्न हो मेरे भृत्यसे उसपर चढ़नेको कहा। इस प्रकार

निकट, उष्ण जलके साथ पृथ्वीमेंसे निकलता है। यह पदार्थ कृष्णवर्णका होता है परंतु इसमें कुछ कुछ लालिमा भी होती है। कुछ ही देर पश्चात् यह बहुत कठिन हो जाता है। बगदाद तथा बसरा निवासी मिट्टी मिलाकर इस पदार्थसे अपनी नाव, गृह और छत इत्यादि लीपते हैं। इसको हम नैसर्गिक टार (Tar) भी कह सकते हैं।

आदेश मिलने पर दासने सम्राट्के संमुख ऊँटको चला कर दिखाया। सम्राट्ने इसके पश्चात् उस पुरुषको दो सौ दिरहम और ख़िलअत पारितोषिकमें दी।

जब इस पुरुषने लौटकर यह सब वृत्तान्त मुझे सुनाया तो मैंने भी प्रसन्न हो उसको दो ऊँट दिये।

१३—पुनः दो ऊँटोंकी भेंट और ऋण चुकानेकी आज्ञा

ऊँटको सम्राटकी भेंट कर जब मेरा अनुचर लौट आया तो मैंने दो पालान और निर्माण कराये। इनके पूर्व तथा पश्चिम भागोंमें चाँदीके पत्र लगवा कर सोनेका मुलम्मा कराया गया था। समस्त पालानपर बानात चढ़वा कर स्थान स्थानपर चाँदीके पत्र जड़वाये गये थे। ऊँटोंकी झूल पीले चार खानेकी थी। उसमें कमख़्वाबका अस्तर लगा हुआ था। पैरोंमें चाँदीकी झाँझनें थीं जिनपर सोनेका मुलम्मा किया हुआ था। इसके अतिरिक्त ग्यारह थाल हलुएके तय्यार करा कर प्रत्येकपर एक एक रेशमी रूमाल डाला गया था।

आखेटसे लौटने पर सम्राट् दूसरे दिन दरबारे आम (साधारण राजसभा) में बैठा तो इन ऊँटोंके आने पर इनको चलानेका सम्राट्का आदेश होते ही मैंने सवार हो इनको स्वयं दौड़ा कर दिखाया। परंतु एक ऊँटकी झाँझन गिर पड़ी। सम्राट्ने यह देख बहाउद्दीन फलकीको उसे तुरंत उठा लेनेकी आज्ञा दी।

इसके उपरांत सम्राट्ने थालोंकी ओर देखकर कहा—"चः दारी दरां तवक़ैहा हलवास्त" (तेरे पास क्या है, क्या इन थालोंमें हलुआ है?) मैंने उत्तर दिया "हाँ, श्रीमन्"। इसपर सम्राट्ने उपदेशक, एवं धर्मशास्त्रके ज्ञाता नासिर-उद्दीन

तिरमिज़ीकी ओर देखकर कहा कि अमुक व्यक्तिने जैसा हलुआ आखेटके समय जंगलमें भेजा था वैसा मैंने कभी नहीं खाया; और उन थालोंको ख़ास मजलिसमें भेजनेकी आज्ञा दी।

दरबारे आमसे उठते समय सम्राट् मुझे भीतर बुलाकर ले गया और भोजन मँगवाया। भोजन करते समय सम्राट्के द्वारा हलुएका नाम पूछे जाने पर मैंने उत्तर दिया कि हलुए विविध प्रकारके थे, श्रीमान् किसका नाम जानना चाहते हैं? यह उत्तर सुन सम्राट्ने थालोंके लानेका आदेश किया। थाल आते ही रूमाल उठा लिये गये। सम्राट्ने एक थालकी ओर संकेत कर कहा कि इसका नाम जानना चाहता हूँ। मैंने निवेदन किया कि अख़वन्देआलम, इसको लक़ीमात उल क़ाज़ी कहते हैं। इस समय वहाँ पर अपनेको अब्बास वंशीय बतानेवाला, बग़दादका एक समृद्धिशाली व्यापारी भी उपस्थित था। सम्राट् इस व्यक्तिको 'पिता' कहकर पुकारता था। इस व्यक्तिने मुझको लज्जित करनेके लिए ईर्षावश कह दिया कि इस हलुएका नाम लक़ीमात उल क़ाज़ी नहीं है। उसने एक अन्य प्रकारके 'जिल्द उल फ़रस' नामक हलुएको दिखाकर कहा कि इसको लक़ीमात उलक़ाज़ी कहते हैं। परन्तु भाग्यवश वहाँपर सम्राट्के नदीम (मुसाहिब) नासिर-उद्दीन कानी हरवी भी इस व्यापारीके संमुख बैठे थे। यह बहुधा उसके साथ सम्राट्के संमुख ही ठठोल किया करते थे। इन्होंने बग़दादीका कथन सुनते ही कहा कि ख़्वाज़ा साहब आप झूठ कहते हैं। यह क़ाज़ी हमको सच्चे प्रतीत होते हैं। सम्राट्ने इसपर प्रश्न किया कि यह क्यों? 'नदीम' ने कहा 'अख़वन्देआलम, यह पुरुष क़ाज़ी है;

प्रत्येक शब्दको औरोंकी अपेक्षा कहीं अधिक जान सकता है।' यह सुन सम्राट् हँसकर बोला 'सत्य है'।

भोजनके उपरान्त हलवा खाया, फिर नबीज़ (मादक शर्बत) पिया। तत्पश्चात् पान लेकर हम बाहर चले आये।

थोड़ा ही काल बीता होगा कि खजांचीने आकर मुझसे रुपया लेनेके लिए अपने आदमियोंको भेजनेको कहा। मैंने अपने आदमियोंको रुपया लेने भेज दिया। संध्या समय घर आने पर मैंने छः हज़ार दोसौ तैंतीस टंक[1] रखे हुए पाये। मुझपर पचपन सहस्र दीनारका ऋण था और बारह सहस्र दीनारके पारितोषिककी आज्ञा मिल चुकी थी। (उश्र नामक कर निकालनेके पश्चात् ही इतनी धनराशि बची थी।) एक टंक पश्चिमके ढाई सुवर्ण दीनारके बराबर होता है।

१४—सम्राट्का मअबर देशको प्रस्थान और मेरा राजधानीमें निवास

सय्यद हसनशाहके विद्रोहके कारण सम्राट्ने जमादी उल अव्वलकी नवीं तिथिको मअबर देशकी ओर प्रस्थान किया। अपना समस्त ऋण चुका मैंने भी इस यात्राका पक्का विचार कर कहार, फ़राश, और हरकारों तकको नौ मासका वेतन दे दिया था कि इतनेमें मुझको राजधानीमें ही रहनेका आदेश-पत्र मिला। हाजिबने मुझसे सूचना मिलनेके हस्ता-

---

(१) अबुलफ़ज़लके कथनानुसार 'दाम' एक ताँबेका सिक्का होता था जिसका वजन ५ टंक, अर्थात् १ तोला ८ माशा और सात रत्ती था। १ रुपयेमें ४० दाम आते थे। इन ताँबेके सिक्कोंको अकबरके राजत्वकाल-से पहिले पैसा और 'बहलोली' कहते थे, परन्तु अबुलफ़ज़लके समय इनका नाम 'दाम' था।

क्षर भी करा लिये। इस देशमें राजकीय सूचना देने पर पाने-वालेके हस्ताक्षर भी ले लिये जाते हैं जिसमें कोई मुकर न जाय। सम्राट्ने मुझको छः सहस्र और मिश्रके क़ाज़ीको दस सहस्र दिरहमी दीनार दिये जानेका आदेश किया, और इसके अतिरिक्त जिनको राजधानीमें ही रहनेकी राजाज्ञा हुई उन सब विदेशियोंको भी राजकोषसे द्रव्य दिया गया। परन्तु भारत वासियोंको कुछ न मिला।

सम्राट्ने मुझको कुतुब उद्दीनके मक़बरेका मुतवल्ली नियत कर देखरेख करनेकी आज्ञा दी। किसी समय सम्राट् कुतुब-उद्दीनका सेवक रह चुका था, इसीसे उसके समाधिस्थलको बड़े आदरकी दृष्टिसे देखता था। यह मेरी कई बारकी आँखों-देखी बात है कि सम्राट्ने यहाँपर आ, सुलतान कुतुबउद्दीनके जूतोंको चुम्बन कर सिरसे लगा लिया। इस देशमें मृतकके जूतोंको क़ब्रके निकट चौकीपर धरनेकी परिपाटी है। जिस प्रकार सम्राट् कुतुब-उद्दीनके जीवनमें तुग़लक उसकी वन्दना किया करता था, सम्राट्-पद पाने पर, अब भी समाधि-स्थलमें वह उसी प्रकारसे मृतकका सम्मान दत्तचित्त हो करता था। भूतपूर्व सम्राट्की विधवाको भी वह बड़े आदर-की दृष्टिसे देखता था, और 'बहन' कह कर पुकारता था। विधवा रानी सम्राट्के ही रनवासमें रहा करती थी। इसका पुनर्विवाह मिश्र देशके क़ाजीसे हो जानेके कारण क़ाजी महोदयका भी अत्यन्त आदर-सत्कार होता था; सम्राट् उनके यहाँ प्रति शुक्रवारको जाया करता था।

हाँ, तो विदा होते समय जब सम्राटने हमको बुलाया तो मिश्र देशके क़ाज़ीने खड़े होकर निवेदन किया कि मैं श्रीमान्-से पृथक् रहना नहीं चाहता। यह सुन सम्राट्ने उसको यात्रा-

की तैयारी करनेकी आज्ञा दे दी और यह उसके लिए अच्छा ही हुआ।

इसके पश्चात् मेरी बारी आयी। मैं भी आगे बढ़ा, परन्तु मैं रहना तो दिल्लीमें ही चाहता था। इसका परिणाम भी अच्छा न निकला। सम्राट् द्वारा निवेदन करनेकी आज्ञा मिल जाने पर मैंने अपना नोट निकाला परन्तु उन्होंने मुझको अपनी ही भाषामें कहनेकी आज्ञा दी। मैंने अख़वन्देआलमसे कहना प्रारम्भ किया कि श्रीमान्‌ने बड़ी कृपा कर मुझको नगरका क़ाज़ी बनाया है, इस पदका पूर्वानुभव न होने पर भी मैंने किसी न किसी प्रकार पद-प्रतिष्ठा अबतक अक्षुण्ण बनाये रखी है और उसपर सम्राट्‌को ओरसे दो सहायक क़ाज़ियों-का भी मुझे सहारा रहता है परन्तु इस कुतुबउद्दीनके रौज़ेका मैं किस प्रकार प्रबन्ध करूँ। वहाँपर मैं प्रतिदिन चार सौ साठ पुरुषोंको भोजन देना चाहता हूँ परन्तु इस देवो-त्तरकी आय पर्याप्त नहीं होती। यह सुन सम्राट्‌ने वज़ीरकी ओर मुख कर कहा कि उसको वार्षिक आय तो पचास सहस्र है; और मुझसे कहा कि तुम ठीक कहते हो। यह कह चुकने पर उसने वज़ीरसे 'लुकमन ग़ल्लह बिदह' (इसको एक लाख मन अनाज दो) कह कर मुझसे कहा कि जब तक रौज़ेका अनाज न आवे तुम इसीको व्यय करना। (अनाजसे गेहूँ तथा चावलका तात्पर्य है। इस देशका एक मन पश्चिमीय बीस रतलके बराबर होता है।) इसके पश्चात् सम्राट्‌के पुनः पूछने पर मैंने निवेदन किया कि जिन गाँवोंके बदलेमें मुझको श्रीमान्‌की ओरसे अन्य गाँव मिले हैं उन (प्रथम) गाँवोंसे कर वसूल करनेके अपराधमें मेरे अनुयायी पकड़े गये हैं। दीवान लोग उनसे कहते हैं कि या तो सम्राट्‌का

आज्ञापत्र लाओ या समस्त वसूलीकी रक़म राजकोषमें जमा करो।

मेरी यह बात सुन सम्राट्ने वसूलीकी रक़म जाननी चाही। मैंने कहा कि पाँच सहस्र दीनार मैंने इस प्रकार पाये हैं। सम्राट्ने इसपर कहा कि मैंने यह रक़म तुमको पारितोषिक रूपसे दे दी। फिर मैंने कहा कि श्रीमान्का दिया हुआ गृह भी अब बहुत खराब हो गया है। इसपर सम्राट्ने कहा 'इमारत कुनेद' (गृह निर्माण कर लो), और पुनः मेरी ओर देख कर कहा 'दीगर न मांद' (और बात तो शेष नहीं है)। मैंने कहा 'नहीं श्रीमान्, अब मुझे कुछ निवेदन नहीं करना है।' परंतु सम्राट्ने फिर भी कहा 'वसीयत दीगर अस्त' (एक बात तेरी भलाईकी और है।) वह यह कि ऋण न लिया कर क्योंकि यदि ऐसा करेगा तो बहुत सम्भव है कि मुझे सूचना न मिलने पर ऋणदाता तुझको कष्ट दें। मैं जितना दूँ उससे अधिक व्यय मत किया कर, क्योंकि परमेश्वरका वचन है 'फ़लातजअल यदक मग़लूलतन वला तव सुतहा कुल्लल वसतह व कुल् वसते व कुलू व शरबू वला तुस रेफ़ू. वल्लज़ीना इज़ा अन फ़कू लम युसरेफ़ू व कान बैना ज़ालेका क़िवामा' [अर्थात् वस अपने हाथको गर्दनमें लटका हुआ (संकुचित) न कीजिये और न उसको फैलाइये (अर्थात् सर्वथा मुक्तहस्त न होना चाहिये); खाओ और पियो, पर वृथा धनका अपव्यय मत करो। जो लोग व्ययके अवसरपर अपव्यय नहीं करते उनमें सत्यता भरी हुई है।] मैंने इसपर सम्राट्का चरण-स्पर्श करना चाहा परन्तु उसने मेरा सिर पकड़ मुझे रोक लिया, और मैं सम्राट्का हस्तचुम्बन कर बाहर निकल आया।

नगरमें आकर मैंने गृह-निर्माण कराना प्रारम्भ कर दिया। इसमें सब मिलाकर चार सहस्र दीनार लग गये। छः सौ तो राजकोषसे मिले और शेष मैंने अपने पाससे लगाये। गृहके संमुख मैंने एक मसजिद भी बनवायी।

१५—मक़बरेका प्रबन्ध

इसके पश्चात् मैं सम्राट् कुतुब-उद्दीनके समाधिस्थानके प्रबन्धमें दत्तचित्त होगया। यहाँपर सम्राट्ने ईराकके सम्राट् ग़ाज़ांशाहके[1] गुम्बदसे भी बीस हाथ अधिक ऊँचा (अर्थात् सौ हाथका) गुम्बद निर्माण करनेकी आज्ञा दी; और इस 'देवोत्तर' सम्पत्तिकी आय बढ़ानेके लिए बीस गाँव और मोल लेनेकी आज्ञा दी। उसमें दलालोंके दशमांशका लाभ करानेके विचारसे इन गाँवोंके मोल लेनेका कार्य भी मेरे ही सुपुर्द कर दिया गया था।

भारतनिवासी मृतकोंकी क़ब्रपर जीवनकी समस्त आवश्यक वस्तुएँ धर देते हैं, यहाँ तक कि हाथी और घोड़े तक वहाँ बाँध देते हैं। इसके अतिरिक्त समाधि भी यहाँ अत्यन्त सुसज्जित की जाती है। मैंने भी इसी प्राचीन परिपाटीका

---

(१) ग़ाज़ाँखाँ—चंगेज़खाँके पौत्र हलाकूका पौत्र था। यह फ़ारिस देशका अधिपति था। ईरान देशके मंगोल नरपतियोंमें ग़ाज़ांखाँ सर्व-प्रथम मुसलमान धर्ममें दीक्षित हुआ था। वैसे तो हलाकूका पुत्र नकोदार (अहमद) भी मुसलमान था परन्तु वह कभी अपने धर्मको भली-भाँति प्रकट न कर सका।

इस सम्राट्का समाधिस्थान, जो इसके जीवनकालमें ही निर्मित हुआ था, तबरेज़में है। इससे प्रथम चंगेज़खाँके वंशजोंकी किसी स्थानमें भी मृत्यु हो जाने पर उनका शव सदा चीन देशके अलताई पर्वतमें गाड़ा जाता था।

अनुसरण किया, और डेढ़ सौ ख़तमी अर्थात् कुरानका पाठ करनेवाले नौकर रखे, अस्सी विद्यार्थियोंके निवास तथा भोजनादिका प्रबन्ध किया, आठ मुकर्रर [कुरानकी एक ही सूरत (अध्याय) का कई बार पाठ करनेवालेको संभवतः इस नामसे लिखा है] तथा एक अध्यापक नियत किया। अस्सी दार्शनिकों (सूफियों) के भोजनका प्रबन्ध किया और एक इमाम तथा मधुर एवं स्पष्ट कण्ठवाले कई मोअज़्ज़िन, क़ारी अर्थात् स्वरसहित कुरानका शुद्ध कण्ठसे पाठ करनेवाले, मदहख़्वाँ (अर्थात् पैगम्बर साहबकी प्रशंसा करनेवाले), हाज़िरीनवीस और मुअर्रिफ़ (एक निम्नपदस्थ कर्मचारी) भी नौकर रखे। इनको इस देशमें अरबाब कहते हैं। इनके अतिरिक्त मैंने फ़र्राश, हलवाई, दौड़ी, आबदार अर्थात् भिश्ती, शरबत पिलानेवाले, तंबोली, सिलहदार (अस्त्रधारी), भाले-बरदार, छत्रदार, थाल ले जानेवाले, और हाजिब तथा नक़ीब अर्थात् पर्देदार और चोबदार भी नौकर रखे इनको इस देशमें "हाशिया" कहते हैं। समस्त पुरुषोंकी संख्या चार सौ साठ थी।

सम्राट्ने प्रतिदिन बारह मन आटा और इतना ही मांस पकानेकी आज्ञा दे रखी थी पर इसको पर्याप्त न समझ मैंने धनराशिकी प्रचुरताके ख़यालसे पैंतीस मन मांस और इतना ही आटा पकवाना आरम्भ कर दिया। इसके अतिरिक्त शकर, घी, मिसरी तथा पानका व्यय भी इसी परिमाणमें बढ़ गया। भोजन भी अब केवल समाधिस्थानके लोगोंको ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक राहगीर तकको मिलने लगा। दुर्भिक्ष-के कारण जनताको भी इससे बड़ी सहायता पहुँची और मेरा यश चारों ओर फैल गया।

मलिक सबीहके दौलताबाद जाने पर जब सम्राट्ने दिल्ली-स्थित सेवकोंकी कथा पूछी तो उन्होंने निवेदन किया कि यदि वहाँ (दिल्लीमें) अमुक पुरुषकी भाँति दो-तीन पुरुष भी होते तो दीन-दुखियोंको बहुत सहायता मिलती, और तनिक भी कष्ट न होता। यह सुन सम्राट्ने अत्यन्त प्रसन्न हो मुझको अपने पहिननेकी विशेष ख़िलअत भेजकर सम्मानित किया।

दोनों ईद, मौलदेनवबी (पैगम्बरकी जन्मतिथि), योमे आशरा (मुहर्रमका दसवाँ दिन) और शब्बेरात तथा सम्राट् कुतुब-उद्दीनको मृत्यु तिथिपर मैं सौ मन आटा और इतना ही मांस पकवा कर दीन-दुखियों तथा फकीरोंको भोजन कराया करता था और लोगोंके घर भोजन पृथक् भेजा जाता था।

इस प्रथाका भी मैं यहाँ वर्णन कर देना उचित समझता हूँ। भारतवर्ष तथा सराय (क़फ़चाक़) में ऐसी प्रथा है कि वलीमे (द्विरागमनके पश्चात्के भोज) के पश्चात् प्रत्येक उच्च कुलोत्पन्न सैयद, धर्मशास्त्रके ज्ञाता शैख़ तथा क़ाज़ीके संमुख, गहवारह (पालना) की भाँति बना हुआ एक थाल लाकर रखा जाता है। यह खजूरके पत्तेसे बनाया जाता है और इसके नीचे चार पाये होते हैं। थालपर सर्वप्रथम पतली रोटियाँ (चपाती) रखी जाती हैं और फिर बकरेका भुना हुआ सिर, तत्पश्चात् हलुआ साबूनियाँसे भरी हुई चार टिकियाँ और इन सबके पश्चात् हलुएके चार टुकड़े रखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त खालके बने हुए एक छोटेसे थालमें हलुआ और समोसे अलगसे रख दिये जाते हैं।

उपर्युक्त थालमें इन पदार्थोंको इस ढंगसे रख, ऊपरसे उन्हें सूती वस्त्रसे ढाँक देते हैं। निम्न श्रेणीके मनुष्योंके लिए पदार्थोंकी मात्रा न्यून कर दी जाती है।

थाल संमुख आने पर प्रत्येक व्यक्ति इसको उठा लेता है। यह परिपाटी मैंने सर्वप्रथम सम्राट् उज़बककी राजधानी 'सराय' नामक नगरमें देखी थी, परन्तु हमारी प्रकृतिके विरुद्ध होनेके कारण मैंने अपने अनुयायियोंसे इनके उठानेका निषेध कर दिया था।

बड़े आदमियोंके घर भी इसी भांतिसे थाल सजाकर भेजे जाते हैं।

१६—अमरोहेकी यात्रा

सम्राट्के आदेशानुसार वज़ीरने मुझको दस हज़ार मन अनाज देकर शेषके लिए अमरोहा[1] इलाकेमें जानेकी आज्ञा दी। वहाँका हाकिम इस समय अमीर ख़म्मार था, और शमसुद्दीन बदख़शानी नामक एक व्यक्ति अमीर था। जब मैंने अपने भृत्योंको अनाज लानेके लिए उधर भेजा तो वे कुछ ही अनाज वहाँसे ला सके। लौटकर उन्होंने अमीर ख़म्मारकी कठोरता-को मुझसे शिकायत की। अब शेष अनाज वसूल करनेके लिए मुझको ही स्वयं वहाँ जाना पड़ा। दिल्लीसे यहाँतक पहुँचनेमें तीन दिन लगते हैं। तैंतीस आदमियोंको अपने साथ ले मैं वर्षाऋतुमें हो इस ओर चल पड़ा। मेरे अनुयायियोंमें दो डोम भ्राता भी थे, जो बहुत अच्छा गाना जानते थे। बिजनौर[2]

(१) अमरोहा—इस समय मुरादाबाद ज़िलेमें एक तहसील है। नदीसे बतूताका तात्पर्य आधुनिक रामगङ्गा है। इसी नदीके तटपर आधुनिक अग़वानपुर नामक गाँव बसा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि भ्रमवश बतूताने नदीका नाम सरजू लिख दिया है।

(२) बिजनौर—यह नगर भी बहुत प्राचीन है। हुएनसंग नामक चीनी यात्रीने भी ईसाकी छठीं शताब्दीमें इसके अस्तित्वका वर्णन किया

पहुँचने पर तीन डोम और आ गये। ये तीनों भी भाई ही थे। मैं कभी तो उन दोनों भाइयोंका और, कभी इन तीनोंका गाना सुनता था।

अमरोहा आने पर वहाँके नगरस्थ सर्कारी नौकर हमारी अभ्यर्थनाको वाहर आये। इनमें नगरके क़ाज़ी शरीफ़ अमीर-अली तथा मठके शैख़ भी थे। इन दोनोंने मुझको एक सम्मिलित उत्तम भोज भी दिया। मैंने अमरोहेको एक छोटा परन्तु सुन्दर नगर पाया।

अमीर ख़म्मार इस समय अफ़ग़ानपुरमें † था, जो सरजू नदीके तटपर बसा हुआ है। यही नदी इस समय हमारे और अफ़ग़ानपुरके मध्यमें बाधक हो रही थी। नाव न मिलनेके कारण लाचार होकर हमने लकड़ी और घासको ही एक नाव बना डाली और उसीपर अपना समस्त सामान पार उतरवा कर दूसरे दिन स्वयं नदी पार की। यहाँपर अमीर ख़म्मारका भ्राता नजीब अपने अनुयायियों सहित हमारी अभ्यर्थनाके लिए आया। विश्राम करनेके लिए हमें डेरे दिये गये। तत्पश्चात् ख़म्मारका 'वाली' नामक अन्य भ्राता भी हमारा सत्कार करने आया। यह व्यक्ति अत्यन्त ही 'क्रूर' प्रसिद्ध था। साठ लाखकी वार्षिक आयके डेढ़ सहस्र गाँव इसकी अधीनतामें थे और इस आयका बीसवाँ भाग इसको मिलता था।

यह नदी भी बड़ी ही विचित्र है। वर्षाऋतुमें कोई इसका जल नहीं पीता और न किसी पशुको ही पिलाता है। तीन दिवस पर्य्यन्त तटपर पड़े रह कर भी हमने इस नदीका जल न पिया और न इसके निकट ही गये। यह नदी हिमालय पर्वतसे

है। सम्राट् अकबरके समय यह नगर सर्कार सम्भलके अधीन था। इस समय यह एक ज़िला है। † आधुनिक अग़वानपुर।

निकलती है। वहाँ सुवर्णकी एक खान भी है। परन्तु यह नदी तो विषैली बूटियोंमें होकर यहाँ आती है, इसी कारण इसका जल पीते ही मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है।

वह पर्वतमाला (अर्थात् हिमालय पर्वत-श्रेणी) भी इतनी लम्बी है कि तीन मासमें उसकी यात्रा समाप्त होती है। इसकी दूसरी ओर तिब्बतका देश है। वहाँ 'कस्तूरी' मृग होता है। इस पर्वतमालामें ही मुसलमान सैन्यकी दुर्दशाका वर्णन हम कहीं ऊपर कर आये हैं।

नगरमें मेरे पास हैदरी फ़कीरोंका भी एक समुदाय आया। प्रथम तो इन्होंने समाश्र (अर्थात् धार्मिक राग) सुनाया और फिर अग्नि प्रज्वलित कर यह सब उसमें घुस पड़े और किसी-को तनिक भी क्षति न पहुँची।

अमीर शम्स-उद्दीन बदख़शानी और वहाँके सूबेदारमें किसी बातपर अनबन हो जानेके कारण, शम्स-उद्दीनने जब अज़ीज़ ख़म्मारको युद्ध करनेके लिए ललकारा तो वह अपने घरमें घुसकर बैठ गया। तत्पश्चात् प्रत्येकने अपने प्रतिद्वन्द्वीकी शिकायत वज़ीरको लिखकर भेजी। वज़ीरने मुझको तथा सम्राट्के चार-सहस्र दासोंके अधिपति मलिक शाह अमीरउल मुमालिकको लिखकर भेजा कि दोनोंके झगड़ेकी जाँच-पड़ताल कर अपराधीको बाँध राजधानीमें भेज दो।

दोनों ओरके पुरुष अब मेरे घर आ एकत्र हुए। अज़ीज़ ख़म्मारने शम्स-उद्दीनपर यह आरोप लगाया कि इसके सेवक रज़ी मुलतानीने मेरे ख़ज़ांचीके घरपर उतर कर मदिरा-पान किया और पाँच सहस्र दीनार चुरा लिये। रज़ीसे पूछने पर उसने मुझे यह उत्तर दिया कि मैंने मुलतानसे आनेके पश्चात् कभी मदिरा नहीं पी। इसपर मैंने उससे यह प्रश्न किया कि

क्या मुलतानमें तूने मदिरा-पान किया था? अपराध स्वीकार करने पर अस्सी दुर्रे (कोड़े) लगवा कर, अमीर ख़म्मारके, आरोपके कारण उसको वन्दी कर लिया।

दो मास पर्य्यन्त अमरोहे रह कर मैं राजधानीको लौटा। जबतक वहाँ रहा मेरे अनुयायियोंके लिए प्रति दिन एक गाय ज़िबह होती थी। लौटते समय अपने साथियोंको अनाज लानेके लिए वहाँ ही छोड़ आया और गाँववालोंको लिख दिया कि तीन सहस्र वैलोंपर वीस सहस्र मन अनाज लाद कर पहुँचा दें।

भारत-निवासी वैलोंपर ही बोझा तथा यात्राका असबाब लादा करते हैं और गदहेपर चढ़ना अत्यंत हेय समझते हैं। यह पशु इस देशमें कुछ छोटा भी होता है। इसको यहाँ 'लाशह' कहते हैं। किसी पुरुषकी प्रसिद्धि (अपमान) करनेके लिए उसको कोड़े मारकर गदहेपर चढ़ानेकी इस देशमें प्रथा है।

१७—कतिपय मित्रोंकी कृपा

यात्राके लिए प्रस्थान करते समय नासिर-उद्दीन ओहरी मेरे पास दो सौ साठ टंक थातीके तौरपर रख गये थे परन्तु मैंने इसको खर्च कर दिया। अमरोहेसे दिल्ली लौटने पर मुझको सूचना मिली कि नासिर-उद्दीनने नायव वज़ीर खुदावन्द-ज़ादह क़वाम-उद्दीनसे यह रुपया वसूल करनेके लिए लिख दिया है। रुपये खर्च कर देनेकी वात कहनेमें मुझे अब बड़ी लज्जा आती थी। तृतीयांश तो मैंने किसी प्रकार दे दिया और फिर घरमें घुस कर बैठ रहा। कुछ दिनतक मेरे इस प्रकार वाहर न आनेके कारण मेरी बीमारीकी प्रसिद्धि हो गयी। नासिर-उद्दीन ख्वारज़मी सदरेजहाँ मुझसे मिलने आये तो कहा कि रोग तो कोई मालूम नहीं पड़ता। मैंने उत्तर-

में कहा कि भीतरी रोग है। उनके पुनः पूछने पर मैंने कहा कि अपने नायब शैख़-उल इसलामको भेज देना, उनको सब हाल बता दूँगा। उनके आने पर जब मैंने अपना समस्त वृत्त कहा तो उन्होंने मेरे पास एक सहस्र दीनार भेज दिये। इसके पूर्व उनके एक सहस्र दीनार मुझपर और चाहते थे।

ख़ुदावन्दज़ादहके शेष रक़म माँगने पर मैंने यह सोचकर कि केवल सदरेजहाँ ही एक ऐसा धनाढ्य है जो मेरी सहायता कर सकता है, सोलह सौ दीनारके मूल्यका ज़ीन सहित एक घोड़ा, आठ सौ दीनारके मूल्यका ज़ीन सहित एक अन्य अश्व, बारह सौ दीनारके मूल्यवाले दो ख़च्चर, चाँदीका तूणीर, और चाँदीके म्यानकी दो तलवारें उनके पास भेजकर कहलाया कि इनका मूल्य मेरे पास भेज दें। परन्तु उन्होंने इन सब पदार्थोंका मूल्य केवल तीन सहस्र दीनार कूतकर अपने दो सहस्र दीनार काट केवल एक सहस्र ही मेरे पास भेजे। यह देखकर मुझको बहुत ही दुःख हुआ और चिन्ताके कारण और भी ज्वर चढ़ आया। वज़ीरसे शिकायत करने पर तो और भी भण्डा फूटता, यह सोच-समझ कर चुप ही हो रहा।

इसके पश्चात् मैंने पाँच घोड़े, दो दासियाँ और दो दास मुग़ीस-उद्दीन मुहम्मद बिन इमाद-उद्दीन समनानीके पास भेजे। परन्तु इस युवकने ये सब पदार्थ लौटा कर दोसौ टंक वैसे ही भेज कर मेरा दूना उपकार किया। कहना न होगा कि मैंने वह ऋण भी चुका दिया।

१८—सम्राट्के कैम्पमें गमन

मअबर देशको जाते समय राहमें तैलिंगाने देशमें सम्राट्की सेनामें महामारी फैल जानेके कारण सम्राट् प्रथम तो

दौलताबाद चला आया और तदुपरान्त वहाँसे गङ्गा-तटपर आकर बस गया। सम्राट्ने लोगोंको भी इसी स्थानपर बसनेकी आज्ञा दे दी। मैं भी इस समय वहाँ पहुँचा ही था कि इतनेमें दैवयोगसे ऐन-उल मुल्कका विद्रोह प्रारम्भ होगया। इस समय मैं सम्राट्की ही सेवामें रहता था और मेरी सेवासे प्रसन्न हो उसने अपने विशेष अश्वोंमेंसे एक मुझको भी प्रदान किया और मैं उसके विशेष अनुचरोंमें समझा जाने लगा। तदुपरान्त ऐन-उल-मुल्कके युद्धमें सम्मिलित होनेके पश्चात् गंगा तथा सरयूको पार कर मैं सालार मसऊद ग़ाज़ीकी क़ब्रके दर्शनार्थ गया और सम्राट्की चरण-धूलिके साथ ही दिल्ली लौटा।

१६—सम्राट्की अप्रसन्नता और मेरा वैराग्य

एक दिन मैं शैख़ शहाब-उद्दीन शैख़ जामके दर्शनार्थ दिल्ली नगरके बाहर उनकी निर्माण की हुई गुहामें गया। वहाँ जानेका मेरा वास्तविक अभिप्राय केवल उस विचित्र गुफ़ाका दर्शन मात्र था। शैख़ महाशयके बंदी हो जाने पर जब सम्राट्ने उनके पुत्रोंसे पितासे मिलनेवालोंके नाम पूछे तो उन्होंने मेरा भी नाम बता दिया। बस फिर क्या था, सम्राट्की आज्ञानुसार चार दासोंका पहरा मेरे दीवानख़ानेपर भी लग गया। पहरा लग जाने पर प्रत्येक मनुष्यका जीवन बड़ी कठिनाईसे बचता है।

मेरे ऊपर शुक्रके दिन पहरा बैठा और मैंने भी तुरंत 'हस्बन अल्लाहो व नेमल् वकील' पढ़ना प्रारंभ कर दिया। उस दिन मैंने यह (अर्थात् ईश्वर पवित्र है और अच्छा वकील या प्रतिनिधि है) तेंतीस सहस्र बार पढ़ा और रात-

को दीवानख़ानेमें ही रहा। इसके अतिरिक्त मैंने पाँच दिनका व्रत रखा; प्रतिदिन एक वार कलाम उल्लाह समाप्त कर पानी पीकर इफ्तार (व्रतभंग) करता था। पाँचवें दिन व्रत तोड़ा। परंतु इसके पश्चात् पुनः चार दिनका व्रत धारण कर लिया।

शैख़के वधके उपरांत मुझको भी स्वतंत्रता मिल गयी और ईश्वरकी कृपासे मेरा मन भी नौकरीसे खट्टा हो चला और मैं संसारके नेता (इमामे आलम), पवित्र विद्वान, जगत्-श्रेष्ठ (फ़रीद उद्दहर), अद्वितीय (वहीद-उल अस्र) शैख़ कमाल-उद्दीन अब्दुल्ला गाज़ीकी सेवा करने लगा। यह महात्मा ईश्वर प्रेममें सदा मतवाले रहते थे। इनकी अलौकिक शक्ति भी खूब प्रसिद्ध थी। मैं इसका वर्णन प्रथम ही कर आया हूँ।

अपनी समस्त धन-संपत्ति अनाथों तथा फकीरोंको बाँट मैंने भी इन शैख़ महात्माकी सेवा प्रारंभ कर दी। शैख़जी दस दिन और कभी कभी बीस बीस दिन तक व्रत (उपवास) रखते थे। उनका अनुकरण करनेकी मेरे चित्तमें लालसा तो बहुत होती थी परंतु शैख़ निषेध कर कह दिया करते थे कि प्रार्थना करते समय अभी अपनी वासनाओंको इतना कष्ट न दो। वे बहुधा कहा करते थे कि हृदयसे पश्चात्ताप करने-वालेके लिए यात्रा करने या पैदल चलनेको कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे पास कुछ थोड़ीसी संपत्ति शेष रहनेके कारण चित्तमें सदा कुछ न कुछ आसक्ति सी बनी रहती थी। अतएव उसके निवारणार्थ मैंने सब कुछ लुटा अपनी देहके वस्त्र तक एक भिक्षुकसे बदल लिये और पाँच मास तक शैख़के पास रहा। इस समय सम्राट् सिंधु देशमें गया हुआ

था। वहाँसे लौटने पर मेरे इस प्रकारसे विरक्त होनेकी सूचना मिलते ही उसने मुझे सैवस्तान (सहवान) में बुला भेजा और मैं भिक्षुकके वेषमें ही सम्राट्के संमुख उपस्थित हुआ। सम्राट्ने मेरे साथ बड़ी दयालुताका बर्ताव किया और पुनः नौकरी करनेका आग्रह किया, परंतु मैंने स्वीकार न किया और हजको जानेकी आज्ञा चाही। उसने मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली।

सम्राट्से मिलनेके अनंतर मैं बाहर आकर 'मलिक-बशीर' के नामसे प्रसिद्ध एक मठमें ठहर गया। इस समय हिजरी सन् ७४२ के जमादी-उल-अव्वलका अंत होनेको था। रजब मासमें शअबानकी दसवीं तिथि तक मैंने वहाँ रह कर चिल्ला (चालीस दिनका व्रत विशेष) किया। धीरे धीरे मैं पाँच दिनका व्रत रखने लगा। पाँचवे दिन केवल थोड़ेसे चावल, बिना सालनके ही, खा लेता था। दिन भर कुरान पढ़ा करता था और रातको जितना हो सकता था ईश्वर-प्रार्थना करता था। अब भोजन तक मुझको भार प्रतीत होने लगा और उलटी कर देने पर ही कुछ शांति प्राप्त होती थी। इस प्रकारसे ध्यान-धारणा में मैंने चालीस दिन व्यतीत किये।

चालीस दिन बीतने पर सम्राट्ने मेरे लिए ज़ीन सहित घोड़ा, दास-दासियाँ, मार्ग व्यय तथा वस्त्र आदि भेजे। सम्राट् द्वारा प्रेषित वस्त्र पहिन कर मैंने सूती अस्तर युक्त नीले रंगका जुब्बा (चोग़ा), जिसको पहिन कर मैंने चालीस दिनका व्रत साधा था, उतार दिया परन्तु राजकीय ख़िलअत पहिनते समय मुझे कुछ बाह्य वस्तु सी प्रतीत हुई और इसके विपरीत जुब्बेकी ओर देखनेसे मेरे हृदयमें ईश्वरीय ज्योतिका

प्रकाश सा हो जाता था। जबतक समुद्री हिन्दू डाकुओंने लूटकर मुझे नंगा न कर दिया तबतक यह जुब्बा सदा मेरे पास रहा। सब कुछ लुट जाने पर यह भी जाता रहा।

आठवाँ अध्याय

दिल्लीसे मालाबारकी यात्रा

१—चीनकी यात्राकी तैयारी

सम्राट्के संमुख उपस्थित होने पर उसने मेरी पहिलेसे भी कहीं अधिक अभ्यर्थना कर कहा कि मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि तुमको पर्यटनकी बड़ी लालसा लगी रहती है, अतएव मैं अपनी ओरसे दूत बना कर तुमको चीन देशके सम्राट्के पास भेजना चाहता हूँ। इतना कह उसने मेरी यात्राका समस्त सामान जुटाना प्रारम्भ कर दिया और मेरे साथ जानेके लिए कतिपय व्यक्ति भी नियत कर दिये।

चीन देशके सम्राट्ने बादशाहके पास सौ दास-दासियाँ, पाँच सौ थान कमख़्वाब (जिनमें सौ जैतोन नामक नगरके बने हुए थे और सौ ख़नकाके), पाँच मन कस्तूरी, पाँच रत्नजटित ख़िलअतें, पाँच सुवर्ण-तूणीर और पाँच तलवारें भेज कर हिमालय-पर्वत-प्रदेशीय मंदिरोंके पुनर्निर्माणकी आज्ञा प्रदान करनेकी प्रार्थना की। कारण यह था कि इस पर्वतीय प्रदेशके 'समहल' नामक स्थानमें चीन-निवासी यात्रा करने आते थे और सम्राट्ने पर्वतपर आक्रमण कर मन्दिर तथा नगर दोनोंका ही विध्वंस कर डाला था।

सुलताननने चीन सम्राट्की इस प्रार्थनाका यह उत्तर दिया कि इसलाम धर्मके अनुसार केवल जज़िया देनेवाले व्यक्तियोंको ही मन्दिर-निर्माणकी आज्ञा मिल सकती है और यदि चीन-सम्राट्का भी ऐसा ही करनेका विचार हो तो यह कार्य बहुत सुगमतासे हो सकता है। पर बदलेमें उसने कहीं अधिक मूल्यवान् उपहार भेजे।

सम्राट्की उदारताका कुछ अंदाज़ा नीचे दी हुई सूचीसे हो सकता है। सौ हिन्दू दास तथा नाचना और गाना जाननेवाली दासियाँ, 'बेरमिया'[1] नामक वस्त्रके सौ थान (यह वस्त्र सूती होने पर भी सुंदरतामें अद्वितीय होता है। प्रत्येक थानका मूल्य सौ दीनार होता है), 'जुज़' नामक रेशमी वस्त्रके सौ थान (इस वस्त्रके निर्माणमें पाँच रंगोंका रेशम लगाया जाता है), 'सलाहिया' नामक वस्त्रके एक सौ चार थान, 'शीरींबाफ' नामक वस्त्रके सौ थान, मरग़रके पाँच सौ थान (यह ऊनी वस्त्र मारदीनसे बनकर आता है—इसमें सौ थान कृष्ण, सौ नीले, सौ श्वेत, सौ रक्त और सौ हरित वर्णके थे), कतांरुमीके सौ, क़ज़ागन्दके सौ, तथा सौ बिना बाँहके चुग़े (चोग़े), एक डेरा (बड़ा), छः डेरे (छोटे), चार सुवर्णके और चार रजतके मीना किये हुए शमादान, लोटों सहित स्वर्णके चार और रजतके दस थाल, सम्राट्के धारण करनेके निमित्त सोनेके कामको दस ख़िलअतें, दस रत्नजटित 'शाशिया' नामक टोपियाँ, दस तलवारें (इनमें एककी म्यान मुक्ता तथा रत्नजटित थी)। दस मुक्ताजटित दस्ताने (दस्तवान) और पंद्रह युवा दास—इतनी वस्तुएँ सम्राट्ने उपहारमें चीन-सम्राट्के पास भेजीं।

(१) बेरमिया—एक प्रकारका अत्यन्त उत्तम सूती वस्त्र होता था।

प्रसिद्ध विद्वान् अमीर ज़हीर-उद्दीन ज़नजानीको भी मेरे साथ यात्रा करनेका आदेश हुआ और उपहारकी समस्त वस्तुएँ सम्राट्के पास काफूर शरवदारकी सुपुर्दगीमें कर दी गयीं। समुद्र-तट तक हमको पहुँचानेके लिए अमीर मुहम्मद हरवीकी अध्यक्षतामें एक सहस्र सवार भी सम्राट्ने भेजे।

चीन सम्राट्के 'तरसी' नामक दूतके पन्द्रह अनुयायी और सौ भृत्य थे। ये सब भी हमारे साथ ही लौटे। इस प्रकारसे चीन जाते समय हमारे साथ एक अच्छा समुदाय हो गया था। सम्पूर्ण मार्गमें हमको सम्राट्की ओरसे ही भोजन मिलनेका प्रबन्ध था।

२—तिलपत

हिजरी सन् ७४३ के सफर मासकी सत्तरहवीं तिथिको हमने प्रस्थान किया। इस देशमें बहुधा प्रत्येक मासकी दूसरी, सातवीं, बारहवीं, सत्तरहवीं, बाईसवीं या सत्ताइसवीं तिथिको यात्रा करनेकी प्रथा है। प्रथम दिन हमने दिल्लीसे सात-आठ मीलकी दूरीपर स्थित तिलपत[1] नामक ग्राममें विश्राम किया। इसके पश्चात् 'आवो'[2] नामक स्थानमें होते हुए हम 'बयाना' पहुँचे।

---

(१) तिलपत—दिल्लीके ज़िलेमें मथुराकी सड़कके पास इस नामका एक प्राचीन गाँव अब भी है। प्राचीन कालमें पूर्वीय प्रान्तोंसे दिल्ली आनेवाले व्यक्ति प्रथम यहीं विश्राम करते थे। महाभारतके प्रसिद्ध 'पंच ग्राम' में इसकी भी गणना है, और यह इसकी प्राचीनताका प्रमाण है।

(२) आवो—यह गाँव इस समय भी मथुरा ज़िलेमें ओखला नहरसे कुछ मीलकी दूरीपर भरतपुर-मथुराकी सड़कपर स्थित है।

३—बयाना[1]

यह नगर अत्यंत सुंदर और विस्तृत है। यहाँका बाज़ार भी रमणीक है, और जामे (अर्थात् प्रधान) मसजिद भी अद्वितीय है। मसजिदकी दीवारें तथा छत पाषाणकी बनी हुई हैं। सम्राट्की धायका पुत्र मुज़फ्फ़र यहाँका हाकिम है। इसके पूर्व मलिके मुजीर इब्ने अबीरिजा इस पदपर प्रतिष्ठित

---

(१) बयाना—भरतपुर राज्यमें एक छोटासा नगर है। यहाँकी जनसंख्या भी अब पाँच-छः सहस्र ही होगी। मध्ययुगमें इस नगरका बड़ा महत्त्व था। सम्राट् अकबरके समय सरकार 'सूबा आगरा' से इस नगरका संबन्ध था। अबुलफ़ज़लके कथनानुसार उस समय इस नगरमें बहुतेरे प्राचीन भवन तथा तहख़ाने विद्यमान थे और तांबेके पात्र तथा अस्त्रादि भी प्राचीन खंडहरोंमें मिल जाते थे। इससे इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है।। उस समय यहाँपर एक मीनार बना हुआ था जो अब तक विद्यमान है। परंतु इस समय इसके केवल दो खंड शेष रह गये हैं। तृतीय खंड मैगज़ीनकी बारूदमें अग्नि लग जानेके कारण उड़ गया। सुलतान क़ुतुब-उद्दीन ख़िलजीके समयकी मलिक क़ाफ़ूर द्वारा निर्मित (हि० ७१८ की) रक्त पाषाणकी एक बावली भी यहाँ अबतक विद्यमान है और इसपर इसकी निर्माण-तिथि भी अंकित है।

प्राचीन वैभव तथा उसके नष्ट होनेकी कथाके संबंधमें यहाँके निवासी नीचे दिया हुआ दोहा पढ़ा करते हैं।

अगारह सौ तिहत्तर सुदि (बदि ?) फाग तीज रविवार।
विजय मंदिर गढ़ तोड़ा, अबूबक़र क़न्दहार।

गणना करनेसे यह समय हिजरी सन् ५१२ निकलता है। इस समय बहराम बिन मसऊद गज़नवी राजसिंहासनपर बैठा था और इसी सम्राट्के सेनानायक द्वारा इस प्राचीन नगरका पतन हुआ था।

था; यह अपने आपको कुरैशी कहता था परंतु था बड़ा ही क्रूर और निर्दयी। (इसका वर्णन पहले हो चुका है।)

इस नृशंसने नगरके बहुतसे व्यक्तियोंका वध कर डाला था और बहुतोंके हाथ-पाँव कटवा दिये थे। इसकी जघन्यता-को प्रदर्शित करनेवाले अत्यंत सुन्दर परंतु हस्तपादविहीन एक पुरुषको मैंने भी इस नगरमें अपने गृहकी दहलीज़में बैठे पाया।

सम्राट्के एक बार इस नगरमें होकर जाने पर जब नगर-निवासियोंने मलिके मुजीरकी शिकायत की तो सुलतान-ने इसको बन्दी कर गर्दनमें 'तौक़' (लोहेकी हँसली) डलवा मंत्रीके सामने बैठा दिया और नगर-निवासी इसकी क्रूरताकी कथाएँ उपस्थित होकर लिखवाने लगे। तदनंतर सम्राट्ने उन सब लोगोंको, जिनके साथ निर्दयताका व्यवहार हुआ था, राज़ी करनेकी आज्ञा निकाली और इसके ऐसा करने पर इसका वध कर दिया गया।

इस नगरके विद्वानोंमें इमाम अज़्ज़-उद्दीन ज़ुबेरीका नाम उल्लेख योग्य है। यह महाशय ज़ुबेर बिन उल-अवाम सहाबो रसूले खुदाके वंशज थे।

ग्वालियरमें मैं इनसे 'वाआज़मा' नामसे प्रसिद्ध श्री मलिक अज़्ज़ उद्दीन मुलतानीके गृहपर मिला था।

४—कोल

बयानासे चलकर हमलोग 'कोल' (अलीगढ़) आये और नगरके बाहर एक मैदानमें ठहरे। इस नगरमें आमके उप-वनोंकी संख्या बहुत अधिक है। यहाँ आकर मैंने 'ताज उल आरफीन' की उपाधिसे प्रसिद्ध शैख़ सालह आबिद शम्स-

उद्दीनके दर्शन किये। इनकी अवस्था बहुत अधिक थी और नेत्रोंकी ज्योति भी जाती रही थी। सम्राट्ने इसके पश्चात् इनको वन्दीगृहमें डाल दिया और वहीं इनकी मृत्यु होगयी। (मृत्युका वृत्तान्त मैं पहले ही लिख चुका हूँ।)

'कोल[1]' आने पर सूचना मिली कि नगरसे सात मीलकी दूरीपर जलाली[2] नामक स्थानके हिन्दुओंने विद्रोह कर दिया है। वहाँके निवासी हिन्दुओंका सामना तो कर रहे थे परन्तु अब उनकी जानपर आ बनी थी। हिन्दुओंको हमारे आनेकी कुछ भी सूचना न थी। हमने आक्रमण द्वारा सभी हिंदुओं (तीन सहस्र सवार तथा एक सहस्र पैदल) का वध कर उनके गृह तथा अस्त्रशस्त्रादि अधिगत कर लिये। हमारी ओरके केवल तैंतीस सवार और पचास पदाति खेत रहे। बेचारा काफूर लाक़ी अर्थात् शरबदार भी, जिसकी सुपुर्दगीमें चीन-सम्राट्की भेंट दी गयी थी, वीरगतिको प्राप्त हुआ। इस घटनाकी सूचना सम्राट्को देकर उत्तरकी प्रतीक्षामें हम लोग इसी नगरमें ठहर गये।

पर्वतोंसे निकल कर हिन्दू प्रतिदिन जलाली नगर पर आक्रमण किया करते थे, और हमारी ओरसे भी 'अमीर' हम सबको साथ लेकर उनका सामना करने जाता था। एक

(१) कोल—(अलीगढ़) में दौड़ राजपूतोंके समयका एक गढ़ बना हुआ है और इसके मध्यमें सलावतखाँकी मसजिद भी इस समय तक वर्तमान है। यहाँपर सम्राट् नासिर-उद्दीन महमूदके समयका (हि० ६५२) एक प्राचीन मीनार भी थी परन्तु ज़िलेके अधिकारियोंने सन् १८६१ में उसे ढहवा दिया।

(२) जलाली—इस नामका एक प्राचीन क़सबा वर्तमान अलीगढ़के पासमें ही पूर्वकी तरफ़ स्थित है।

दिन समुदायके साथ घोड़ोंपर सवार हो मैं बाहर गया। ग्रीष्म ऋतु होनेके कारण हम सब एक उपवनमें घुसे ही थे कि चिल्लाहट सुनाई दी और हम गाँवकी ओर मुड़ पड़े। इतनेमें कुछ हिन्दू हमारे ऊपर आ टूटे। परन्तु हमारे सामना करने पर उनके पाँव न टिके। यह देख हमारे साथियोंने भिन्न भिन्न दिशाओंमें उनका पीछा करना प्रारम्भ किया। मेरे साथ इस समय केवल पाँच पुरुष थे। मैं भी भगेड़ुओंका पीछा कर रहा था कि सहसा एक झाड़ीमेंसे कुछ सवार तथा पदातियोंने निकल कर मुझपर आक्रमण किया। अल्पसंख्यक होनेके कारण हमने अब भागना प्रारम्भ कर दिया, और दस पुरुष हमारा पीछा करने दौड़े। हम संख्यामें केवल तीन थे। धरती पथरीली थी और कोई राह दृष्टिगोचर न होती थी। मेरे घोड़ेके अगले पैर तक पत्थरोंमें अटक गये। लाचार होकर मैंने नीचे उतर उसके पैर निकाले और फिर सवार होकर चला।

इस देशमें दो तलवारें रखनेकी प्रथा है। एक ज़ीनमें लटकायी जाती है जिसको 'रकाबी' कहते हैं; और दूसरी तूणीरमें रखी जाती है।

मैं कुछ ही आगे बढ़ा था कि मेरी 'रकाबी' म्यानसे निकल कर गिर पड़ी। सुवर्णकी मूठ होनेके कारण उठानेके लिए मैं पुनः नीचे उतरा और उसको पृथ्वीसे उठा ज़ीनमें रख फिर चल पड़ा। शत्रु मेरा पीछा अब भी कर रहे थे। मैं एक गड्ढा देख उसीमें उतर पड़ा और उनको दृष्टिसे ओझल हो गया।

गड्ढेके मध्यसे एक राह जाती थी। यह न जानते हुए भी कि वह कहाँको जाती है, मैं उसीपर हो लिया और

कुछ ही दूर गया होऊँगा कि इतनेमें, लगभग चालीस बाणधारी पुरुषोंने मुझको सहसा घेर लिया। मेरे शरीरपर कवच न होनेके कारण भागनेमें तो यह भय लगा हुआ था कि कहीं कोई बाण द्वारा विद्ध न कर दे। अतएव धराशायी हो मैंने संकेत द्वारा ही इनको जता दिया कि मैं तुम्हारा बंदी हूँ। कारण यह कि ऐसा करनेवालेका ये कभी वध नहीं करते। लबादा (जुब्बा), पाजामा और क़मीज़ (कुरता) के अतिरिक्त मेरे सभी वस्त्र उतार, ये लोग बन्दी बना मुझको एक झाड़ीके भीतर ले गये। इसी स्थानपर वृक्षाच्छादित एक सरोवरके किनारे यह ठहरे हुए थे।

यहाँ आकर इन्होंने मुझको उर्द (मूंग ?) की रोटी दी।1 भोजन कर मैंने जल पिया। इनके साथ दो मुसलमान भी थे। इन्होंने फ़ारसी भाषामें मेरा निजी वृत्तांत पूछा। मैंने भी अपना सारा वृत्त कह दिया परंतु सम्राट्के सेवक होने की बात न बतायी।

यह कह कर कि ये लोग तेरा अवश्य वध कर देंगे, इन्होंने एक पुरुषकी ओर संकेत कर बताया कि यह इनका सर्दार है। मैंने इन्हीं मुसलमानों द्वारा अब उस पुरुषसे अनुनय-विनय इत्यादि करना प्रारंभ किया।

इसके अनन्तर सर्दारने मुझको एक वृद्ध, उसके पुत्र और एक दुष्टप्रकृति कृष्णकाय मनुष्य—इन तीन व्यक्तियोंके सुपुर्द कर कुछ आज्ञा दे विदा कर दिया। परंतु अपनी वध-संबंधी आज्ञाको मैं न समझ सका।

ये तीनों पुरुष मुझको उठाकर एक घाटीकी ओर ले चले, परंतु राहमें उस कृष्णकाय पुरुषको ज्वर हो जानेके कारण वह मेरे शरीरपर अपने दोनों पाँव रख कर सो गया

और इसके उपरांत वृद्ध तथा उसका पुत्र दोनों सो गये। प्रातःकाल होते ही ये तीनों आपसमें बातें करने और मुझको सरोवर तक चलनेका संकेत करने लगे। यह बात भलीभाँति समझ कर कि मेरी मृत्युका समय अब निकट आगया है, मैंने वृद्धकी प्रार्थना पुनः प्रारंभ कर दी। उसको भी अंतमें मेरे ऊपर दया आ गयी।

यह देख मैंने अपने कुरतेकी बाँहें फाड़ उसको इसलिए दे दीं कि जिसमें वह उनको दिखा कर अपने साथियोंसे कह सके कि बंदी भाग गया। इतनेमें हम सरोवरके निकट आ गये और कुछ पुरुषोंका शब्द भी वहाँसे आता हुआ सुनाई देने लगा। अपने सब साथियोंको वहाँपर एकत्र जान वृद्धने मुझसे संकेत द्वारा पीछे पीछे आनेको कहा। सरोवरपर पहुँच कर मैंने वहाँ बहुतसे पुरुषोंको एकत्र पाया। इन लोगोंने वृद्धसे अपने साथ चलनेको कहा परन्तु वृद्ध तथा उसके साथियोंने यह बात स्वीकार न की।

वृद्ध तथा उसके साथियोंने अपने हाथकी भंगकी रस्सी खोल पृथ्वीपर रख दी और मेरे सामने बैठ गये। यह देख मैंने यह समझा कि इस रस्सीसे बाँध कर ये मेरा वध करना चाहते हैं। इसके पश्चात् तीन पुरुष इनके पास आ वार्तालाप करने लगे। इससे मैंने यह अनुमान किया कि वे यह पूछ रहे हैं कि इस पुरुषका वध अबतक क्यों नहीं किया गया। यह सुन बूढ़ेने कृष्णकाय व्यक्तिको ओर संकेत कर कहा कि इसको ज्वर आ जानेके कारण यह कार्य अबतक स्थगित कर दिया गया था। इन तीनों व्यक्तियोंमें एक अत्यन्त सुन्दर तथा युवा पुरुष भी था। इसने अब मेरी ओर देखकर संकेत द्वारा पूछा कि क्या तू स्वतन्त्र होना चाहता है? मेरे 'हाँ' करने पर

उसने मुझको जानेकी आज्ञा दे दी। यह सुन मैंने अपना 'जुब्बा' अर्थात् लबादा उसको दे दिया और उसने भी अपनी पुरानी कमरी उठाकर मुझको दे दी और एक राहकी ओर संकेत कर कहा कि इसी पथसे चला जा।

मैं चल तो दिया परंतु मनमें अब भी डर था कि कहीं और लोग मुझको न देख लें। बाँसका जंगल देख मैं उसीमें हो रहा और सूर्यास्ततक वहीं छिपा रहा। रात होते ही मैं वहाँसे निकल उस युवाके प्रदर्शित पथपर पुनः चल पड़ा। कुछ काल पश्चात् मुझे जल दिखाई दिया और मैं अपनी प्यास बुझा फिर राहपर हो लिया और तृतीयांश रात बीतने तक चलता रहा; इतनेमें एक पर्वत आ गया और मैं उसीके नीचे पड़ कर सो गया। प्रातःकाल होते ही पुनः यात्रा प्रारंभ कर दी और दोपहर होते होते एक ऊँची पहाड़ीपर जा पहुँचा। यहाँ कीकड़ और बेरीकी भरमार थी। क्षुधा-शान्तिके लिए मैंने बेर भी भरपेट खाये। काँटोंके कारण मेरे पैर इतने घायल हो गये थे कि आजतक उनके चिन्ह वर्त्तमान हैं।

मैं अब पहाड़से उतर एक घासके खेतमें आ गया। इसमें एरंडके वृक्ष लगे हुए थे और एक बाईं (बावली) भी बनी हुई थी (सीढ़ीदार बड़े कूपको बाईं कहते हैं)। कहीं कहीं सीढ़ियाँ जलके भीतर तक भी होती हैं और वहाँपर दालान इत्यादि भी बना दिये जाते हैं। इस देशके धनाढ्य पुरुष इस प्रकारके कूप बनवानेमें अपना बड़प्पन तथा गौरव समझते हैं। यह कूप बहुधा ऐसे देशोंमें बनवाये जाते हैं जहाँ जलका अभाव होता है।

इस कूपमें उतर कर मैंने जल पिया। वहाँपर कुछ

सरसोंके पत्ते भी पड़े हुए थे। ऐसा प्रतीत होता था कि किसीने वहाँ बैठकर सरसों धोयी है। कुछ सरसों तो मैंने खा ली और शेष बाँधकर अपने पास रख ली। इस प्रकार उदर पूर्ति कर मैं एरंडके वृक्षके नीचे ही पड़कर सो गया। इतनेमें चालीस कवचधारी अश्वारोही सैनिक उस बाईपर आ पहुँचे और इनके कुछ साथी तो खेत तक चले आये परंतु दैवगतिसे किसीकी भी दृष्टि मेरे ऊपर नहीं पड़ी। इनको आये हुए थोड़ा ही समय बीता होगा कि पचास पुरुषोंका एक अन्य दल बाईपर आकर खड़ा हो गया। इस समुदायका एक आदमी तो मेरे सामनेके वृक्ष तक आ जाने पर भी मुझे न देख सका। मुआमला बेढब होता देख मैं घासके खेतमें जा छिपा और आगन्तुक वाईपर जा स्नान तथा जल-क्रीड़ामें रत हो गये। रात्रिमें उनका शब्द बंद हो जाने पर, उनको सोया हुआ समझ कर, मैं विश्राम-स्थलसे बाहर आ अश्वोंकी लीकपर चल दिया। चाँदनी खिली होनेके कारण मैं बराबर चलता रहा, और अंतमें अन्य बाईके निकट जा पहुँचा। यहाँ उतर कर मैंने अपने पाससे सरसोंके पत्ते निकाल कर खाये और जल पीकर तृषा शांत की। पास-में ही एक गुम्बद देखकर मैं उसीके भीतर चला गया। भीतर जाकर देखने पर वहाँ पत्तियों द्वारा लायी हुई बहुतसी घास पड़ी मिली; बस मैं उसीपर पैर फैलाकर लेट गया। रात्रिको घासमें सर्पकी सी किसी वन्य-जन्तुकी सरसराहट प्रतीत होने पर भी थकावटके कारण मैंने उसकी तनिक परवाह न की। प्रातःकाल होते ही मैं एक विस्तृत सड़कपर चल कुछ देरमें एक ऊँचे गाँवमें जा पहुँचा और वहाँसे दूसरे गाँवकी ओर चल दिया। इसी प्रकार

कई दिवस पर्य्यंत घूमता फिरता अंतमें एक दिन मैं वृक्षोंके झुंडमें जा पहुँचा।

यहाँ एक सरोवरके मध्यमें गृहसा बना हुआ दीखता था और तटपर खजूरके वृक्ष लगे हुए थे। थक जानेके कारण मैं यहाँ बैठ गया और इस चिंतामें था कि ईश्वरके अनुग्रहसे यदि कोई व्यक्ति दृष्टिगोचर हो जाय तो बस्तीकी राह पूछ लूँ। कुछ काल पश्चात् देहमें बल आ जाने पर मैं पुनः चल पड़ा। राहमें मुझको बैलोंके खुर दृष्टिगोचर हुए, और एक बैल भी जाता हुआ देख पड़ा—इसपर एक कम्बल और दरान्ती भी रखी हुई थी। परन्तु इस राहको कुफ्फ़ार (अर्थात् हिन्दुओं) के प्रान्तोंकी ओर जाते देख मैं दूसरी ओर चल पड़ा और एक ऊजड़ गाँवमें जा पहुँचा। यहाँ दो कृष्ण-काय नंगे पुरुषोंको देख मैं वृक्षके नीचे डर कर बैठ गया और रात्रि हो जाने पर गाँवमें घुसा। वहाँ एक उजाड़ गृहमें मुझको अनाज भरनेकी मिट्टीकी एक कोठी दिखाई पड़ी जिसके निचले भागमें आदमीके प्रवेश करने लायक एक बड़ा सा छिद्र बना हुआ था। यह देख मैं उसीमें घुस पड़ा और भीतर जाकर एक पत्थर पड़ा देख उसीका तकिया लगा कर सो रहा। सारी रात मुझको वहाँपर किसी जन्तुके फड़ फड़ करनेकासा शब्द सुनाई देता रहा। यह जन्तु मुझसे भयभीत हो रहा था और मैं इससे। अबतक मुझे इस प्रकार फिरते फिरते पूरे सात दिन बीत गये थे।

सातवें दिन मैं हिन्दुओंके एक गाँवमें पहुँचा। यहाँ एक सरोवर भी था और शाक भाजी भी; परन्तु माँगने पर किसी ग्रामनिवासीने मुझे भोजन तक न दिया। लाचार हो कूपके पास पड़ी हुई मूलीकी पत्तियोंको ही खाकर मैंने क्षुधानिवृत्ति

की। गाँवमें हिन्दुओं (काफिरों) का एक समुदाय भी खड़ा हुआ था और रखवाले भी घूम रहे थे। इनमेंसे एकने मेरा वृत्त जानना चाहा परन्तु उसको कुछ उत्तर न दे मैं धरतीपर बैठ गया। फिर इनमेंसे एक पुरुष मेरे ऊपर तलवार खींच कर आया, परन्तु थक कर चूर हो जानेके कारण मैंने उसकी ओर देखा तक नहीं। इसपर उसने मेरी तलाशी ली। तलाशीमें उसको कुछ न प्राप्त होने पर मैंने अपना बाहु-विहीन कुरता ही उसको दे डाला।

अगले दिन मैं प्यासके कारण व्याकुल हो उठा और बहुत ढूँढ़ने पर भी जलका पता न मिला। एक उजाड़ गाँवमें गया परन्तु वहाँ भी जलका नाम तक न था। इस देशमें वर्षा-ऋतु-का जल एकत्र कर पीनेकी परिपाटी है। हार कर मैं भी एक राहपर हो लिया। यहाँ एक कच्चे कूपके दर्शन हुए। पनघटपर केवल मूँजकी रस्सी पड़ी हुई थी, डोलका पता न था। लाचार हो अपनी पगड़ीको ही रस्सीमें बाँधा और जो कुछ जल इस तरह आ सका उसीको चूसना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु प्यास न बुझी। अब मैंने अपना एक मोज़ा रस्सीमें बाँधा परन्तु भाग्यवश रस्सी ही टूट पड़ी और मोज़ा कूपमें जा गिरा। यह देख मैंने दूसरा मोज़ा बाँधा और भर पेट जल पिया।

तृषा शान्त होने पर मैं मोज़ेका ऊपरी भाग रस्सी तथा धज्जी द्वारा पाँवपर बाँध ही रहा था कि आँख उठाने पर मुझको एक कृष्णकाय पुरुष आता हुआ देख पड़ा। इसके एक हाथमें लोटा और दूसरेमें डण्डा था, और कन्धेपर झोली पड़ी हुई थी। आते ही इस पुरुषने मुझसे 'अस्सलामोलेकुम' कहा और मैंने भी इसके उत्तरमें "अलैकोमुस्सलाम व रहमत

उल्ला व बरकात हू" (अर्थात् सलामती तुम्हारे ऊपर हो और ईश्वरकी कृपा भी) कहा। इस पुरुषके फ़ारसी भाषामें 'चैह कसी' (तुम कौन हो?) कहने पर मैंने उत्तर दिया कि मैं राह भूल गया हूँ। मेरा यह उत्तर सुन आगन्तुक भी स्वयं अपनी राह भूलना बताकर लोटे द्वारा कूएसे जल खींचने लगा। मैं भी जल पीना चाहता था परन्तु उसने मेरा यह विचार रोक कर तनिक धीरज धरनेको कहा और अपनी झोलीमेंसे भुने हुए चने और चावल (चौले) निकाल मुझको खानेको दिये। इस प्रकार अपनी क्षुधा शांत कर मैंने जल पिया और उस पुरुषने वज़ू (नमाज़के पूर्व विशेष प्रकारसे हस्तपाद और मुखादि धोनेकी क्रिया) कर नमाज़की दो रकअतें (खण्ड विशेष—कुरान शरीफके अध्यायके खंडोंसे अभिप्राय है) पढ़ीं। कहना न होगा कि मैंने भी इसी प्रकार वज़ूसे निवृत्त हो इसी स्थलपर नमाज़ पढ़ी।

उपासनासे निवृत्त होने पर उसके प्रश्न करने पर मैंने अपना नाम मुहम्मद मीर अनाम बताकर जब उसका नाम पूछा तो उसने कहा कि मुझे कल्ब-फ़ारह (अर्थात् प्रसन्नचित्त) कहते हैं। उत्तर सुनते ही मेरे मुखसे निकला कि शकुन तो अच्छा हुआ; और यह कह कर मैंने अपनी राह पकड़ी। मुझको इस प्रकार जाते देख उसने मुझसे अपने साथ चलनेको कहा और मैं उसीके साथ हो लिया। कुछ ही दूर चलने पर मेरे शारीरिक अवयवोंने जवाब दे दिया और मैं थक कर चूर हो जानेके कारण राहमें हीं बैठ गया। यह देख उसने जब मेरी दशा जाननी चाही तो मैंने यह उत्तर दिया कि भाई, तुम्हारे न आने तक तो मुझमें चलनेकी शक्ति थी, परन्तु अब न जाने किस कारणवश मैं एक पग भी नहीं चल सकता।

यह सुन उसने 'सुबहान अल्लाह' (अर्थात् ईश्वर शुद्ध है) कह कर अपनी गर्दनपर चढ़ बैठनेका आदेश किया। परन्तु उस वृद्ध पुरुषके ऊपर इस प्रकार सवार होनेको जी नहीं चाहता था। पर वह न माना और यह कहकर कि ईश्वर मुझे बल देगा, उसने आग्रहपूर्वक मुझको अपने ऊपर बैठा 'हस्बन अल्लाहो नेमउल वकील' (अर्थात् परमेश्वर पवित्र है और हमारा प्रतिनिधि है) उच्चारण करने को कहा।

वृद्धके आदेशानुसार यह पाठ करते ही मुझको निद्रा आ गयी। धरतीपर पाँव टेकनेके समय जब मेरी आँख खुली तो उसका पता न था और मैंने अपनेको एक जन-पूर्ण गाँवमें खड़ा पाया।

वस्तीके भीतर प्रवेश करने पर पता लगा कि यहाँकी हिन्दू जनता सम्राट्के अधीन है और यहाँका हाकिम भी मुसलमान ही है। सूचना मिलने पर वह मेरे पास आया। उससे प्रश्न करने पर मालूम हुआ कि इस गाँवका नाम ताजपुरा है और कोल यहाँसे दो फ़रसख़ (कोस) की दूरीपर है।

हाकिमने अपने घर ले जाकर मुझको स्नान कराया और उष्ण भोजन दे कहा कि मिश्रदेशीय एक व्यक्ति मुझको कोलसे आकर एक घोड़ा और अमामा (पगड़ी) दे गया है। कैम्प-तक जाते समय इन वस्तुओंका ही उपयोग करनेकी इच्छासे मैंने जब इनको मँगवाया तो पता चला कि यह तो वही वस्त्र हैं जो मैंने उस मिश्रदेशीय पुरुषको दे दिये थे। अपनी गर्दनपर सवार करानेवालेका स्मरण करके मुझको अभी तक आश्चर्य हो रहा था। मैं बारम्बार स्मरण करने पर भी बहुत काल तक यह निर्णय न कर सका कि वह पुरुष कौन था।

अन्तमें मुझे वली-अल्लाह (ईश्वर-भक्त) अबू अबदुल्ला मुरशदी-के वचन स्मरण हो आये। उन्होंने मुझसे कह दिया था कि मेरा भ्राता एक बड़ी कठिनाईसे तेरा उद्धार करेगा। मुझे अब यह भी याद हो आया कि उन्होंने उसका नाम 'दिलशाह' बताया था, और 'क़ल्ब-फ़ारह' का भी यही अर्थ होता है। अब मुझे पूरा विश्वास होगया कि शैख़ अबू अबदुल्ला मुरशदीने जिस पुरुषके सम्बन्धमें मुझसे कहा था वह यही था और यह अवश्य ही महात्मा था। परन्तु मुझे तो इसी बात-का दुःख रहा कि उसका साथ कुछ और काल तक मेरे भाग्य-में न था।

इसी रातको मैं यहाँसे चल पड़ा। कैम्पमें पहुँच कर मैंने अपने सकुशल लौटनेकी सूचना दी। मुझको इस प्रकारसे आया हुआ देखकर लोगोंके हर्षकी सीमा न रही। मुझे वस्त्र तथा अश्व आदि भी उसी समय दिये गये।

इस बीचमें सम्राट्का उत्तर भी आगया। उसने धर्मवीर क़ाफ़ूरके स्थानमें गुलाम सुंबुल नामक पुरुषको नियत कर यात्रा करते रहनेका आदेश भेजा था। परन्तु यहाँपर मेरा बन्दी होजाना अशुभ-सूचक समझ कर उन लोगोंने सम्राट्को यात्रा स्थगित करनेका प्रार्थनापत्र भेज दिया था। यात्रा बन्द न करनेके सम्बन्धमें सम्राट्का आदेश आ जाने पर मैंने बल देकर यात्राका विचार और भी दृढ़ करना चाहा, पर सबने यह कहना प्रारम्भ किया कि यात्राके प्रारम्भमें ही उत्पात आरम्भ होनेके कारण, या तो यात्रा ही बन्द कीजिये या सम्राट्के उत्तरकी प्रतीक्षा कीजिये, परन्तु मैंने ठहरना उचित न समझा और यह कह दिया कि सम्राट्का उत्तर हमको राहमें ही मिल सकता है।

५—व्रजपुरा

कोलसे चल कर दूसरे दिन हमने व्रजपुरा (व्रजपुर) में पड़ाव किया। यहाँपर एक अत्यन्त उत्तम ख़ानकाह (मठ) में मुहम्मद उरियाँ (नग्न) नामक शैख़ रहते थे। यह महाशय जैसे देखनेमें सुन्दर थे वैसा ही उत्तम इनका स्वभाव भी था। जब हम इनके दर्शनार्थ गये तो शैख़ महोदयके शरीरपर एक तैमदके अतिरिक्त और कोई वस्त्र न था। मालूम हुआ कि यह सदा इसी प्रकारसे रहते हैं।

शैख़ महोदय मिश्रदेशीय 'क़राफ़ा' नामक स्थानके प्रसिद्ध तत्ववेत्ता और ईश्वरभक्त महात्मा शैख़ सालह वली अल्लाह मुहम्मद उरियाँके शिष्य थे। यह गुरुदेव भी नाभि-प्रदेशसे लेकर पादपर्यन्त चौड़ा केवल एक तैमद बाँधा करते थे। कहते हैं कि यह महात्मा इशाकी नमाज़के पश्चात् प्रति दिन मठका अनाज आदि सब कुछ दीन-दुखियोंको बाँट दिया करते थे और दीपकी बत्ती तक निकाल कर फेंक देते थे; और प्रातःकाल होते ही ईश्वरपर भरोसा कर नया कार्यक्रम प्रारम्भ कर देते थे। अपने भृत्योंको सर्वप्रथम रोटी तथा बाक़ला खिलाते थे। इस स्वभावसे परिचित होनेके कारण बाक़ला बेचनेवाले प्रातःकाल होते ही मठमें आ बैठते थे और शैख़जी आवश्यकतानुसार भाजी मोल लेकर यह आश्वासन दे देते थे कि इसके मूल्यमें तुमको प्रथम पुरुषकी न्यूनाधिक सम्पूर्ण भेंट दे दी जायगी।

जब सम्राट् ग़ाज़ाँ तातारी सैन्य सहित शाम (सीरिया) में पहुँच दमिश्कको अधिकृत कर लेने पर भी गढ़को न ले सका, तो उसका सामना करनेके लिए मलिक नासिर

मैदानमें आया। दमिश्ककी दूसरी ओर 'क़शहब' नामक स्थानमें दोनोंका युद्ध ठना।

नासिर इस समय युवा था और इसके पहले उसको किसी युद्धमें भाग लेनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ था। शैख़ मुहम्मद उरियाँ भी उस समय सेनाके साथ ही थे। उन्होंने यह विचार कर कि नासिरके रुकें रहनेसे मुसल्मान भी रुके रहेंगे, नासिरके घोड़ेके पाँवोंमें शृंखलाएँ डाल उसको भागनेमें असमर्थ कर दिया। इसका फल यह हुआ कि मलिक अपने स्थानसे तिल मात्र भी न हट सका और तातारियोंकी बुरी तरह हार हुई; बहुतसे जानसे मार दिये गये और बहुतोंने नदीमें डूब कर प्राण दे दिये। इसके पश्चात् तातारियोंने शाम (सीरिया) तथा मिश्रकी ओर कभी मुख तक न फेरा।

भारत-निवासी शैख़ मुहम्मद उरियाँ मुझसे कहते थे कि मैं भी उस युद्धमें उपस्थित था और उस समय युवावस्थामें था।

६—काली नदी और क़न्नौज

ब्रजपुरासे चल कर आवेस्याह अर्थात् कालीनदी[१] पार कर हम लोग क़न्नौज[२] नामक अत्यंत प्रसिद्ध नगरमें

(१) कालीनदी—इस नामकी दो नदियाँ हैं—एक पूर्वीय और दूसरी पश्चिमीय। ग्रंथकारका अभिप्राय यहाँ दूसरीसे ही है जो मुज़फ़्फ़रनगरके ज़िलेसे निकल कर मेरठ, बुलंदशहर, अलीगढ़, एटा तथा फर्रुख़ाबादके जिलोंमें बहती हुई क़न्नौजसे चार मील आगे बढ़कर गंगामें जा मिलती है। गिब्ज़ साहबके अनुसार यह कालिन्दी अर्थात् यमुना थी।

(२) क़न्नौज—फर्रुख़ाबादके ज़िलेमें एक अत्यंत प्राचीन नगर है। प्रसिद्ध यवन भौगोलिक बतलीमूसः (ई० सन् १४०) और प्रसिद्ध

पहुँचे। यहाँका गढ़ अत्यंत ही दृढ़ बना हुआ है। यहाँपर खाँड़ खूब उत्पन्न होती है और सस्ती होनेके कारण दिल्ली तक जाती है। नगर-प्राचीर भी खूब ऊँचा बना हुआ है। इस नगरका वर्णन मैं इससे पूर्व भी कर चुका हूँ। नगर-निवासी शैख़ मुईन-उद्दीनने यहाँ आने पर हमको एक भोज दिया। यहाँका हाकिम फ़ीरोज़ बदख़शानी (बदख़शा-निवासी) बहरामचोबी किसरा नामक सम्राट्का वंशज है।

शरफ़े-जहाँके बहुतसे विद्वान् एवं धर्मात्मा वंशज भी यहीं रहते हैं। उनके दादा दौलताबादमें क़ाज़ी-उल-कुज़्ज़ात थे और धर्मात्मा तथा पुण्यात्मा होनेके कारण वे चारों ओर प्रसिद्ध हो गये थे। कहा जाता है कि एक बार इनके पदहीन होने पर किसी व्यक्तिने स्थानापन्न क़ाज़ीके यहाँ इनपर सहस्र दीनार (मार लेने) का आरोप कर इनको शपथ दिलानेके अभिप्रायसे यह कह दिया कि मेरा कोई अन्य व्यक्ति साक्षी नहीं है। क़ाज़ी द्वारा बुलाये जाने पर इन्होंने आरोपका स्वरूप जानना चाहा और यह मालूम होते ही कि दस सहस्र दीनारका आरोप मुझपर लगाया गया है, क़ाज़ी शरफ़े-जहाँने तुरंत ही यह रक़म क़ाज़ीके पास वादीको देनेके लिए भेज दी। इस घटनाकी सूचना मिलतेही सम्राट् अला-उद्दीनने,

चीनी यात्री फ़ाहियान (ई० सन् ४००) तथा हुएन्‌संग (ई० सन् ६३४) से लेकर मुसलमान शासकोंके समय तकके सभी पर्यटकोंने इस नगरका वर्णन किया है और इसे गंगातटपर ही बसा हुआ बताया है। परंतु गंगा यहाँसे इस समय चार मीलकी दूरीपर है और काली-नदी नगरके नीचे बहती है। यहाँका अंतिम स्वाधीन हिंदू-नृपति जय-चन्द मुहम्मद ग़ोरीसे पराजित होने पर गंगा नदी पार करते समय डूब कर मर गया; और उसी समयसे इस नगरका ह्रास होना प्रारंभ हुआ।

अभियोग मिथ्या होनेके कारण, क़ाज़ी शर्फ़े-जहाँको पुनः उसी पदपर प्रतिष्ठित कर राजकोषसे उनके पास दश सहस्र दीनार भेज दिये।

क़न्नौजमें हम तीन दिन ठहरे और इस बीचमें सम्राट्का यह उत्तर भी आ गया कि शैख़ इब्नेबतूताका पता न लगने पर दौलताबादके क़ाज़ी वजीह उल-मुल्क उनके स्थानमें 'दूत' बन कर जायँ।

७—हन्नौल, वज़ीरपुरा, वजालसा और मौरी

क़न्नौजसे चल कर हन्नौल, वज़ीरपुरा, वजालसा होते हुए हम मौरी[१] पहुँचे। नगर छोटा होने पर भी यहाँके बाज़ार सुन्दर बने हुए हैं। इसी स्थानपर मैंने शैख़ कुतुब-उद्दीन हैदर ग़ाज़ीके दर्शन किये। शैख़ महोदयने रोग-शय्यापर पड़े रहने पर भी मुझको आशीर्वाद दिया, मेरे लिए ईश्वरसे प्रार्थना की और एक जौकी रोटी मेरे लिए भेजनेकी कृपा की। यह महाशय अपनी अवस्था डेढ़ सौ वर्षकी बताते थे। इनके मित्रोंने हमें बताया कि यह प्रायः व्रत तथा उपवासमें ही रत रहते हैं और कई दिन बीत जाने पर कुछ भोजन स्वीकार करते हैं। यह चिल्ले (चालीस दिन-व्यापी व्रत-विशेष) में बैठने पर प्रत्येक दिन एक खजूरके हिसाबसे केवल चालीस खजूर खाकर ही रह जाते हैं। दिल्लीमें शैख़ रजब बरक़ई नामक एक ऐसे शैख़को मैंने स्वयं देखा है जो चालीस खजूर लेकर चिल्लेमें बैठते हैं और फिर भी अंतमें उनके पास तेरह खजूर शेष रह जाते हैं।

---

(१) मौरी या मानरीका ठीक पता नहीं। शायद भिंड (ग्वालियर राज्य) के पासके मावरी नामक स्थानका ही उस समय यह नाम रहा हो।

इसके पश्चात् हम 'मरह' नामक नगरमें पहुँचे। यह नगर बड़ा है और यहाँके निवासी हिंदू भी ज़िमी हैं (अर्थात् धार्मिक कर देते हैं)। यहाँपर एक गढ़ भी बना हुआ है। गेहूँ भी इतना उत्तम होता है कि मैंने चीनको छोड़ ऐसा उत्तम लंबा तथा पीत दाना और कहीं नहीं देखा। इसी उत्तमताके कारण इस अनाजकी दिल्लीकी ओर सदा रफ्तनी होती रहती है।

इस नगरमें मालव जाति निवास करती है। इस जातिके हिंदू सुन्दर तथा बड़े डील-डौलवाले होते हैं। इनकी स्त्रियाँ भी सुन्दरता तथा मृदुलता आदिमें महाराष्ट्र तथा मालद्वीप-की स्त्रियोंकी तरह प्रसिद्ध हैं।

८—अलापुर

इसके अनन्तर हम अलापुर[1] नामक एक छोटेसे नगरमें पहुँचे। नगर-निवासियोंमें हिन्दुओंकी संख्या बहुत अधिक है और सब सम्राट्के अधीन हैं। यहाँसे एक पड़ावकी दूरीपर कुशम[2] (कुसुम?) नामक हिन्दू राजाका राज्य

(१) अलापुर—यह नगर ग्वालियरके निकट कहीं रहा होगा। आईने अक्बरीमें लिखा हुआ है कि सर्कार ग्वालियरमें इस नामका एक दुर्ग था; और उसका प्राचीन नाम उरवारा या अरवारा था। सम्भव है, बतूताका अभिप्राय इसी नगरसे हो।

(२) कुसुम—बहुत सम्भव है कि नगरका नाम 'कुसुम' और सम्राट्का नाम 'जम्बील' रहा हो, किन्तु इब्नबतूताने भूलसे ये नाम परिवर्तित कर दिये हों, क्योंकि यमुना नदीपर, इलाहाबादसे ३३ मील इधर, कोसम (कौशाम्बी) नामक एक प्राचीन नगरके भग्नावशेष अब भी मिलते हैं। सुलतानपुर नामक एक गाँव भी यहाँसे ११७ मीलकी दूरीपर, गंगाके दूसरे किनारेपर, बसा है।

प्रारम्भ हो जाता है। 'जंबील'[१] उसकी राजधानी है। ग्वालियरका घेरा डालनेके पश्चात् इस नृपतिका वध कर दिया गया था।

इस हिन्दू नृपतिने यमुना-तटस्थ रावड़ी'[२] नामक स्थानका भी एक बार अवरोध किया। वहाँके हाकिम ख़िताबे-अफ़गानकी शूरोंमें गणना होती थी और नगर तथा आसपासके बहुतसे ग्राम तथा मज़रे (खेत) उसके अधीन थे। राजा 'कुसुम' को सुलतानपुर[३] के अधिपति रज्जुकी सहायता प्राप्त कर अपने ऊपर आते देख (मुसलमान) हाकिमने सम्राट्से सहायता चाही परन्तु राजधानीसे यह स्थान चालीस पड़ावकी दूरीपर होनेके कारण सहायता

---

(१) जंबील—कहीं यह वर्तमानकालीन धौलपुर तो नहीं है।

(२) रावड़ी—परगना शिकोहाबाद, ज़िला मैनपुरीमें यमुनानदीके किनारे मैनपुरीसे आग्नेय कोणमें ४४ मीलकी दूरीपर यह गाँव इस समय भी विद्यमान है। कहा जाता है कि ज़ोरावर सिंह उपनाम रावड़ सैनने इसको बसाया था। सन् ११९४ में सम्राट् मुहम्मद ग़ोरीने इसको उसके वंशजोंसे छीन लिया। मुसलमान शासकोंके समयमें यह बड़ा समृद्धिशाली नगर था। यह स्थान आगरेसे ४० मीलकी दूरीपर है। मालूम होता है कि बतूताने भ्रमवश इसको दिल्लीसे ४० पड़ावकी दूरीपर लिख दिया है।

(३) सुलतानपुर—यह नगर इस समय भी अवधमें वर्तमान है। हिजरी सन्की छठी शताब्दीमें यहाँपर बिहार राजपूतोंका आधिपत्य था और तत्पश्चात् सम्राट् मुहम्मद ग़ोरी द्वारा इनका राज्य नष्ट-भ्रष्ट होने पर मुसलमानोंका प्रभुत्व स्थापित हो गया। उस समय नगरका नाम 'कोसापुर' था परंतु विपक्षियोंने अपनी विजयके बाद इसको भी 'सुलतानपुर' में परिवर्तित कर दिया।

आनेमें विलम्ब हुआ और इधर दोनों अधिपतियोंने नगरको चारों ओरसे घेर लिया। यह देख ख़िताबे अफ़गानने इस भयसे कि कहीं हिन्दू हमपर विजय प्राप्त न कर लें, तीन सौ पठान, इतने ही दास तथा चार सौ अन्य पुरुष एकत्र कर सबको साथ ले लिया और घोड़ोंके गलेसे साफे बाँध नगरसे बाहर निकल पड़ा। (इस देशमें ऐसी प्रथा है कि मरनेको उतारू होने पर लोग अपने घोड़ोंके गलोंमें साफा बाँध युद्ध करने जाते हैं।) इस छोटेसे समुदायने घोर युद्ध द्वारा पन्द्रह सहस्र हिन्दुओंको ऐसा परास्त किया कि भगोड़ोंके अतिरिक्त दोनों सेनाओंमें एक भी पुरुष जीता न बचा। दोनों राजाओं सहित सारी सेना मारी गयी। राजाओंके सिर काट कर सम्राट्की सेवामें दिल्ली भेज दिये गये।

सम्राट्का दास 'बदर' नामक एक हवशी अलापुरका हाकिम था। वीरता और साहसमें यह व्यक्ति अद्वितीय था। हिन्दुओंकी वस्तियोंमें सदा अकेला ही चला जाता और लूट-पाट करता था; बहुतसे लोगोंका वध कर डालता और बहुतोंको बाँध कर ले आता था। धीरे धीरे समस्त देशमें इसकी प्रसिद्धि हो गयी और हिन्दू इसके नाम तकसे भयभीत हो काँपने लगे थे। इस व्यक्तिका डीलडौल भी खूब लम्बा चौड़ा था। यह एक ही स्थानपर बैठ समूची बकरी हड़प कर जाता था। लोग तो यहाँ तक कहते थे कि हबशियोंकी प्रथानुसार यह नररूप दानव भोजनके पश्चात् पक्का तीन पाव घी पी जाया करता है। इसका पुत्र भी अपने पिताके तुल्य शूरवीर था। एक बार संयोग-वश दासों सहित किसी हिन्दू गाँवपर आक्रमण करते समय इसके घोड़ेकी टाँग गड्ढेमें आ पड़ी और इतनेमें

गाँववालोंने कत्तारह (कटार) द्वारा इसका वध कर दिया। स्वामीकी मृत्युके उपरान्त भी दास बड़ी वीरतासे लड़े। उन्होंने गाँववालोंका वध कर उनकी वधुओंको वन्दी बना लिया और स्वामीके अश्वके साथ उन्हें पुत्रके पास ले आये। दैवयोगसे पुत्र भी इसी अश्वपर सवार हो दिल्लीको ओर जा रहा था कि राहमें ही काफ़िरोंने आक्रमण कर उसका वध कर डाला और घोड़ा भाग कर स्वामीके अनुयायियोंके पास आगया। घर आने पर जब जामाता इसी अश्वपर सवार हुआ तो हिन्दुओंने उसका भी इसी अश्वपर वध कर डाला।

६—ग्वालियर

इसके पश्चात् हम गालियोर[1] की ओर चल दिये। इसको ग्वालियर भी कहते हैं। यह भी अत्यंत विस्तृत नगर है। पृथक् चट्टानपर यहाँ एक अत्यंत दृढ़ दुर्ग बना हुआ है। दुर्गद्वारपर महावत सहित हाथीकी मूर्ति खड़ी है। नगरके हाकिमका नाम अहमद बिन शेर खाँ था। इस यात्राके पहले मैं इसके यहाँ एक बार और ठहरा था। उस समय भी इसने मेरा बहुत आदर-सत्कार किया था। एक दिन मैं उससे मिलने गया तो क्या देखता हूँ कि वह एक काफ़िर (हिंदू) के दो टूक करना चाहता है। शपथ दिलाकर मैंने उसको यह कार्य न करने दिया क्योंकि आजतक मैंने किसी-का वध होते हुए अपनी आँखोंसे नहीं देखा था। मेरे प्रति आदर-भाव होनेके कारण उसने उसको बंदी करनेकी आज्ञा दे दी और उसकी जान बच गयी।

(१) इस नगरके सम्बन्धमें पहले एक नोट दिया जा चुका है।

१०—बरौन

ग्वालियरसे चल कर हम बरौन[1] पहुँचे। हिन्दू जनताके मध्य बसा हुआ यह छोटा सा नगर मुसलमानोंके आधिपत्य-में है और मुहम्मद बिन बैरम नामक एक तुर्क यहाँका हाकिम है। हिंसक वन्य पशु भी यहाँ बहुतायतसे हैं। एक नगर-निवासी तो मुझसे यहाँ तक कहता था कि रात्रिको नगर-द्वार बन्द हो जाने पर भी न मालूम किस प्रकारसे एक बाघ यहाँ आकर मनुष्योंका संहार कर देता है। मुहम्मद तौफ़ीरी नामक एक नगर-निवासीने मुझे बताया कि बाघ मेरे पड़ोसीके घरमें प्रवेश कर बालकको चारपाईसे उठाकर लेगया। एक अन्य व्यक्ति मुझसे कहता था कि एक बार हम सब एक विवाहमें एकत्र थे, उसी समय एक आदमी किसी कार्यवश बाहर गया तो बाघने उसको चीर डाला। ढूँढ़ने पर वह आदमी बाज़ारमें पड़ा पाया गया; बाघने उसका रुधिर पान कर योंही, बिना मांस खाये ही, छोड़ दिया था। लोग कहते हैं कि बाघ सदा ऐसा ही करता है।

---

(१) बरौन—इस समय इस नामका कोई भी नगर नहीं है। आईने-अकबरीमें सूबे आगरेकी नरवर नामक सर्कारमें 'बरोई' नामक एक गढ़ और महालका उल्लेख है। ग्वालियरसे मऊको जानेवाली वर्तमान सड़क इसी नरवरके इलाकेसे होकर जाती है। सम्भव है, अबुलफज़लका भी इसी नगरसे तात्पर्य हो। नरवर ग्वालियर राज्यमें 'सिन्धु' नदीके किनारे बसा हुआ है। यह भी संभव है कि यह बरौन यही नरवर नामक स्थान हो। नरवरके पास २५ मील पूर्वोत्तर दिशामें परबई नामक एक स्थान भी मिलता है।

११—योगी और डायन

कुछ पुरुषोंने मुझसे यह भी कहा कि ये वास्तवमें हिंसक पशु नहीं हैं प्रत्युत योगी बाघका रूप धारण कर नगरमें आ जाते हैं। पर मुझको इस कथनपर विश्वास नहीं हुआ।

योगीजन भी बड़े बड़े अद्भुत कार्य कर डालते हैं। कोई कोई तो कई मास पर्यन्त बिना कुछ खाये पिये वैसे ही रह जाते हैं, और कोई कोई धरतीके भीतर गड्ढेमें बैठ ऊपरसे चुनाई करा कर वायुके लिए केवल एक रन्ध्र छुड़वा देते हैं। वे कई मास तक, कुछ लोगोंके कथनानुसार तो पूरे वर्ष भर, इसी प्रकारसे रह सकते हैं।

मंजौर (मंगलौर) नामक नगरमें मुझे एक ऐसा मुसलमान दिखाई दिया जो इन्हीं योगियोंका शिष्य था। यह व्यक्ति एक ऊँचे स्थानपर ढोलके भीतर बैठा हुआ था। पच्चीस दिन पर्य्यंत तो हमने भी इसको निराहार और बिना जलपानके योंहीं बैठे देखा, परंतु इसके पश्चात् वहाँसे चले आनेके कारण फिर हमको पता न चला कि वह और कितने दिन इस प्रकारसे उपवास करता रहा।

कुछ लोगोंका कथन है कि एक तरहकी गोली नित्यप्रति खा लेनेके कारण इन योगियोंको भूख-प्यास नहीं लगती। ये लोग अप्रकाश्य घटनाओंकी भी सूचना दे देते हैं। सम्राट् भी अत्यंत आदर-सत्कार कर इनको सदा अपने पास बिठाता है। कोई कोई योगी केवल शाकाहार ही करते हैं और कोई कोई मासांहार; परंतु मांस-भोजियोंकी संख्या अत्यंत अल्प है। प्रकाश्य रूपसे तो यह प्रतीत होता है कि तपस्या द्वारा चित्तको वशमें कर लेनेके कारण संसारके ऐश्वर्यसे इनका कुछ भी संबंध नहीं रहता। इनमें कोई कोई तो ऐसे हैं कि यदि

वे एक वार भी किसीकी ओर दृष्टि भरकर देख लें तो उस व्यक्तिकी तुरंत ही मृत्यु हो जाय। सर्वसाधारणके विचारानुसार इस प्रकारके दृष्टिपात द्वारा मृत पुरुषोंके वक्षःस्थल चीरने पर हृदयका नामनिशान तक न मिलेगा। कारण यह वताया जाता है कि दृष्टिपात करनेवाले मनुष्य इन पुरुषोंके हृदय खा जाते हैं। इस प्रकारका कार्य स्त्रियाँ ही अधिक करती हैं और इनको 'कफ़्फ़ार' (जिनकी हड्डियाँ चलते समय बोलती हों) अर्थात् डायन कहते हैं।

भारतमें घोर दुर्भिक्ष[1] पड़नेके समय सम्राट् तैलिंगानेमें

---

(१) दुर्भिक्ष—इतिहासका अवलोकन करने पर जिन दुर्भिक्षोंका पता चलता है उनकी तालिका यहाँ दी जाती है।

१—सम्राट् मुहम्मद तुग़लक़के राजत्व-काल (हिजरी सन् ७३९–७४५) में;

२—तैमूरके दिल्लीसे लौटने पर हिजरी सन् ८०१ में;

३—सम्राट् महमूद शाह तुग़लक़ और ख़िज़रख़ाँके समय (हिजरी सन् ८११) में;

४—सम्राट् मुबारक शाहके राजत्वकाल (हिजरी ८२७) में;

५—सम्राट् मुहम्मद आदिल सूरके शासनकाल (हिजरी ९६२) में;

६—सम्राट् शाहजहाँके शासनकाल (ई० सन् १६३१) में;

७—सम्राट् औरंगजेब आलमगीरके शासन काल (ई० सन् १६५१) में;

८—सम्राट् मुहम्मदशाहके शासनकाल (ई० सन् १७३९) में;

९—सम्राट् शाहआलम द्वितीयके शासनकाल (ई० सन् १७७०) में; और

१०—वारेन हेस्टिंगज़के शासनकाल (ई० सन् १७८३–८४) में।

इसके पश्चात् १९ वीं शताब्दीके दुर्भिक्षोंकी सूची आधुनिक ग्रन्थोंमें देखनी चाहिये।

था। परंतु उसने वहाँसे ही प्रत्येक दिल्ली-निवासीको डेढ़ रतल भोजन प्रतिदिनके हिसाबसे देनेकी आज्ञा निकाल दी थी। सम्राट्के आदेशानुसार वज़ीरने इन सबको एकत्र कर एक-एक दल प्रत्येक अमीर और क़ाज़ीके सुपुर्द कर दिया। इस प्रकार मुझपर पाँच सौ मनुष्योंके भोजनका भार पड़ा। इनके रहनेके लिए मैंने अपने ही घरमें दालान बनवा दिये थे, यहींपर इनको पाँच-पाँच दिवस तकका पर्याप्त भोजन दे दिया जाता था। एक दिन मेरे पास एक स्त्री लायी गयी जो डायन कही जाती थी। इसने अपने पड़ोसीके बालकका हृदय भक्षण कर मार डाला था। मैंने इसको सम्राट्के नायब (प्रतिनिधि) के पास ले जानेका आदेश कर दिया और उसने इस स्त्रीकी परीक्षा करनेकी आज्ञा दे दी। परीक्षा इस प्रकारसे की जाती है कि हाथ-पाँवमें जल भरे चार मटके बाँध कर परीक्ष्यको यमुना नदीमें डाल देते हैं। जलमें न डूबने पर वह डायन समझी जाती है और डूब जाने पर संदेह मिट जाता है। परंतु नायबने इस स्त्रीको जलानेकी आज्ञा दी थी।

जनसाधारण इस धारणासे कि ऐसे मृतक व्यक्तिकी राखको शरीरमें रमा लेनेसे डाकिनोकी दृष्टिसे रक्षा होती है, इस स्त्रीकी राख उठा उठाकर ले गये।

मैं राजधानीमें ही था कि एक दिन सम्राट्ने मुझको बुला भेजा। सूचना पाते ही मैं उसकी सेवामें जा उपस्थित हुआ। सम्राट् उस समय एकांतमें था और केवल विशेष अमीर ही उसकी सेवामें उपस्थित थे। कुछ योगी भी वहाँ बैठे हुए थे। जिस प्रकार लोग बहुधा अपनी बग़ल (कक्ष) के बाल नोच डालते हैं, ठीक उसी प्रकार अपने सिरके बालोंको राख द्वारा

नोच डालनेके कारण यह योगी भी अपने सिर तथा समस्त शरीरको रज़ाईसे ढँके रहते हैं।

सम्राट्की आज्ञा मिलने पर मैं भी एक ओर बैठ गया। तदुपरांत सम्राट्ने मेरी ओर इंगित कर उनसे कहा कि यह पुरुष सुदूर देशसे यहाँ आया है, अतएव इसको कोई अपूर्व वस्तु प्रदर्शित कीजिये। सम्राट्के वचन सुनकर एक योगी 'बहुत अच्छा' कह पद्मासन लगाकर बैठ गया। वह धीरे धीरे धरातलसे ऊपरको उठने लगा और हमारे ऊपर अधरमें आ गया। यह कौतुक देख मैं आश्चर्यान्वित हो संशयमें पड़ गया। धीरे धीरे मेरा चित्त ऐसा घबराया कि मैं धरतीमें लोट गया, और सम्राट्के औषधोपचार करने पर मेरा चित्त जाकर कहीं ठिकाने लगा। परंतु उस समय भी वह व्यक्ति पूर्ववत् वायुमंडलमें हो बैठा हुआ था। इसके उपरांत एक दूसरे योगीने अपनी खड़ाऊँ उठा कर क्रोधमें पथ्वीपर कई वार पटकी। वह वायु-मंडलमें उड़ कर अधरमें बैठे हुए योगीकी गर्दनपर बारम्बार लगने लगी। खड़ाऊँके प्रहारके कारण योगी धीरे धीरे नीचे उतरने लगा और कुछ काल पश्चात् हमारे पास ही पृथ्वीपर आ बैठा।

सम्राट्के बताने पर मुझे मालूम हुआ कि खड़ाऊँ फेंकने-वाला गुरु था और वायुमण्डलमें जानेवाला शिष्य। यदि मैं इस प्रकार हतबुद्धि न हो जाता और मेरे विक्षिप्त हो जानेकी आशंका न होती तो सम्राट्के कथनानुसार मुझको इससे भी कहीं अधिक आश्चर्यदायक खेल दिखाये जाते। यहाँसे लौटने पर मैं विक्षिप्त सा होगया और सम्राट्-प्रेषित शर्बत पीने पर मेरा चित्त स्वस्थ हुआ।

१२—अमवारी और कचराद

बरौन नामक नगरसे चलकर, अमवारी[1] होते हुए, हम कचराद[2] नामक स्थानमें पहुँचे। यहाँपर एक मील लम्बे सरोवरके किनारे बहुतसे मन्दिर बने हुए हैं, परन्तु इन मन्दिरोंकी प्रत्येक प्रतिमाकी आँख, नाक और कान मुसलमानोंने काट लिये हैं।

सरोवरके मध्यमें रक्त-पाषाणके तीन गुम्बद बने हुए हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्येक कोणपर भी इसी प्रकारके गुम्बद निर्मित हैं जिनमें योगी लोग निवास करते हैं। योगियोंके केश

---

(१) अमवारी—आईने अकबरीमें इस नामके एक नगरका उल्लेख बयानवाँकी सर्कारमें मिलता है जो चन्देरीके पूर्वीय भागमें थी। परंतु इस समय इसका चिह्न मात्र भी अवशिष्ट नहीं है।

(२) कचराद—इब्नबतूताका तात्पर्य यहाँपर बुंदेलखंडके वर्तमान छत्रपुर नगरसे २७ मील पूर्वकी दिशामें स्थित खजुराहो नामक स्थानसे है। अबूरिहाँने १०२२ ई० में कालिंजर युद्धके समय महमूद ग़ज़नवीके साथ यहाँ आकर सर्वप्रथम इस नगरका वर्णन 'कजुराहा' कह कर किया है। इब्नबतूता द्वारा वर्णित सरोवर भी यहाँ इस समय तक बना हुआ है और 'खजूर सागर'के नामसे प्रसिद्ध है। वहाँपर सरोवरके चारो ओर उपर्युक्त बहुतसी गुहाएँ भी बनी हुई हैं। अबूरिहाँके समयमें तो यह नगर झिझोंटी (प्राचीन बुंदेलखंड) की राजधानी था। परंतु इस समय यह केवल गाँव मात्र है। प्राचीन-भग्नावशेष चार मीलकी परिधिमें फैले हुए हैं, जिससे इसका महत्व भली भाँति विदित होता है। आईने अकबरीमें भी इसका कोई उल्लेख न होनेके कारण हमारा अनुमान है कि सम्राट् अकबरके बहुत पहिले ही यह नगर उजाड़ हो गया था।

पैर तक लम्बे होते हैं; सारे शरीरमें भभूत लगी रहती है और तपस्याके कारण उनका वर्ण तक पीत हो जाता है। चमत्कार दिखानेकी शक्ति प्राप्त करनेके इच्छुक बहुतसे मुसलमान भी इनके पीछे पीछे लगे फिरते हैं। लोगोंका तो यह कथन है कि गलित तथा श्वेतकुष्ठ तकसे पीड़ित पुरुष योगियोंकी सेवामें उपस्थित होने पर ईश्वर-कृपासे आरोग्य लाभ करते हैं। मावरा उन्नहरके सम्राट् 'तरम शीरीं' के कैम्पमें मुझको इनके सर्वप्रथम दर्शन हुए। गिनतीमें ये पूरे पचास थे। इनके रहनेके लिए धरतीके भीतर गुफाएँ बनी हुई थीं और वहीं धरातलके नीचे यह अपना जीवन व्यतीत करते थे, केवल शौचके लिए बाहर आते थे और प्रातः सायं तथा रात्रिमें शृङ्गके सदृश किसी वस्तुको बजाया करते थे। इन लोगोंकी जीवनचर्या भी अतीव विचित्र थी।

एक योगीने मअबर (अर्थात् कर्नाटक) के सम्राट् ग़यास-उद्दीन दामग़ानीके लिए लौह-मिश्रित कुछ ऐसी गोलियाँ बनवा दी थीं जिनके सेवनसे स्तंभन-शक्ति बढ़ जाती है। गोलियोंमें कुछ अद्भुत सामर्थ्य देख मात्रासे अधिक सेवन करनेके कारण सम्राट्का देहान्त हो गया। तदुपरांत सम्राट्का पुत्र नासिर-उद्दीन सिंहासनपर बैठा, और यह भी इस योगीका बहुत आदर किया करता था।

१३—चन्देरी

इसके पश्चात् हम चंदेरी[1] पहुँचे। यह नगर भी बहुत बड़ा है और बाजारोंमें सदा भीड़ लगी रहती है।

---

(१) चंदेरी—अबुलफज़लके कथनानुसार इस नगरमें किसी समय चौदह सहस्र पाषाण-निर्मित गृह, तीन सौ चौरासी बाज़ार, तीन

यह समस्त प्रदेश अमीर-उल-उमरा अज़्ज़-उद्दीन मुलतानीके अधीन है। यह महाशय अत्यंत दानशील एवं विद्वान् हैं और अपना समय विद्वानोंके ही समागममें व्यतीत करते हैं। इनके सहवासियोंमें धर्मशास्त्रके ज्ञाता अज़्ज़-उद्दीन ज़ुबैरी तथा वजीह-उद्दीन बयानवी (बयाना-निवासी), क़ाज़ी खास्सा और इमाम शमस-उद्दीन विशेषतया उल्लेखनीय हैं। गवर्नर महोदयके वास्तविक नामको न लेकर लोग उनको आज़म मलिक कह कर पुकारा करते हैं और उनका यही उपनाम अधिक प्रसिद्ध भी है। उनका उप-कोषाध्यक्ष कमर-उद्दीन है तथा उप-सेनानायकके पदपर तैलंग देश-निवासी सआदत है। यह उप-सेनानायक अत्यन्त साहसी एवं शूरवीर है। यही सेनाकी उपस्थिति लेता और क़वायद देखता है। शुक्रवारके अतिरिक्त शायद ही किसी दिन मलिक-आज़म बाहर नगरमें निकलते हों।

सौ साठ पांथ-निवास (सराय) और बारह सहस्र मसजिदें थीं। सैरउल मुताख़रीनका लेखक कहता है कि यहाँ एक ऐसा विस्तृत मन्दिर बना हुआ था कि नगाड़ा बजाने पर उसका शब्द तक बाहर न जाने पाता था। इस कथनमें कुछ अत्युक्ति मान लेने पर भी यही निष्कर्ष निकलता है कि मध्यकालीन युगमें यह एक बड़ा वैभवशाली नगर था। हिंदुओंके प्राचीन धार्मिक ग्रंथ महाभारत तकमें इसका उल्लेख है। यहाँके राजा शिशुपालका वध श्री कृष्णचन्द्र द्वारा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें हुआ था। उस समय भी यह बड़ा शक्तिशाली राज्य समझा जाता था।

यह प्राचीन नगर ग्वालियरसे १०५ मील दूर बेतवा नदीके तटपर एक छोटेसे गाँवके रूपमें अब भी वर्तमान है। पहाड़ीपर निर्मित एक दृढ़ दुर्गको छोड़कर इसके प्राचीन वैभवका स्मरण करानेवाला अब यहाँ कोई पदार्थ नहीं है।

१४—धार

चंदेरीसे चलकर हम मालवा प्रांतके सबसे बड़े नगर ज़हार[1] (धार) में पहुँचे।

खेतीके काममें इस प्रान्तकी खूब प्रसिद्धि है। यहाँका गेहूँ विशेष रूपसे उत्तम होता है और यहाँके पान भी दिल्ली तक जाते हैं। यह नगर दिल्लीसे चौवीस पड़ावकी दूरीपर है और मार्गपर सर्वत्र पत्थरके खंभोंपर मील खुदे हुए हैं जिनके कारण यात्रियोंको बहुत सुविधा होती है और उनको यह जाननेमें कुछ भी कठिनाई नहीं होती कि दिनभरमें कितनी राह समाप्त हुई और कितनी शेष रही। खंभोंपर दृष्टि डालते ही पता चल जाता है कि अभीष्ट स्थान कितनी दूरीपर है।

यह नगर मालद्वीप-निवासी शैख़ इब्राहीमकी जागीरमें है। कहा जाता है कि शैख़ महोदयने यहांपर आ नगरके बाहर बंजर जोतकर उसमें ख़रबूजा बो दिया और उसमें अत्यंत स्वादिष्ट फल लगे। लोगोंने भी उनकी देखादेखी अन्य धरती जोत ख़रबूजे बोये परंतु उनके फल उतने मीठे न थे। शैख़

---

(१) धार अथवा धारा नगरी प्रसिद्ध राजा भोजकी राजधानी थी। इसके पहले पँवार नृपति उज्जैनमें राज्य करते थे। भोज देवने ही प्राचीन राजधानीका परित्याग कर इस नगरीको अपना निवासस्थान बनाया था। मुसलमानोंके समयमें भी बहुत काल तक तो यही नगर मालवा प्रदेशकी राजधानी रहा पर पीछे मंडू नामक स्थान राजधानी बना दिया गया। इस समय भी यह नगर पँवार राजाओंके वंशजोंके पास है और धार नामक राज्यकी राजधानी है। मुसलमान शासकोंके समयमें भी यह बड़ा महत्वपूर्ण नगर समझा जाता था और उस समयकी दो रक्तपाषाण-निर्मित मसजिदें भी यहाँ अबतक वर्तमान हैं।

महोदयका एक यह भी नियम था कि वह दीन-दुखियों तथा साधु-संतोंको भोजन दिया करते थे। सम्राट्के मअबर-को ओर जाते समय यहाँ आने पर शैख़ने ख़रबूजे ही भेंटमें अर्पित किये। सम्राट्ने अत्यंत प्रसन्न हो धार नामक नगर जागीरमें प्रदान कर नगरसे भी ऊंचे टीलेपर एक मठ निर्माण करनेका (उनको) आदेश किया।

सम्राट्की आज्ञानुसार मठ बनवा कर शैख़ वर्षोंतक प्रत्येक यात्रीको रोटी देते रहे। एक बार उन्होंने तेरह लक्ष दीनार ला सम्राट्से निवेदन किया कि दीन-दुखियोंको भोजन देनेके पश्चात् मैंने अपनी आयमें यह रकम बचायी है और यह नियमानुसार राज-कोषमें जमा होनी चाहिये। सम्राट्ने यह धन तो कोषमें जमा करनेकी आज्ञा दे दी, पर दीन-दुखियोंको सम्पूर्ण धन न खिलाकर इस प्रकार बचानेकी नीति उसको अच्छी न लगी।

इसी नगरमें वज़ीर ख़्वाजा जहाँके भाँजेने अपने मामाका कोष बलात् हस्तगत कर विद्रोही हसनशाहके पास मअबर चले जानेका निश्चय किया था; परंतु इस षड्यंत्रकी सूचना पहले ही मिल जानेके कारण मामा (वज़ीर) ने भाँजे तथा अन्य षड्यंत्रकारियोंको तुरंत ही पकड़वा कर सम्राट्के पास भेज दिया। सम्राट्ने अन्य अमीरोंका वध करवा भाँजेको पुनः लौटा दिया। यह देख वज़ीरने स्वयं उसके वधकी आज्ञा दी। कहा जाता है कि भाँजा अपनी एक लौंडीसे प्रेम करता था। वधकी आज्ञा सुन कर उसने इस दासीसे मिलना चाहा और उसके आने पर उसको गले लगाया, उससे एक पान बनवा कर स्वयं खाया और एक पान अपने हाथसे बनाकर उसको दे विदा ली। तदनंतर

हाथीके सम्मुख डालकर उसका वध कर दिया गया और खालमें भूसा भर दिया गया। रात होते ही दासीने वाहर आकर वध-स्थलके निकट एक कूपमें कूदकर जान दे दी। अगले दिन लोगोंने उसका शव कूपमें तैरते देख वाहर निकाला और दोनोंको एकही कब्रमें गाड़ दिया। यह अब 'प्रेमियोंकी समाधि' (ग़ोरे आशिक़ां) के नामसे विख्यात है।

१५—उज्जैन

धारसे चलकर हम उज्जैन[१] पहुँचे। यह नगर अत्यन्त सुंदर है और यहाँके भवन भी खूब ऊँचे वने हुए हैं। प्रसिद्ध विद्वान् एवं दानशील मलिक नासिर-उद्दीन विन ऐन-उल

---

(१) उज्जैन—यह नगर प्रसिद्ध आर्यकुल-कमल, शकारि विक्रमादित्यकी राजधानी था। पँवार नृपतिगण भी यहाँ वहुत कालतक राज्य करते रहे। हिन्दू नृपतियोंका गौरव नष्ट होने पर अलाउद्दीन खि़लजीने इस नगरको सर्वप्रथम अधिगत किया। १३८७ ई० से १५३१ तक मालवा प्रदेशके शासक स्वच्छंद रहे। तत्पश्चात् गुजरातके प्रसिद्ध शासक वहादुरशाहने यह समस्त प्रांत जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया। १५७१ ई० में मुग़ल सम्राट् अकवरने पुनः इसे जीतकर दिल्ली साम्राज्यके अधीन किया। औरंगजेव और दाराशिकोहका इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध भी इसी नगरके निकट १६५८ ई० में हुआ था। मुगलोंके भाग्य-सूर्यके अस्त होने पर यह प्रदेश मराठोंके अधीन होगया और १८१० तक सिंधिया-वंशीय राजाओंकी यही नगर राजधानी रहा। तत्पश्चात् ग्वालियरके राजधानी हो जाने पर इसका महत्व कुछ कम हो गया। भारतीय ज्योतिषी अक्षांश आदिकी गणना भी इसी नगरसे प्रारम्भ करते हैं। प्रसिद्ध नृपति जयसिंह द्वारा निर्मित वेधशाला यहाँ अवतक वर्त्तमान है। यहाँके प्राचीन ध्वंसावशेष अब भी पुरानी कीर्तिका स्मरण दिलाते हैं।

मुल्क भी इसी नगरमें रहा करते थे और सन्दापुर (गोआ)-विजयके समय वीरगतिको प्राप्त हुए। धर्मशास्त्रका ज्ञाता और वैद्य जमाल-उद्दीन मग़रबी ग़रनाती भी यहीं रहता था।

१६—दौलताबाद

उज्जैनसे चलकर हम दौलताबाद पहुँचे। विस्तारमें यह नगर दिल्लीके बराबर है। इसके तीन विभाग हैं—जहाँ सम्राट्की सेना रहती है वह दौलताबाद कहलाता है। द्वितीय भाग को कतकता कहते हैं और तृतीय भागको देवगिरि[1]। देवगिरिमें एक दुर्ग बना हुआ है जो दृढ़तामें अद्वितीय समझा जाता है। सम्राट्के गुरु ख़ाने आज़म (उपाधिविशेष) क़तलूख़ाँ भी इसीमें निवास करते हैं। सागरसे लेकर तैलिंगाने तक समस्त प्रदेश इन्हींकी अधीनतामें हैं। इस विस्तृत इलाकेकी यात्रा करनेमें तीन मास व्यतीत हो जाते हैं। स्थान-स्थानपर आचार्य महोदयकी ओरसे शासक नियत हैं।

देवगिरिका दुर्ग चट्टानपर बना हुआ है। चट्टानें काटकर पर्वत शिखरपर दुर्गका निर्माण किया गया है। चमड़ेकी सीढ़ियों द्वारा इस दुर्गमें प्रवेश होता है और रात्रि होने पर ये सीढ़ियाँ ऊपर खींच ली जाती हैं (फिर इसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता)। दुर्गरक्षक कुटुम्ब सहित यहीं निवास करता है। घोर अपराधियोंके लिए यहाँ भयानक गुफ़ाएँ बनी हुई हैं, और इनमें इतने बड़े बड़े चूहे हैं कि बिल्ली

---

(१) देवगिरि अथवा दौलताबाद निज़ाम सर्कारमें औरंगाबादसे दस मीलकी दूरीपर एक गाँवके रूपमें रह गया है। परंतु वहाँका दुर्ग अब भी वर्तमान है। यहाँसे ७–८ मीलकी दूरीपर 'रोज़ा' नामक स्थानमें प्रसिद्ध मुग़ल सम्राट् औरंगजेब अपनी अंतिम नींद ले रहा है।

भी उनसे भयभीत रहती है और उपाय तथा कौशलके विना उनका आखेट नहीं कर सकती। मलिक ख़िताव अफ़ग़ान यह कहता था कि एक बार दुर्भाग्यवश मैं इस गढ़की गुफामें वंदी कर दिया गया। गुफा क्या थी, चूहोंकी खान थी। वे दलके दल एकत्र होकर मुझपर आक्रमण करते थे और सारी रात उनके साथ युद्ध करनेमें ही व्यतीत होती थी। एक रात मैं सो रहा था कि किसीने मुझसे कहा कि सूरह इख़लास (कुरानके अध्यायविशेष) का एक लाख बार पाठ करने पर ईश्वर तुमको यहाँसे मुक्त कर देगा। (दैवी) आदेशानुसार मैंने उक्त सूरह (अध्याय) का उतनी ही बार पाठ किया और मुझको मुक्त करनेके लिए सम्राट्का आदेश आगया। पीछे मुझको पता चला कि मेरे निकटकी गुफामें एक वन्दीके रोगी होजाने पर चूहोंने उसकी उँगलियाँ और नेत्र तक भक्षण कर लिये थे। सूचना मिलने पर सम्राट्ने इस विचारसे कि कहीं चूहे मुझको भी इस प्रकार भक्षण न कर लें, मुझे मुक्त करनेका आदेश किया था।

सम्राट्से युद्धमें परास्त होने पर नासिर-उद्दीन विन मलिक मल तथा क़ाज़ी जलाल-उद्दीनने इसी गढ़में आश्रय लिया था।

दौलताबादमें 'मरहटे' रहते हैं। इस जातिकी स्त्रियाँ अत्यंत सुन्दर होती हैं। उनकी नासिका तथा भौंह तो विशेषतया अद्वितीय मालूम होती है। सहवासमें इन स्त्रियोंसे चित्त अत्यन्त प्रसन्न होता है।

यहाँके हिन्दू निवासी व्यापार द्वारा जीविका चलाते हैं, कोई कोई रत्न आदिका भी व्यवसाय करते हैं। जिस प्रकार मिश्रदेशमें व्यापारियोंको 'मकारम' कहते हैं उसी प्रकार यहाँ-

पर भी अत्यंत धनाढ्य व्यक्ति 'शाह' (साह, साहूकार) कहलाते हैं। फलोंमें आम और अनार यहाँ बहुतायतसे होते हैं और वर्षमें दो बार फलते हैं।

जन-संख्या तथा विस्तार अधिक होनेके कारण यहाँकी आय भी अन्य प्रान्तोंसे कहीं अधिक है। एक हिंदूने संपूर्ण इलाकेका तेरह करोड़ रुपयेमें ठेका लिया था, परंतु कुछ शेष रह जानेके कारण समस्त धन संपत्ति ज़ब्त कर लेने पर भी उसकी खाल खिंचवा दी गयी।

दौलताबादमें गानेवाले व्यक्तियोंका भी एक बाज़ार है जिसको तरबाबाद कहते हैं। यह बहुत ही सुन्दर एवं विस्तृत है और दूकानोंकी संख्या भी यहाँ बहुत अधिक है। प्रत्येक दूकानमें एक द्वार गृहकी ओर लगा होता है, इसके अतिरिक्त गृह-द्वार दूसरी ओर भी होता है। दूकानोंमें बहुत बढ़िया फर्श लगा होता है और मध्यमें एक पालना लगा रहता है। गानेवाली स्त्रियोंके इसमें बैठ अथवा लेट जाने पर दासियाँ इसको हिलाती रहती हैं। कहना न होगा कि यह गहवारह (पालना) विशेष रूपसे सुसज्जित किया जाता है।

इस बाज़ारके मध्यमें एक बड़ा गुम्बद है। यह भी फर्श आदिसे खूब सुसज्जित किया रहता है। गानेवाली स्त्रियोंका चौधरी इस गुम्बदमें प्रत्येक बृहस्पतिवारको अस्रकी नमाज़के पश्चात् अपने दासों तथा दासियोंसे परिवेष्टित हो कर बैठता है और प्रत्येक वेश्या बारी बारीसे आकर उसके संमुख मग़रिबके समयतक (अर्थात् सूर्यास्तके उपरांत तक) गाती है। इसके बाद वह अपने घर चला जाता है। इस बाज़ारकी मसजिदोंमें भी गायक एकत्र होते हैं। बहुधा हिंदू तथा मुसलमान नृपतिगण बाज़ारकी सैर करने आते

समय इसी गुंबद्में आकर ठहर जाते हैं और वेश्याएं भी यहीं आकर उनको अपने गीत-नृत्यादिकी कला दिखाती हैं।

१७—नदरवार

दौलताबादसे चलकर हम नदरवार[1] पहुँचे। इस छोटेसे नगरमें अधिकतया मरहटे ही रहते हैं और कला-कौशल द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इनमेंसे कोई कोई वैद्यक तथा ज्योतिषके भी अपूर्व ज्ञाता हैं। ब्राह्मण तथा खत्री (क्षत्रिय) जातिके मरहटे कुलीन समझे जाते हैं। चावल, हरे शाक-पात और सरसोंका तेल इनके प्रधान खाद्य पदार्थ हैं। यह जाति न केवल मांसाहारी नहीं है, प्रत्युत किसी पशुको पीड़ा तक

---

(१) नदरवार—यह वर्त्तमान कालमें नन्दनवारके नामसे विख्यात है और बम्बई प्रेसीडेंसीके खानदेश (प्राचीन दानदेश) नामक ज़िलेमें तापती नदीके दक्षिण तटस्थ तहसीलका मुख्य स्थान है। कहावत तो यह है कि इस नगरको सर्वप्रथम नन्दागावनीने बसाया था; इसके अतिरिक्त नगरका नाम भी प्राचीनताका द्योतक है। परन्तु फ़रिश्ताके कथनानुसार देवल देवीको लेने जाते समय मलिक क़ाफ़ूरने नदनवार और सुल्तानपुर नामक दो नगर बसाये थे। चाहे जो हो, प्राचीनकालमें इस नगरका व्यवसाय खूब ज़ोरोंपर था। आईने अकबरीके अनुसार अकबरके राज्यमें भी यह मालवा प्रान्तकी एक सर्कार (कमिश्नरी) था। अबुलफ़ज़ल यहाँके खरबूज़ोंकी बड़ी प्रशंसा करता है।

'ओवा' नामक तैल भी यहाँ एक प्रकारकी घाससे निकाला जाता है जो गठिया रोगमें अत्यन्त लाभकारी है। सन् १६६६ ई० में यहाँपर ईस्टइण्डिया कम्पनीकी एक व्यापारिक कोठी बनी हुई थी परन्तु पीछे यहाँसे हटाकर वह अहमदाबाद लायी गयी। बाजीराव पेशवाके पतनोपरान्त सन् १८१८ में यह स्थान अंग्रेजी राज्यमें आगया।

नहीं देती। जिस प्रकार सम्भोगके पश्चात् स्नान करना आवश्यक है, उसी प्रकार यह जाति भोजनसे प्रथम भी अवश्य स्नान करती है। इन लोगोंमें निकटस्थ सम्बन्धियोंसे, सात पीढ़ी बीतनेसे प्रथम, विवाह-सम्बन्ध नहीं होते। मदिरा-पान दूषण समझा जाता है और कोई आदमी मद्य-सेवन नहीं करता।

भारतवर्षके मुसलमानोंकी दृष्टिमें भी मदिरा-पान एक बड़ा दूषण है। मदिरा-पान करने पर मुसलमानको अस्सी दुर्रे (कोड़े) लगाकर तीन दिन पर्य्यन्त तहख़ानेमें बन्द रखा जाता है और केवल भोजनके समय ही द्वार खोलते हैं।

१८—सागर

यहाँसे चलकर हम सागर[1] पहुँचे। यह एक बड़ा नगर है और सागर नामक नदीके तटपर बसा हुआ है। नदीके तट-पर रहटों द्वारा आम, केले और गन्नेके उपवन अधिकतासे सींचे जाते हैं। नगर-निवासी भी धर्मात्मा और सदाचारी हैं। यात्रियोंके विश्रामके लिए इन सज्जनोंने उपवनोंमें तकिये (ठहरने योग्य स्थान, विशेषतया उपवनोंमें, जहाँ कूप इत्यादि बना देते हैं) और मठ बना रखे हैं।

मठ-निर्माण कर लेने पर प्रत्येक व्यक्ति एक उपवन भी उसके चारों ओर अवश्य लगाता है और अपनी सन्तानको इसका प्रबन्धकर्ता नियत कर देता है। सन्तान शेष न रहने पर 'क़ाज़ी' प्रबन्धकर्त्ता हो जाते हैं। नगरमें इमारतें भी बहुत अधिक हैं। बहुतसे लोग इस नगरकी यात्रा करने आते हैं और कर न लगनेके कारण यात्रियोंकी यहाँ ख़ासी भीड़ भी रहती है।

---

(१) सागर—वर्तमान सोनगढ़ है।

१६—खम्वायत

सागरसे चलकर हम खम्वायत[1] पहुँचे। यह नगर समुद्रकी खाड़ीपर स्थित है। खाड़ी भी समुद्रके ही समान है। यहाँ पोत भो आते हैं और ज्वार-भाटा भी होता है। भाटेके समय मैंने यहाँ कीचमें सने हुए बहुतसे वृक्ष देखे जो ज्वार आने पर पुनः जलमें तैरने लगते हैं।

समस्त नगरोंकी अपेक्षा यह नगर अधिक सुन्दर और दृढ़ बना हुआ है। यहाँके गृह और मसजिदें दोनों ही अत्यन्त सुन्दर हैं। यहाँके रहनेवाले भी अधिकतया परदेशी ही हैं। भव्य प्रासाद तथा विस्तृत मसजिदें भी प्रायः इन्हीं व्यक्तियोंने निर्माण करायी हैं। इस कार्यमें आपसकी प्रतियोगिता अत्यंत

---

(१) खम्वायत—यह एक अत्यन्त प्राचीन नगर है। हिन्दुओंके धर्म-ग्रन्थोंके अनुसार यह नगर कई सहस्र वर्ष पुराना है। उस समय इसका नाम 'त्रम्बावती' था और 'त्रम्बक' नामक राजपुत्र यहाँ शासन करता था। इस राजाके वंशज अभयकुमारके समयमें ईश्वरीय कोपके कारण इस नगरमें घोर आँधी छा गयी, यहाँ तक कि गृह, उपवन, राजप्रासाद तक सभी इसमें दब गये। परन्तु राजा शिवजीका भक्त था, और उनकी नित्य प्रति पूजा करता था। देवादिदेव महादेवने राजाको स्वप्नमें इस घटनासे सचेत कर दिया, अतएव कुटुम्ब सहित राजा शिवकी मूर्त्ति ले जहाजमें चढ़ उत्पातसे पहले ही समुद्रमें चला गया, परन्तु लहरोंके वेगसे जहाज टूट गया और राजा शिवके सिंहासनके लकड़ीके खम्भेके ही आधारपर समुद्रमें तैरने लगा और किनारे आ लगा। और लोगोंको एकत्र करनेके लिए उसने यही 'स्तम्भ' वहाँ लगा दिया। धीरे धीरे वहाँ बस्ती हो गयी और नगरका नाम पहले तो 'स्तंभावती', फिर बिगड़ कर धीरे धीरे खंभावती और खम्वायत होगया।

अधिक हो जाती है और प्रत्येक व्यक्ति दूसरेसे अधिक इमारत बनानेका प्रयत्न करता है।

यहाँ सबसे सुन्दर भवन उस कुलीन सामरीका है जिसने सम्राट्के संमुख मुझको हलुएके सम्बन्धमें लज्जित करनेका प्रयत्न किया था। इस प्रासादमें लगी हुई लकड़ीसे अधिक मोटी और दृढ़ लकड़ी मेरे देखनेमें नहीं आयी। भवनका द्वार भी नगर-द्वारकी भाँति विशद और भव्य बना हुआ है। द्वारके एक ओर एक विशद मसजिद बनी हुई है जो 'सामरीकी मसजिद' कहलाती है। मुल्क-उल तज्जार गाज़रोनीका भवन भी अत्यन्त विशाल है और उसके पार्श्वमें भी इसी प्रकारसे एक मसजिद बनी हुई है। शम्स-उद्दीन कुलाहदोज़ (टोपी सीनेवाले) का गृह भी अत्यन्त भव्य है।

क़ाज़ी जलालके विद्रोह करने पर इस शम्स-उद्दीन, नाखुदा इलियास (जो पहले इसी देशका एक हिन्दू था) और मलिक उल हुक्माँने इसी नगरमें आश्रय लेकर नगर-प्राचीर न होनेके कारण खाई खोदना प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु उनकी हार होने पर जब सम्राट्ने नगरमें प्रवेश किया तो यह तीनों पुरुष बन्दी हो जानेके डरसे एक घरमें जा घुसे। वहाँ एकने दूसरेका कटारसे अन्त कर देना चाहा। दो तो इसी प्रकार मर गये, परन्तु मलिक-उल हुक्माँ फिर भी बच रहा।

इस नगरके धनाढ्य एवं सौम्यमूर्ति नज़्मउद्दीन जीलानी नामक व्यापारीने भी विस्तृत गृह और मसजिद निर्माण करायी थी। सम्राट्ने बुला कर इसको खम्बायतका शासक नियत कर नगाड़े तथा निशान प्रदान किये। इसी कारणवश मलिक-उल-हुक्माँने विद्रोह कर अपना जीवन और धन सब कुछ गँवा दिया।

जब हम यहाँ आये तो मक़बल तिलंगी नामक एक व्यक्ति

इस नगरका शासक था। सम्राट् इसका अत्यधिक सम्मान करता था। शैख़ज़ादह अस्फ़हानो भी शासकके साथ रहता था और समस्त कार्य्योंकी देखरेख उसीके सुपुर्द थी। शैख़ भी शासन-कार्य्यमें अत्यन्त दक्ष एवं निपुण होनेके कारण अत्यन्त धनाढ्य हो गया था। वह अपनी समस्त संपत्ति निरन्तर स्वदेश भेज कर स्वयं भी किसी न किसी बहाने वहाँ भाग जाना चाहता था। इतनेमें सम्राट्को भी इसकी सूचना मिल गयी; किसीने उससे यह निवेदन किया कि वह भागना चाहता है। बस फिर क्या देर थी, तुरन्त ही सम्राट्ने मक़बलको लिख दिया कि उसको डाकद्वारा राजधानी भेज दो। सम्राट्का आदेश पाते ही शैख़ तुरन्त ही दिल्ली भेज दिया गया और सम्राट्की सेवामें उपस्थित होते ही वह पहरेमें दे दिया गया। इस देशकी कुछ ऐसी प्रथा है कि पहरेमें देनेके पश्चात् शायद ही किसी व्यक्तिकी जान बचती है। हाँ, तो पहरेमें आने पर शैख़ने पहरेदारसे गुप्त मंत्रणा की और उसको बहुत धनसंपत्ति देनेका वचन दे अपनी ओर मिला लिया और दोनों भाग निकले। एक विश्वसनीय आदमी कहता था कि मैंने उसको (शैख़को) क़लहात (मसक़त प्रांतके नगरविशेष) की मसजिदमें देखा और वहाँसे वह अपने देशको चला गया। इस प्रकार उसके प्राण सुरक्षित रहे और समस्त संपत्तिपर भी उसका आधिपत्य होगया।

मलिक मक़बलने अपने गृहपर हमको एक भोज दिया, जिसमें एक बड़ी आनन्ददायक घटना घटित हुई। नगरके क़ाज़ी और बग़दादके शरीफ़ दोनों ही इसमें सम्मिलित हुए थे। शरीफ़ महाशयकी आकृति भी क़ाज़ी महोदयसे बहुत कुछ मिलती-जुलती थी, यहाँ तक कि क़ाज़ीके सदृश शरीफ़-

के भी केवल एक ही नेत्र था। परन्तु भेद केवल इतना ही था कि क़ाज़ी दायें नेत्रसे हीन थे और यह बायें नेत्रसे। भोजके समय संयोगवश दोनों एक दूसरेके संमुख बैठे। क़ाज़ीकी ओर देख देखकर शरीफ़ने बारम्बार हँसना प्रारम्भ किया। इसपर क़ाज़ीने उनको खूब झिड़का। यह देख शरीफ़ने कहा कि क्यों अकारण क्रोध करते हो, मैं तुमसे तो कहीं अधिक सुन्दर हूँ। काज़ीने (यह सुन) पूछा कि किस प्रकारसे ? उन्होंने उत्तर दिया कि मैं तो बायें ही नेत्रसे हीन हूँ, परन्तु तुम्हारे तो दाहिना नेत्र नहीं है। सुनते ही मक़बल और समस्त उपस्थित सभ्य जन ठट्ठा मार कर हँस पड़े और क़ाज़ी जीने लज्जित हो कुछ भी उत्तर न दिया। कारण यह है कि भारतवर्षमें शरीफ़ोंको अत्यन्त सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं।

दयार बकरके निवासी धर्मात्मा क़ाज़ी नासिर भी इस नगरकी जामे-मसजिद्की एक कोठरीमें रहते हैं। हम लोगोंने भी जाकर उनके दर्शन किये और उनके साथ साथ भोजन किया।

विद्रोह करने पर क़ाज़ी जलाल भी इस नगरमें आ इनकी सेवामें उपस्थित हुआ था। इसपर किसीने सम्राट्से यह कह दिया कि इन्होंने भी क़ाज़ी जलालके लिए प्रार्थना की है। इसी कारण सम्राट्के नगरमें पधारते ही प्राणोंके भयसे यह महाशय यहाँसे निकल कर चले गये कि कहीं मेरे साथ भी हैदरी जैसा बर्ताव न हो।

इस नगरमें ख़्वाजा इसहाक़ नामक एक और महात्मा हैं। इनके मठमें प्रत्येक यात्रीको भोजन, और साधु तथा दुःखी पुरुषोंको द्रव्य भी मिलता है, परन्तु इसपर भी लोग कहते हैं कि इनकी धनसंपत्तिमें उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती जाती है।

२०—कावी और क़न्दहार[1]

यहाँसे चलकर हम खाड़ी तटस्थ कावी नामक एक नगरमें पहुँचे जहाँ ज्वार-भाटा भी आता है। यह प्रदेश जालनसीके एक हिन्दू राजाके (जिसका वर्णन हम अभी करेंगे) अधीन है।

कावीसे चलकर हम क़न्दहार पहुँचे। समुद्र तटवर्ती यह विस्तृत नगर हिन्दुओंका है। यहाँके राजाका नाम जालनसी है। परन्तु वह भी मुसलमान शासकोंके अधीन है और प्रत्येक वर्ष राजस्व देता है। इस नगरमें आने पर राजा हमारे स्वागतको बाहर आया और हमारा अत्यधिक आदर-सत्कार किया, यहाँ तक कि हमारे विश्रामके लिए अपना राजप्रासाद तक खाली कर दिया। हम लोगोंने वहीं विश्राम किया और अत्यन्त कुलीन मुसलमान अमीरोंने—जिनमें ख़्वाजा बुहरेके पुत्र और छः पोतोंके स्वामी नाखुदा इब्राहीम विशेषतया उल्लेखनीय हैं—राजाकी ओरसे हमारी अभ्यर्थना की।

---

(१) अब इन दोनों बन्दरोंका चिन्ह तक शेष नहीं है। अकबरके समय तक तो इनका पता चलता है। परन्तु इसके पश्चात् इनका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। आईने अकबरीमें लिखा है कि ये दोनों बन्दर नर्मदा नदीके किनारे बसे हुए थे और यात्री तथा वस्तुओंसे लदे हुए विदेशी पोत यहाँ आकर लंगर डालते थे।

नवाँ अध्याय

पश्चिमीय तटपर पोत-यात्रा

१—पोतारोहण

कूसी नगरसे हमारी समुद्र-यात्रा प्रारंभ हुई। इब्राहीम नामक मल्लाहके 'जागीर' नामक पोतपर हम सवार हुए। भेंटके घोड़ोंमेंसे सत्तर घोड़े तो इसी पोतपर चढ़ा लिये गये, किन्तु भृत्यादि सहित शेष अश्व इब्राहीमके भ्राताके 'मनोरत' (मनोरथ ?) नामक जहाज़पर सवार कराये गये। राय जालनसीने हमारे मार्गव्ययके लिए भोजन, जल तथा चारे इत्यादिका प्रबन्ध कर, ग़राब-नौकाके समान आकार-वाले परंतु उससे बड़े 'अकीरी' नामक जहाज़में अपने पुत्रको भी हमारे साथ कर दिया। इस पोतमें साठ चप्पू (पतवार) थे। युद्धके समय चप्पूवालोंको पत्थर और बाणोंकी वर्षासे बचानेके लिए पोतपर छत डाल देते थे। राय (राजा) के ही एक अन्य पोतपर भृत्यों सहित सुंबुल और ज़हूर-उद्दीनके अश्व सवार हुए। 'जागीर' नामक जहाजमें धनुषधारी तथा पचास हवशी सैनिक नियत थे। इन पुरुषोंको समुद्रका स्वामी समझना चाहिये। इनमेंसे एक व्यक्तिके भी उपस्थित रहने पर हिन्दू डाकुओं या विद्रोहियोंका कुछ भी खटका नहीं रहता।

२—वैरम और क़ोक़ा

दो दिन पर्य्यन्त यात्रा करनेके पश्चात् हम स्थलसे चार मील दूर वैरम[1] नामक एक जनहीन द्वीपमें पहुँचे। यहाँ विश्राम कर हम लोगोंने जल-संग्रह किया।

(१) वैरम—इस नामका द्वीप खम्भातकी खाड़ीमें है। यह एक

कहा जाता है कि मुसलमानोंके आक्रमणके कारण यह स्थान जनहीन होगया और हिन्दू पुनः इस स्थानमें आ कर नहीं बसे। मलिक-उलतुज्जारने, जिनका वर्णन मैं ऊपर कर आया हूँ, इस स्थानपर प्राचीर निर्माण करा कर उसपर मंजनीक चढ़ा मुसलमानोंको बसाया था।

यहाँसे चलकर हम दूसरे दिन क़ोक़ा[१] नामक एक बड़े नगरमें पहुँचे। यहाँके बाज़ार खूब विस्तृत थे। भाटा होनेके कारण हमने चार मीलकी दूरीपर लंगर डाला और नावमें बैठकर नगरकी ओर चले। जब नगर केवल एक मील रह गया तो जल न होनेके कारण नाव कीचमें धँस गयी। लोगोंके यह कहने पर कि कुछ ही काल पश्चात् यहाँपर जल बहने लगेगा, भली भाँति तैरना न जाननेके कारण मैं नावसे उतर दो पुरुषोंके सहारे तटको ओर चल दिया, जिसमें जल आजाने पर भी कोई कठिनाई न हो। मैंने भीतर प्रवेश कर नगरकी भी खूब सैर की और हज़रत ख़िज़र और हज़रत इलियासके नामसे प्रसिद्ध एक मसजिद भी देखी और वहीं-पर मैंने मग़रिब (अर्थात् सूर्यास्तके समय) की नमाज़ पढ़ी।

मील लंबा तथा ३००—५०० गज़ तक चौड़ा है। बृटिश सरकारने यहाँ-पर सन् १८६५ ई० में एक प्रकाश-स्तंभ (लाइट हाऊस) निर्माण करा दिया।

(१) क़ोक़ा अर्थात् गोवा—यह स्थान अब अहमदाबादके ज़िले-के अंतर्गत बंबईसे १९३ मीलकी दूरीपर है। यहाँके निवासी बहुधा जहाज़ोंमें ख़लासी अथवा लैस्कर (Laskars) का काम करते हैं, और पोत चलानेमें बड़े दक्ष होते हैं। इस समय तो यह नगर अवनति-पर है, परंतु अबुलफ़ज़लके कथनानुसार सम्राट् अकबरके समयमें यह 'भड़ौच' सर्कार (कमिश्नरी) में एक पट्टन (बंदरगाह) था।

इस मसजिदमें हैदरी साधुओंका एक समुदाय भी अपने शैख़ सहित रहता है। यहाँकी सैर करनेके बाद मैं पुनः जहाज़पर आगया।

नगरके राजाका नाम 'दंकोल' है। वह नाम मात्रको ही सम्राट्के अधीन है। वास्तवमें वह उसकी एक भी आज्ञाका पालन नहीं करता।

३—संदापुर

यहाँसे चल कर तीन दिन पर्यंत यात्रा करनेके पश्चात् हम संदापुर[1] पहुँचे। इस द्वीपमें छत्तीस गाँव हैं और इसके चारों ओर खाड़ीका जल भरा रहता है। भाटेके समय तो यह जल मीठा हो जाता है परंतु ज्वार आने पर पुनः खारा हो जाता है। द्वीपके मध्यमें दो नगर हैं, जिनमेंसे प्राचीन तो हिंदुओंके समयका बसा हुआ है और अर्वाचीनकी स्थापना मुसलमानोंके शासनकालमें द्वीपके प्रथम बार विजित होने पर हुई है। नवीन नगरमें बग़दादकी मसजिदोंके समान एक विशाल जामे-मसजिद भी बनी हुई है। हनोरके सम्राट् जमाल-उद्दीनके पिता हसन (मल्लाह) ने इसका निर्माण कराया था। द्वितीय बार इस द्वीपकी विजय करने जाते समय मैं भी उनके साथ गया था। इस कथाका वर्णन मैं अन्यत्र करूँगा।

इस द्वीपसे चल कर हम स्थलके अत्यंत निकटस्थ एक छोटेसे द्वीपमें पहुँचे, जहाँ पादरियोंका गिर्जाघर, उपवन तथा एक सरोवर बना हुआ था। यहाँ हमने एक योगीको

(१) सन्दापुर—आधुनिक अनुसन्धानसे पता चलता है कि गोवा-को मध्ययुगमें इस नामसे पुकारते थे।

मंदिरकी दीवारके सहारे दो मूर्त्तियोंके मध्य बैठे हुए देखा। योगीके मुख-मंडलको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता था कि उसने उपासना और तपस्या बहुत की है। बहुत कालतक प्रश्न करने पर भी उसने हमको कुछ उत्तर न दिया। योगीके पास कोई भी खाने योग्य वस्तु न होने पर भी उसके चीख मारते ही वृक्षसे एक नारियल टूट कर उसके संमुख आ गिरा और उसने उठा कर वह हमको दे दिया। यह देख हमारे आश्चर्यकी सीमा न रही। हमने दीनार और दिरहम बहुत कुछ देना चाहा और भोजनके लिए भी कहा, परंतु उसने स्वीकार न किया। योगीके संमुख ऊँटके ऊनका बना एक चोग़ा पड़ा हुआ था। उठा कर उलट-पलट कर देखनेके पश्चात् उसने वह मुझे ही दे दिया। मेरे हाथमें ज़ैला नामक नगर (जो अदनके संमुख अफ्रीकाके तटपर स्थित है) की बनी हुई एक तसबीह (माला) थी। योगीके उलट पलटकर उसको देखने पर मैंने वह उसीको भेंट कर दी। योगीने मालाको अपने हाथमें लेकर सूंघा और अपने पास रख कर आकाशकी ओर दृष्टिपात किया, फिर क़िबले (मक्का की प्रधान मसजिदमें एक स्थान है) की ओर संकेत किया। मेरे साथी तो इन संकेतोंको न समझ सके परंतु मैं समझ गया कि यह मुसलमान है और द्वीप-वासियोंसे अपना धर्म छिपाकर नारियल खा जीवन-निर्वाह कर रहा है। विदा होते समय योगीका हस्त-चुम्बन करनेके कारण मेरे साथी मुझसे अप्रसन्न भी हुए। परंतु उनकी अप्रसन्नताको जानते हुए भी उसने मुस्किरा कर मेरा हस्त-चुम्बन कर हमको विदा होनेका संकेत किया। लौटते समय सबके अंतमें होनेके कारण उसने मेरा वस्त्र चुपकेसे पकड़ कर खींच लिया और मेरे मुख मोड़-

कर देखने पर दस दीनार दिये। बाहर आने पर जब मेरे साथियोंने वस्त्र खींचनेका कारण पूछा तो मैंने दस दीनार पानेकी बात कह तीन दीनार ज़हीर-उद्दीनको और तीन सुंबुलको दे दिये। अब मैंने उनको बताया कि यह व्यक्ति मुसलमान था, क्योंकि आकाशकी ओर उँगली द्वारा संकेत करनेसे उसका अभिप्राय यह था कि मैं एक ईश्वरपर विश्वास रखता हूँ और क़िबलेकी ओर संकेत करनेसे यह तात्पर्य था कि मैं पैग़म्बर साहबका अनुयायी हूँ। तसबीह लेनेसे इस बातकी और भी पुष्टि हो गयी। मेरे इस कथन पर वे दोनों पुनः लौटकर वहाँ गये परंतु योगीका पता न था। उसी समय हम सवार होकर वहाँसे चल पड़े।

४—हनोर

दूसरे दिन प्रातःकाल हम हनोर[1] में पहुँच गये। यह

(१) हनोर—इसका आधुनिक नाम 'हौनोर है। यह स्थान अब बम्बई सर्कारमें उत्तरीय कनाडा ज़िलेकी एक तहसीलका प्रधान स्थान एवं बन्दरगाह है। अबुल फिदाने हि० सन् ७३१ में इसका वर्णन किया है। उस समय यह बड़ा समृद्धिशाली नगर था। १६ वीं शताब्दीके प्रारंभमें पुर्त्तगाल निवासियोंने यहाँ एक गढ़ निर्माण कराया था परन्तु विजयनगरके महाराजके साथ युद्ध होने पर उन्होंने नगरमें अग्नि लगा दी। इसके पश्चात् इस नगरका उत्तरोत्तर ह्रास ही होता गया। पुर्त्तगाल-निवासियोंका पतन होने पर इस नगरपर बिदनोरके राजाका आधिपत्य होगया। तत्पश्चात् हैदरअलीने इसको जीत कर अपने राज्यमें सम्मिलित कर लिया। टीपूके अंतिम युद्धके बाद यह नगर ईस्ट इंडिया कंपनीके अधिकारमें आ गया। यह नगर जरसौया नामक नदीके तटपर, समुद्रसे दो मील दूर एक खाड़ीपर स्थित है। यह नदी नगरसे ३६ मीलकी

नगर खाड़ीमें स्थित है और जहाज़ भी यहाँ आ जा सकते हैं। समुद्र यहाँसे आधे मीलकी दूरीपर है। वर्षा ऋतुमें समुद्र बहुत बढ़ जाता है और उसमें तूफ़ान आनेके कारण चार मास पर्य्यन्त कोई व्यक्ति भी मछलीका शिकार करनेके अतिरिक्त किसी अन्य कार्यके लिए समुद्रमें नहीं जा सकता।

हनोर पहुँचने पर एक योगी हमारे पास आकर मुझे छः दीनार दे कहने लगा कि जिसको तूने माला दी थी उसीने यह दीनार भेजे हैं। दीनार लेकर मैंने एक उसको भी देना चाहा परन्तु उसने न लिया और चला गया। अपने साथियोंसे यह बात कह मैंने उनको पुनः उनका भाग देना चाहा परन्तु उन्होंने लेना स्वीकार न किया और मुझसे कहने लगे कि तुम्हारे दिये हुए छः दीनारोंमें छः और दीनार अपनी ओरसे मिला हम उसी स्थानपर रख आये थे जहाँ योगी बैठा हुआ था। यह सुनकर मुझे और भी आश्चर्य हुआ। ये दीनार मैंने बड़ी सावधानीसे अपने पास रख लिये।

हनोर-निवासी शाफ़ई (मुसलमानोंका पन्थ विशेष जो इमाम शाफ़ईका अनुयायी है) मतावलम्बी हैं और अपने धर्माचरण तथा सामुद्रिक बलके कारण प्रसिद्ध हैं। संदापुरकी विजयके पश्चात् दुर्दैववश ये लोग किस प्रकार दीन होगये, इसका वर्णन मैं अन्यत्र करूँगा।

नगरके धर्मात्मा पुरुषोंमें शैख़ मुहम्मद नागौरी (नागौर-निवासी) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने अपने मठमें मुझको एक भोज भी दिया था। दास तथा दासियोंके अशुद्ध हाथका स्पर्श होने पर भोजन अपवित्र होजानेके भय-

---

दूरीपर एक पहाड़ परसे गिरती है और वहाँका दृश्य भी अत्यंत मनोहर है।

से यह स्वयं ही भोजन बनाते हैं। इनके अतिरिक्त कलामे-अल्लाह (कुरान) पढ़ानेवाले सदाचारी तथा धर्मशास्त्रके ज्ञाता इस्माईल भी अत्यन्त दानी तथा सुन्दर स्वभावके हैं। क़ाज़ीका नाम नूर-उद्दीन अली है। ख़तीबका नाम अब मुझे स्मरण नहीं रहा।

नगर ही नहीं, बल्कि इस सम्पूर्ण तटकी स्त्रियाँ विना सिला हुआ कपड़ा ओढ़ती हैं। चादरके एक छोरसे अपना सारा शरीर ढँक कर दूसरे अंचलको सिर तथा छातीपर डाल लेती हैं। नाकमें सुवर्णका बुलाक पहिननेकी प्रथा है। यहाँकी सभी स्त्रियाँ सुन्दर तथा सदाचारिणी होती हैं। इनके सम्बन्धमें विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि संपूर्ण कुरान इनको कण्ठस्थ है। इस नगरमें मैंने तेरह लड़कियोंकी और तेइस लड़कोंकी पाठशालाएँ देखीं। यह बात किसी अन्य नगरमें दृष्टिगोचर न हुई। नगर-निवासी केवल सामुद्रिक व्यवसाय द्वारा ही जीविका-निर्वाह करते हैं। कृषि-कार्य कोई भी नहीं करता।

महान् सामुद्रिक बल तथा छः सहस्र स्थल सैनिक होनेके कारण समस्त मालाबार प्रदेश जमाल उद्दीन नामक राजाको कुछ नियत कर देता है। इसका पूरा नाम जमालउद्दीन मुहम्मद बिन हसन है। यह बहुत ही धर्मात्मा है और हरीब नामक हिन्दू राजाके अधीन है। ईश्वरेच्छासे मैं उसका वर्णन भी शीघ्र ही करूँगा।

जमाल-उद्दीन सदा जमाअतके साथ (पंक्तिबद्ध) हो नमाज़ पढ़ा करता है और प्रातःकाल होनेसे पूर्व ही मसजिदमें जा प्रातःकाल पर्य्यंत तलावत (कुरानका पाठ) करता है। इसके बाद प्रथम कालमें ही नमाज़ पढ़ अश्वारूढ़ हो

नगरके बाहर चला जाता है। चाश्त (अर्थात् प्रातःकाल नौ बजे) के समय लौट कर मसज़िदमें प्रथम दोगाना (नमाज़में दो बार उठने बैठनेकी क्रिया) पढ़नेके पश्चात् वह महलमें जाता है। वह रोज़ा भी रखता है। जिस समय मैं उसके पास ठहरा हुआ था, इफ्तार (व्रत-भंग) के समय वह सदा मुझको बुला भेजता था। धर्मशास्त्रके ज्ञाता अली और इस्माईल भी उस समय वहाँ उपस्थित रहते थे। ज़मीनपर चार छोटी छोटी कुर्सियाँ डाल दी जाती थीं; इनमेंसे एकपर तो स्वयं वह बैठता था और शेष तीनपर हम तीनों व्यक्ति।

भोजनकी विधि यह थी कि सर्वप्रथम ख़ौंचा नामक ताँबेका एक बड़ा दस्तरख़्वान लाकर उसपर ताँबेका एक तवाक़, जिसको इस देशमें 'तालम' कहते हैं, रख दिया जाता है। तत्पश्चात् रेशमी वस्त्रावृता दासी भोज्य पदार्थोंसे भरी हुई देगचियाँ तथा ताँबेके बड़े बड़े चमचे ला, एक एक चमचा चावल 'तवाक़' (बड़े टोकने) में एक ओर रख कर ऊपरसे घृत डाल देती है और दूसरी ओर मिर्च, अद्रक, नीबू तथा आमके अचार रख देती है। इन अचारोंकी सहायतासे चावलके ग्रास मुखमें डाले जाते हैं। चावल समाप्त हो जाने पर; द्वितीय बार पुनः चमचा भर कर चावल तवाक़में रखा जाता है, परन्तु इस बार उसपर मुर्ग़का मांस और सिरका डाला जाता है और इसीकी सहायतासे चावल खाया जाता है। इसके भी चुक जाने पर तृतीय बार चावल परोस कर भिन्न भिन्न प्रकारका मुर्ग़का, तथा मत्स्य-मांस रखा जाता है। तत्पश्चात् हरे शाक-पात आते हैं और उनकी सहायतासे चावल खाते हैं। इस प्रकार भोजन करनेके उपरांत दासी 'कोशान्' (दहीकी लस्सी) लाती है और भोजन समाप्त होता

है। इस पदार्थके आते ही समझ लेना चाहिये कि समस्त भोज्य पदार्थ समाप्त हो गये। भोजनके अंतमें, शीतल जल पीनेसे हानि होनेका भय होनेके कारण, वर्षा ऋतुमें उष्ण जल दिया जाता है।

दूसरी बार यहाँ आने पर मैं राजाका ग्यारह मास पर्य्यंत अतिथि रहा और इस कालमें भी मैंने, इन लोगोंका प्रधान खाद्य पदार्थ केवल चावल होनेके कारण, कभी एक रोटी तक न खायी। इसी प्रकार मालद्वीप, सीलोन (लंका) तथा मअ्बरमें तीन वर्ष तक रहने पर भी मैंने निरंतर चावलों-का ही उपयोग किया, किसी अन्य पदार्थके दर्शन तक न हुए। चावलोंकी यह दशा थी कि मुखमें चलते न थे, जलके सहारे ज्यों त्यों करकें गलेके नीचे उतारता था।

राजा रेशम तथा बारीक कताँके वस्त्र पहनता और कटि-प्रदेशमें चादर बाँधता है। इसका शरीर दोहरी रज़ाइयोंसे ढँका रहता है, और गुँधे हुए केशोंपर एक छोटा सा साफा बँधा रहता है। सवारीके समय वह क़बा (एक प्रकारका चोग़ा) पहिन कर ऊपरसे रज़ाई ओढ़ लेता है और उसकें आगे आगे पुरुष नगाड़े तथा ढोल बजाते चलते हैं।

इस बार हम लोग यहाँपर केवल तीन ही दिन ठहरे। विदाकें समय उसने हमको मार्गव्यय भी दिया।

५—मालाबार

यहाँसे चलकर तीन दिन पश्चात् हम मालाबार[१] पहुँचे। काली मिर्च उत्पन्न करनेवाले इस देशका विस्तार दो मास

(१) मालाबार—मलय पर्वतके कारण इस देशका यह नाम पड़ गया है। प्राचीन कालमें इस देशको 'केरल' कहते थे। आधुनिक ट्रावन-

चलने पर समाप्त होता है। संदापुरसे लेकर कोलम नगर पर्यंत यह प्रांत नदीके किनारे किनारे फैला हुआ है। राहमें दोनों ओर वृक्षोंकी पंक्तियाँ लगी हुई हैं। आधे मीलके अंतर पर हिन्दू तथा मुसलमान यात्रियोंके विश्राम करनेके लिए काष्ठ-गृह बने हुए हैं और इनके चबूतरेपर दूकानें लगी होती हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गृहके निकट एक कूप होता है जहाँपर हिंदुओंको पात्रमें और मुसलमानोंको ओक द्वारा (मुखके निकट हाथ लगाकर उसमें जल डालनेकी क्रिया विशेष) जल पिलाया जाता है। ओक द्वारा जल पिलाते समय हाथके संकेतसे निषेध करने पर जल-दाता जल डालना बंद कर देता है।

इस प्रदेशमें मुसलमानोंका न तो घरके भीतर प्रवेश ही होने देते हैं और न उनको अपने पात्रोंमें ही भोजन कराते हैं। पात्रमें भोजन कर लेने पर या तो उसे तोड़ देते हैं या भोजन करनेवाले मुसलमानको ही प्रदान कर देते हैं। किसी स्थानपर मुसलमानका निवास न होने पर आगन्तुक विधर्मीके लिए केलेके पत्तेपर भोजन परोस देते हैं। सूप भी उसी पत्तेपर डाल दिया जाता है। भोजन-समाप्ति पर बचा हुआ अन्न पक्षी या कुत्ते खाते हैं।

इस राहमें सभी पड़ावोंपर मुसलमानोंके घर बने हुए हैं। मुसलमान यात्री इन्हींके पास आकर ठहरते हैं और ये ही उनके लिए भोज्य पदार्थ मोल लेकर भोजन तैयार करते हैं। इनके यहाँ न होने पर मुसलमानोंको इस प्रदेशमें यात्रा करने-में बड़ी कठिनाई होती।

कोर तथा कोचीनका राज्य इसी प्रदेशके अंतर्गत समझना चाहिये।

हिजरी सन २०० के लगभग यहाँ मुसलमान धर्म फैला।

दो मास तक इस समस्त देशमें एक छोरसे लेकर दूसरे छोर तक जाने पर एक चप्पाभर धरती भी ऐसी न मिली जहाँ आबादी न हो। प्रत्येक आदमीका घर पृथक् बना हुआ है। गृहके चारों ओर उपवन होता है और उसके चारों ओर काष्ठकी दीवार। सारी राह इन्हीं उपवनोंमें होकर जाती है। उपवनकी समाप्ति पर दीवारकी सीढ़ियों द्वारा दूसरे उपवनमें प्रवेश होता है (और इसी प्रकार चलकर सारी राह समाप्त होती है)। राजाके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति इस देशमें घोड़े या किसी अन्य पशुपर सवार नहीं होता। पुरुष बहुधा डोले (एक प्रकारको पालकी) पर अथवा पैदल ही यात्रा करते हैं। डोलेपर यात्रा करनेकी दशामें यदि दास न हों तो उसे ढोनेके लिए मज़दूर रख लिये जाते हैं।

व्यापारी और बहुत अधिक बोझ रखनेवाले यात्री क़िराये-के मजदूरोंपर सामान लदवा कर यात्रा करते हैं। प्रत्येक मज-दूरके पास एक मोटा डंडा रहता है; नीचेकी ओर तो लोहेकी कील और ऊपरकी ओर सिरेपर एक आँकड़ा लगा होता है। सामान ये लोग पीठपर लादते हैं। राह चलते चलते थक जानेपर विश्राम करनेके लिए जब कोई दूकान तक पास बनी हुई नहीं होती, तो ये इसी डंडेको धरतीमें गाड़कर सामानकी गठरी इसपर लटका देते हैं और पुनः विश्राम लेकर चलते हैं।

इस प्रांतमें जैसी शांति है वैसी मैंने किसी अन्य राहपर नहीं देखी। यहाँपर तो एक नारियलकी चोरी कर लेने पर भी प्राण-दंड होता है। पेड़से फल गिर जाने पर भी स्वामीके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति उसे नहीं उठाता। कहते हैं कि किसी हिन्दूने एक बार एक नारियल इसी प्रकार उठा लिया

था। शासकने इसकी सूचना पाते ही लोहेकी अनीदार लकड़ी पृथ्वीपर इस प्रकारसे गड़वायी कि अनी ऊपरकी ओर रही, अनीपर एक काठका तख्ता रखा गया और उसपर अपराधी लिटा दिया गया। लोहेकी अनी तख्ता चीरकर अपराधीके पेटके आरपार होगयी। इसके पश्चात् अन्य लोगोंको भय दिखानेके लिए अपराधीका शव इसी प्रकारसे वहाँ लटकता रखा गया। यात्रियोंकी सूचनाके लिए इस प्रकारकी बहुतसी लकड़ियाँ राहपर लगी हुई हैं।

राहमें हमको बहुतसे हिन्दू मिलते थे परन्तु हमको आते देख वह सब एक ओर खड़े हो जाते थे और हमारे निकल जाने पर पुनः चलना प्रारम्भ करते थे। मुसलमानोंके साथ भोजन न करने पर भी यहाँ उनका बहुत ही आदर-सत्कार किया जाता है।

इस प्रान्तमें बारह राजा राज्य करते हैं। सबसे बड़ेके पास पन्द्रह सहस्र और सबसे छोटेके पास तीन सहस्र सैनिक हैं, परन्तु इनमें आपसमें कभी शत्रुता नहीं होती और न बलवान् निर्बलका राज्य छीननेका ही प्रयत्न करते हैं। एक राज्यकी सीमा समाप्त होने पर दूसरे राज्यमें काष्ठके द्वारसे प्रवेश करना होता है। इस राज्यके द्वारपर राजाका नाम भी अंकित रहता है। इसका तात्पर्य यह है कि द्वारमें प्रवेश करने पर यात्री अमुक राजाके आश्रयमें आगया। एक राज्यमें अपराध कर अन्य राज्यद्वारमें प्रवेश करते ही प्रत्येक हिन्दू अथवा मुसलमान अपराधीको दण्डका भय नहीं रहता। ऐसी दशामें बलवान् राजा भी निर्बल शासकको अपराधी लौटानेके लिए बाध्य नहीं कर सकता।

राजाओंकी मृत्युके उपरान्त उनके उत्तराधिकारी भागि-

नेय होते हैं,[१] वे ही राज्यके शासक नियत किये जाते हैं, पुत्र नहीं। सूडान देशकी 'मसूफा' जातिके अतिरिक्त मैंने यह प्रथा किसी अन्य देशमें नहीं देखी (मैं इसका वर्णन भी अन्यत्र करूँगा)। इस देशके राजा जब किसी व्यापारीकी विक्री बन्द करना चाहते हैं तो उनके दास उक्त व्यापारीकी दूकानपर वृक्षोंकी शाखाएँ लटका देते हैं। जब तक ये शाखाएँ दूकानपर लटकती रहती हैं, कोई व्यक्ति वहाँपर किसी पदार्थका क्रय-विक्रय नहीं कर सकता।

काली मिर्चका बूटा अंगूरकी बेल जैसा होता है परंतु उसमें शाखा-प्रशाखाएँ नहीं होतीं। वह नारियलके वृक्षके निकट बोया जाता है और बढ़कर बेलकी भाँति उसी वृक्षपर फैल जाता है। इसके पत्ते घोड़ेके कानके सदृश होते हैं. किसी किसी पौधेके पत्ते अलीक़ (घास विशेष जिसको खाकर पशु खूब मोटे-ताजे हो जाते हैं) के पत्तोंके समान होते हैं।

इसके फल छोटे छोटे गुच्छोंके रूपमें लगते हैं और जिस प्रकार किशमिश बनाते समय अंगूर सुखाये जाते हैं, उसी प्रकार इन फलोंके गुच्छे भी खरीफ़ (उत्तरीय भारतकी वर्षा ऋतु) आने पर धूपमें सुखाये जाते हैं। कई बार पलटे जाने-के कारण ये सूखकर काले हो जाते हैं और फिर व्यापारियोंके हाथ बेच दिये जाते हैं। हमारे देश-निवासियोंका यह विचार कि अग्निमें भुननेके कारण फल काले और करारे हो जाते हैं, ठीक नहीं है। करारापन तो वास्तवमें धूपमें रखनेके कारण आ जाता है।

जिस प्रकार हमारे देशमें जुआर एक माप द्वारा नापी

(१) नैयर जातिमें अबतक यह प्रथा चली आती है।

जाती है उसी प्रकार मैंने इस फलको क़ालकूत (कालीकट) नामक नगरमें नपते हुए देखा था।

६—अबी-सरुर

सबसे प्रथम हम इस प्रदेशके खाड़ीपर स्थित अबीस-रुर[1] नामक छोटेसे नगरमें पहुँचे। यहाँ नारियलके वृक्षोंकी बहुतायत है। यहाँ मुसलमानोंमें अत्यंत लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति शैख़ जुम्मा है, जो 'अबी सत्ता' के नामसे विख्यात है। यह पुरुष बड़ा दानशील है। इसने अपनी समस्त संपत्ति फकीरों तथा दीन-दुखियोंको बाँट दी है।

दो दिन पश्चात् हम खाड़ी-स्थित फाकनोर[2] नामक नगरमें पहुँचे। यहाँका सा उत्तम गन्ना देश भरमें नहीं होता। यहाँ भी मुसलमानोंकी संख्या बहुत है। हुसैन सलात नामक व्यक्ति इनमें सबसे बड़ा गिना जाता है। इसने यहाँ एक जामे मसजिद भी बनवायी है। नगरमें क़ाज़ो तथा ख़तीब भी हैं। नगरके राजाका नाम वासुदेव है। इसके पास तीस युद्ध-पोत हैं, परंतु उनका अफ़सर 'लूला' नामक एक मुसलमान है। यह व्यक्ति पहले समुद्री डाकू था और व्यापारियोंको लूटा करता था।

---

(१) अबीसरुर—यह अब बारसिलोर कहलाता है।

(२) फाकनोर—यह अब बरकोर कहलाता है। यह मदरास अहातेके दक्षिणीय कानड़ा नामक ज़िलेमें है। बतूताके समय यह नगर विजयनगरके राजाओंके अधीन था। ई० स० १५६५ में दक्षिणीय मुसल-मानों द्वारा विजयनगरकी पराजयके पश्चात् इसपर बिदनोरके राजाका आधिपत्य हो गया। आधुनिक नगर 'हँगर-कट्टा' कहलाता है और वह प्राचीन 'बरकोर' या बाँकनोरसे पाँच मील दूर सीला नदीके मुखपर स्थित है।

नगरके निकट लंगर डालने पर राजाने अपने पुत्रको हमारे पास भेजा। उसको अपने जहाज़में प्रतिभूकी भाँति रखकर हमने नगर-प्रवेश किया।

कुछ तो भारत-सम्राट्के प्रति आदरभाव दिखाने और कुछ अपने धर्म, हमारे आतिथ्य तथा जहाज़ोंके व्यापार द्वारा लाभ उठानेके विचारसे राजाने तीन दिन पर्य्यंत हमको भोज दिया।

नगरमें आने पर प्रत्येक जहाज़को यहाँ ठहर कर (राजा-को) 'हक़े बंदर' नामक एक नियत कर देना पड़ता है। अपनी इच्छासे कर न देने पर राजाके जहाज़ बलपूर्वक आगन्तुक जहाज़को बन्दरमें ले आते हैं और कर चुकता न होने तक आगे नहीं बढ़ने देते।

७—मंजौर

तीन दिन पश्चात् हम मंजौर[1] पहुँचे। यह विस्तृत नगर इस प्रांतकी सबसे बड़ी 'दनप' (दंप) नामक खाड़ीपर बसा हुआ है। फारिस तथा यमन (अरबका प्रांत-विशेष) के व्यापारी यहाँ बहुधा आते हैं। कालीमिर्च और सोंठ यहाँ ख़ब होती है। नगरके राजाका नाम रामदेव है और वह मालाबारमें सबसे बड़ा गिना जाता है।

मुसलमान भी संख्यामें लगभग चार-पाँच सहस्र हैं, और नगरके एक ओर रहते हैं। व्यापारियोंपर निर्भर रहनेके कारण राजा नगर-निवासियों तथा हमारे सहधर्मियोंमें आपसका झगड़ा हो जाने पर पुनः दोनोंका मेल करा देता है। मअ्बरके रहनेवाले बदर-उद्दीन नगरके क़ाज़ी भी यहीं थे और

(१) मंजौर—यह नगर अब मंगलौर कहलाता है।

बालकोंको शिक्षा देते थे। हमारे यहाँ आते ही यह महाशय जहाज़पर आये और हमसे नगरमें अपने यहाँ चलनेको कहने लगे। हमारे यह उत्तर देने पर कि जबतक फाकनोरके राजाकी तरह यहाँका राजा भी अपने पुत्रको प्रतिभू रूपमें जहाज़पर न भेजेगा, तबतक हम नगरमें कदापि प्रवेश न करेंगे। इन्होंने कहा कि फाकनोरकी बात और है, वहाँ नगरस्थ मुसलमानोंकी संख्या अल्प होनेके कारण उनका कुछ भी बल नहीं है, परंतु यहाँ तो राजा हमसे भय खाता है, फिर प्रतिभूकी क्या आवश्यकता है? परंतु हम न माने। राजपुत्रके जहाज़में आने पर ही हमने नगर-प्रवेश किया, और वहाँ हमारा तीन दिन पर्य्यंत खूब आतिथ्य-सत्कार हुआ। इसके पश्चात् हम यहाँसे चल पड़े।

८—हेली

हेली[1] की ओर चल हम दो दिनमें वहाँ जा पहुँचे। विस्तृत खाड़ीपर बसे हुए इस विशाल नगरमें सुंदर गृह अधिक

(१) हेली—अब इस नामका कोई नगर नहीं मिलता। परन्तु कनानौरसे १६ मील उत्तरकी ओर एक पर्वतका कोण समुद्रमें निकला हुआ है जिसको एली कहते हैं। अबुल फिदा तथा रशीद-उद्दीन नामक प्राचीन मुसलमान लेखकोंके कथनसे इसकी पुष्टि भी होती है।

फारसी भाषामें इलायचीको 'हेल' तथा संस्कृतमें 'एला' कहते हैं। सम्भव है, इस नगरका नाम इन्हीं शब्दोंमेंसे किसी एकसे बना हो। मख़ज़न नामक पुस्तकमें यह भी लिखा है कि छोटी इलायची मालाबारके हेली नामक स्थानमें उत्पन्न होती है।

श्री हंटरके मतसे यह नगर 'पायन गाड़ी' नामक एक वर्तमान गाँवके निकट था।

संख्यामें बने हुए हैं। यहाँ बड़े बड़े जहाज़ आकर ठहरते हैं, यहाँतक कि चीनके जहाज़ भी, जो क़ालकूत (कालीकट) और कोलमके अतिरिक्त और किसी स्थानमें नहीं ठहरते, इस नगरमें आकर रुकते हैं।

हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही जातियाँ इस नगरको पवित्र समझती हैं। यहाँ एक जामे मसजिद भी है जो ऋद्धि-सिद्धि-दायिनी समझी जाती है। जहाज़के यात्री कुशलपूर्वक यात्रा समाप्त होनेकी मिन्नतें माँगकर इस मसजिदमें प्रचुर भेंट देते हैं। मसजिदका कोष ख़तीब हुसैन और हसन वज़ांके अधीन है। द्वितीय महाशय मुसलमानोंमें सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। मसजिदमें बालकोंको प्रतिदिन शिक्षा तथा कुछ धन दोनों ही नियमित रूपसे मिलते रहते हैं। यहाँपर मध्यमें एक रसोई-घर भी बना हुआ है जहाँपर प्रत्येक यात्री तथा मुसलमान फकीरको भोजन दिया जाता है।

मक़दशोके रहनेवाले सईद नामक एक धर्मशास्त्रीसे मैं इस मसजिदमें मिला। इनकी पवित्र मूर्ति तथा सुंदर स्वभाव देखकर मेरा मन अत्यंत प्रसन्न हुआ। यह नित्य प्रति रोज़ा रखते हैं और कहते थे कि मैं श्रेष्ठ (मुअज़्ज़मा) मक्का और प्रकाशदायक (मुनव्वरा) मदीनामें चौदह वर्ष पर्य्यंत रहा हूँ। मैं इन दोनों नगरोंमें क्रमसे अमीर अबू नमी तथा अमीर अल्‌मंसूरसे भी मिला हूँ। यह चीन तथा भारतकी भी यात्रा कर चुके थे।

६—जुर-फ़त्तन

हेलीसे तीन कोस चलकर हम जुर-फ़त्तन[1] पहुँचे। यहाँ मुझको बग़दाद-निवासी एक धर्मशास्त्री मिला, जो सर-

(१) जुर-फ़त्तन—कुछ लोगोंकी सम्मतिमें यह 'बलिया पत्तन' का

सरी' के नामसे प्रसिद्ध है। 'सरसर' नामक नगर बग़दादसे दस मीलकी दूरीपर 'कूफ़ा' की सड़कपर बसा हुआ है। यहाँ इसका एक भ्राता रहता था जो अत्यन्त धनाढ्य था। देहांत होते समय पुत्रोंकी अवस्था अल्प होनेके कारण वह इसीको अपना मैनेजर (वसी) नियत कर गया। मेरे चलनेके समय यह उनको बग़दाद ले जा रहा था। सूडानकी तरह भारतमें भी यही प्रथा है कि किसी यात्रीका इस देशमें देहान्त होजाने पर सहस्रोंकी संपत्ति भी न्याय्य उत्तराधिकारीके न आने तक किसी मुसलमानके पास थातीके रूपमें रहती है। अन्य कोई व्यक्ति इसका कोई अंश व्यय नहीं कर सकता।

यहाँके राजाका नाम कोयल है। यह मालावारका एक बड़ा राजा समझा जाता है। इसके पास जहाज़ भी अधिक संख्यामें हैं और अमान, फारिस तथा यमन पर्य्यन्त वाणिज्य व्यवसायके लिए जाते हैं। दह-फ़त्तन और बुदपत्तन नामक नगर भी इसी राजाके राज्यमें हैं।

१०—दह-फ़त्तन

जुरफ़त्तनसे चल कर हम दहफ़त्तन[१] पहुँचे। यह नगर

प्राचीन नाम है जो कनानौरसे चार मीलकी दूरीपर बसा हुआ है, परन्तु। श्री हंटरकी सम्मतिमें मालावारके चेराकल नामक ताल्लुकेमें श्रीकुंदापुर-मका प्राचीन नाम है। इस गाँवमें 'मोपले' नामक मुसलमानोंकी बस्ती है। गिब्ज़के अनुसार कनानोर ही जुरफ़त्तन है।

(१) दह-फ़त्तन—'दरमा पत्तन'—श्री हंटर महोदयके कथनानुसार यह स्थान 'टेलीचरी' बन्दरके निकट ही था। उत्तरीय मालावारमें टेलीचरी इस समय एक बड़ा बन्दरगाह है। इब्ने दीनारकी नौ मसजिदोंमेंसे एक यहाँपर भी बनी हुई थी।

एक नदीके किनारे बसा हुआ है। यहाँ उपवनोंकी संख्या बहुत अधिक है। यहाँ कालीमिर्च, सुपारी और पान भी होते हैं। अरवी (घुइयाँ) भी यहाँ खूब होती है और मांसके साथ पकायी जाती है। यहाँ जैसे अधिक और सस्ते केले मैंने अन्य किसी स्थानमें नहीं देखे।

नगरमें एक सुदीर्घ—पाँच सौ पग लम्बी और तीन सौ पग चौड़ी—रक्त पाषाणकी बाईं (वापिका) भी बनी हुई है। इसके तटपर अट्ठाईस बड़े बड़े गुम्बद बने हुए हैं और प्रत्येकमें बैठनेके लिए पाषाणके चार चार स्थान बने हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गुम्बदके भीतरसे वापिका तक जानेके लिए सीढ़ियाँ हैं। मध्यमें एक तीन खंडका बड़ा गुम्बद बना हुआ है जिसके प्रत्येक खंडमें बैठनेके लिए चार चार स्थान हैं। कहा जाता है कि राजा कोयलके पिताने यह वापिका बनवायी थी।

वापिकाके संमुख जामे-मसजिदकी सीढ़ियाँ भी दूसरी ओर जलमें उतरती हैं और हमारे सहधर्मी भी नीचे उतर कर वहीं स्नान या वज़ू करते हैं।

धर्मशास्त्रज्ञ हुसैन मुझसे कहते थे कि यह वापिका और मसजिद राजाके दादाने मुसलमान होने पर निर्माण करायी थी। उसके मुसलमान धर्ममें दीक्षित होनेकी कथा भी बड़ी अद्भुत है। मैंने स्वयं जामे-मसजिदके संमुख एक बड़ा वृक्ष देखा है, जिसमें पत्ते अंजीरकी तरह होने पर भी उससे अपेक्षाकृत अधिक कोमल हैं। वृक्षके चारों ओर दीवार तथा एक महराब बनी हुई है।

इसी स्थानके समीप बैठ कर मैंने दोगाना पढ़ा। यह वृक्ष 'दरख्ते-शहादत (साक्षी-वृक्ष) कहलाता है। इसकी कथा

इस प्रकार कही जाती है कि ख़रीफ़में वृक्षका पत्ता पीला होनेके पश्चात् जब लाल होकर गिरता है तो प्रकृति देवी अपने हस्तकमलसे उसपर अरबी भाषामें 'ला-इला-इल्ल-ल्लाह मुहम्मद-र्-रसूलल्लाह' लिख देती है। धर्मशास्त्रज्ञ हुसैन तथा अन्य धर्मात्मा और सत्यवादी मुझसे कहते थे कि हमने पत्तेमें कल्मा लिखा हुआ स्वयं अपनी आँखों से देखा है। गिरने पर पत्तेका अर्धभाग मुसलमान ले जाते हैं और शेष राजकोषमें रखा जाता है। उसके द्वारा बहुतसे रोगियोंको आरोग्य-लाभ होता है। इसी पत्तेके कारण राजा कोयलने मुसलमान धर्ममें दीक्षा ले जामे मस-जिद तथा बाईं बनवायी। यह राजा अरबी भाषा पढ़ सकता था, और पत्तेपर लिखा हुआ कल्मा (मुसलमान धर्मका दीक्षा-मंत्र) पढ़ कर ही यह मुसलमान--पक्का मुसलमान--हुआ था। हुसैन कहते थे कि ऐसी कहा-वत चली आती है कि कोयलकी मृत्युके बाद उसके पुत्रने धर्मपरिवर्त्तन कर वृक्षको ऐसा जड़से निकाल कर उखाड़ फेंका कि कोई चिन्ह तक शेष न रहा। इसपर भी वृक्ष पुनः उग आया और प्रथम बारसे भी अधिक फूला फला, परन्तु राजा तुरन्त ही मर गया।

११—बुद-पत्तन

इसके अनन्तर हम बुद-पत्तन[1] नामक एक बड़े नगरमें पहुँचे जो एक बड़ी नदीके तटपर बसा हुआ है। नगरमें एक

(१) इस नगरका कुछ पता नहीं चलता कि कहाँ है। मसजिदके होनेसे तो 'चालयाम' का संदेह होता है जो वर्त्तमान 'बेपुर' नामक-नगरके निकट था। इस स्थानपर भी इब्नेदीनारकी एक मसजिद थी।

भी मुसलमान न होनेके कारण जहाज़के मुसलमान यात्री समुद्र-तटपर बनी हुई एक मसजिदमें आकर ठहरते हैं। यह बन्दर अत्यन्त ही रमणीक है: यहाँका जल भी अत्यन्त मीठा है। अधिक मात्रामें उत्पन्न होनेके कारण सुपारियाँ यहाँसे चीन तथा (उत्तर) भारतको भेजी जाती हैं।

नगर-निवासी बहुधा ब्राह्मण ही हैं। हिन्दू जनता इन लोगोंको बड़े आदरकी दृष्टिसे देखती है। परन्तु मुसलमानोंके प्रति इसका घोर द्वेष होनेके कारण एक भी मुसलमान यहाँ निवास नहीं करता। मसजिद विध्वस्त न करनेका यह कारण बतलाया जाता है कि एक ब्राह्मणने कभी इसकी छत तोड़कर कड़ियाँ निकाल अपने गृहमें लगा ली थीं। उसके घरमें आग लगने पर कुटुंब-धनसम्पत्ति सहित वह वहीं जलकर राख हो गया। इस घटनाके पश्चात् समस्त जनता मसजिदको आदर-भावसे देखने लगी और इसके बाद किसीने उसका अपमान नहीं किया। यात्रियोंके पानी पीनेके लिए मसजिदके बाहर एक जलकुण्ड तथा पंछियोंका प्रवेश रोकनेके लिए द्वारोंमें जालियाँ भी नगर-निवासियोंने बनवा दीं।

१२—फ़न्दरीना

यहाँसे चलकर हम फ़न्दरीना[१] नामक एक अन्य विशाल नगरमें पहुँचे जहाँपर उपवन तथा बाज़ार दोनोंकी ही भरमार थी। यहाँ मुसलमानोंके तीन मुहल्ले हैं और प्रत्येकमें एक एक मसजिद बनी हुई है। समुद्र-तटपर बनी हुई जामे मसजिदमें बैठनेका स्थान समुद्रकी ही ओर होनेके कारण अत्यंत अद्भुत

(१) फ़न्दरीना—वर्तमान कालमें इसको पन्दारानी अथवा 'पत्तालानी' कहते हैं जो कालीकटसे १६ मील उत्तरको है।

दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। क़ाज़ी और ख़तीब अमालके रहनेवाले हैं। उनका एक अन्य विद्वान् भ्राता भी इसी नगरमें निवास करता है। चीनके जहाज़ इस नगरमें ग्रीष्म ऋतुमें आकर ठहरते हैं।

१३—कालीकट

यहाँसे चलकर हम मालाबारके सबसे बड़े बन्दर कालीकट[1] में पहुँचे। चीन और जावा, सीलोन (लंका) और मालद्वीप, यमन और फारिसके ही नहीं प्रत्युत समस्त संसारके व्यापारी यहाँ आकर एकत्र होते हैं। संसारके वड़े वड़े वंदर-स्थानोंमें इस नगरकी गणना की जाती है।

यह स्थान सामरी नामक एक अत्यंत वृद्ध हिंदू राजाके अधीन है। नगर-निवासी फ़रंगियों (फ्रैंकका अपभ्रंश जो यूरोपवासियोंके लिए व्यवहृत होता है) के एक समुदायकी तरह राजा साहब भी दाढ़ी मुंड़वाते हैं।

बदरीन-निवासी इब्राहीमशाह बन्दरको अमीर-उल-

(१) कालीकटको इब्नेबतूताने कालकूतके नामसे लिखा है। इस नगरमें मोपला नामक मुसलमान जातिकी बस्ती अधिक है। कहा जाता है, प्रसिद्ध चैरामन पैरुमल्ल नामक सर्दारने वर्त्तमान नगरकी नींव डाली थी। उसीके 'सामरी' नामक वंशजोंने यहाँपर ई० १७६६ (हैदर अलीके आक्रमणके समय) तक राज्य किया। उक्त मैसूर-नरेशके घेरा डालने पर सामरी-वंशज नृपतिने समस्त कुटुम्ब सहित अग्नि-प्रवेश किया। मैसूरका पतन होनेके पश्चात् यह नगर अंग्रेज़ोंके अधीन हो गया।

वास्कोडिगामा नामक प्रसिद्ध पुर्तगाल-यात्री यूरोपसे आकर सर्वप्रथम यहीं रुका था; और अंग्रेजोंके पूर्व पुर्तगाल-निवासियोंकी ही कोठियाँ यहाँ बनी हुई थीं।

तुज्जार (सर्वश्रेष्ठ व्यापारी) की उपाधि प्राप्त है। यह महाशय बड़े विद्वान् एवं दानशील हैं। इनके दस्तरख़्वानपर चारों ओरके व्यापारी आकर भोजन किया करते हैं।

नगरके क़ाज़ीका नाम फ़ख़र-उद्दीन उस्मान है। यह भी बड़ा दानशील है। शैख़ शहाब-उद्दीन गाज़रौनी महाशय यहाँपर मठाधिपति हैं। चीन तथा भारतवर्षमें शैख़ अबूइसहाक़ गाज़रौनीकी मानता माननेवाले पुरुष इन्हींको भेंट चढ़ाते हैं। सुप्रसिद्ध धनाढ्य और जहाज़के स्वामी (नाख़ुदा) मशक़ाल भी इसी नगरमें रहते हैं। इन महाशयके जहाज़ हिन्दुस्तान और चीन तथा यमन और फ़ारसमें व्यापार करते हैं।

इस नगरके निकट पहुँचने पर शैख़ शहाब-उद्दीन तथा इब्राहीम शाह प्रभृति बहुतसे व्यापारी और राजाके प्रतिनिधि (जिनको यहाँ कलांज कहते हैं) नौबत, नगाड़े और ध्वजा-पताका सहित जहाजोंमें हमारा स्वागत करने आये और जलूसके साथ हमने नगर-प्रवेश किया।

ऐसा विस्तृत बन्दर स्थान मैंने इस देशमें और कहीं नहीं देखा। हमारे यहाँ लंगर डालनेके समय नगरमें चीनके तेरह जहाज़ ठहरे हुए थे। जहाज़से उतरने पर नगरमें आ कर हमने एक मकान किरायेपर ले लिया और तीन मास पर्य्यंत चीन देश जानेके लिए अनुकूल ऋतुकी प्रतीक्षा करते रहे। इतनी अवधि तक हमारा भोजन राज-प्रासादसे ही आता रहा।

१४—चीनके पोतोंका वर्णन

चीन देशके समुद्रमें तद्देशीय जहाज़के बिना यात्रा करना शक्य नहीं है। चीनी पोतोंकी तीन श्रेणियाँ होती हैं। सबसे

बड़ी श्रेणीके पोत 'जंक', [1] मध्यमके 'ज़ो' और लघु श्रेणीके 'कक्म' कहलाते हैं। प्रथम श्रेणीके पोतोंमें बारह और लघु श्रेणीवालोंमें तीन मस्तूल होते हैं जो ख़ेज़रान (बेंत) की लकड़ीके बनाये जाते हैं। बोरियोंकेसे बुने हुए बादबान कभी नीचे नहीं गिराये जाते, प्रत्युत सदा वायुके बहावकी ओर फेर दिये जाते हैं। जहाज़ोंके लंगर डालने पर भी ये बादबान खड़े खड़े वायुमें यों ही उड़ा करते हैं।

प्रत्येक जहाज़में एक सहस्र पुरुष होते हैं। इनमें छः सौ तो केवल पोत चलानेका कार्य करते हैं और शेष चार सौ सैनिक होते हैं। सैनिकोंमें कुछ धनुषधारी तथा चक्र द्वारा छोटे गोले फेंकनेवाले भी होते हैं। प्रत्येक बड़े जहाज़के नीचे तीन अन्य छोटे जहाज़ भी रहते हैं। इनमेंसे एक तो बड़े पोत-का आधा, दूसरा तिहाई और तीसरा चौथाई होता है।

जहाज़ या तो 'महान चीन' या जैतून नामक नगरमें बनाये जाते हैं। बनानेकी विधि यह है कि सर्वप्रथम काष्ठकी दो दीवारें बना अन्य स्थूल काष्ठ-भागोंसे मिला कर उनकी लंबाई और चौड़ाईमें तीन तीन गज़की लोहेकी कीलें ठोक देते हैं। इस प्रकार मिल जानेके उपरांत इन दोनों दीवारोंपर फ़र्श बना पोतके सबसे निचले भागका फ़र्श तैयार कर ढाँचे-

(१) जंक—चीन देशमें पोतको अब भी जंक ही कहते हैं। यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि चीन देश-निवासियोंने किस समय मालाबारमें आना छोड़ दिया। जोसफ़ क्रँगोनोरी नामक एक ईसाई लेखकका कथन है कि सन् १५५५ ई० में कालीकटके राजाने चीनियोंके साथ दुर्व्यवहार किया, इस पर चीनियोंने दूसरी बार आक्रमण कर जनता-का खूब वध किया और फिर इस तरफ आना छोड़ पूर्वीय तटस्थ 'मछलीपट्टन' नामक नगरमें व्यापार करना प्रारंभ कर दिया।

को समुद्रतटके निकट ही जलमें डाल देते हैं। जनता इसपर आकर स्नान तथा शौचादि करती रहती है। निचले लट्ठोंकी करवटमें स्तंभोंकी तरह स्थूल चप्पू लगाये जाते हैं। प्रत्येक चप्पूपर दस-पन्द्रह मल्लाहोंको खड़े होकर काम करना पड़ता है।

प्रत्येक पोतमें चार छतें होती हैं और व्यापारियोंके लिए घर, कोठरियाँ, (मिसरिया) और खिड़कियाँ इत्यादि भी बनी होती हैं। 'मिसरिया' अर्थात् कोठरीमें रहनेका स्थान (गृह), संडास तथा ताला डालनेके लिए कपाट-युक्त द्वार तक बने होते हैं। मिसरिया ले लेने पर पुरुष द्वार बंद कर लेते हैं और इस प्रकारसे स्त्रियाँ तक उनके साथ जा सकती हैं। कभी कभी तो मिसरियामें रहनेवाले पुरुषोंको पोतके अन्य यात्री भी नहीं जान पाते। पोतके लंगर डालने पर यदि किसी यात्रीकी इनसे नगरमें भेंट हो जाने पर जान-पहचान हो गयी तो बातही दूसरी है।

मल्लाह तथा सैनिक इन पोतोंमें ही सकुटुम्ब निवास करते हैं। ये लोग काष्ठके वृहत् कुण्डोंमें बहुधा शाक, भाजी तथा अद्रक आदि भी बो देते हैं।

जहाजका वकील भी एक बड़ा संभ्रान्त व्यक्ति होता है। जब यह स्थलपर उतरता है तो धनुषधारी तथा हब्शी अस्त्र-शस्त्रादिसे सुसज्जित हो इसके आगे आगे चलते हैं और नौबत-नगाड़े आदि भी बजते जाते हैं।

पड़ावपर पहुँचने पर वहाँ ठहरनेकी इच्छा हुई तो पोतके दोनों ओर भाले गाड़ दिये जाते हैं और जबतक वहाँसे आगे नहीं जाते तबतक यह वहाँ इसी प्रकार गड़े रहते हैं।

चीन-निवासी बहुधा अनेक पोतोंके स्वामी होते हैं और इनके जहाज़ोंपर सदा प्रतिनिधि (वकील) उपस्थित

रहते हैं। संसारके किसी देशमें भी चीन-निवासियोंकेसे धनाढ्य व्यक्ति नहीं है।

१५—पोत-यात्रा और उसका विनाश

चीनकी ओर यात्रा करनेका समय निकट आने पर नगरके राजा 'सामरी' ने बन्दर-स्थानमें ठहरे हुए तेरह जंकोंमेंसे, सीरिया (शाम)-निवासी सुलेमान सफदी नामक प्रतिनिधिका एक जंक हमारे वास्ते सुसज्जित कराया।

दासियोंके बिना मैं कभी यात्रा नहीं करता। इस यात्रामें भी दासियाँ सदैवके अनुसार मेरे साथ थीं; अतएव प्रतिनिधि महाशयसे परिचय होनेके कारण मैंने अपने लिए एक ऐसा मिसरिया चाहा जिसमें कोई अन्य व्यक्ति सम्मिलित न हो। परंतु उनसे पता चला कि चीन देशवासियोंके समस्त मिसरियोंको पहिलेसे ही आने-जानेके लिए किरायेपर ले लेनेके कारण उस समय एक भी रिक्त न था, फिर भी उन्होंने अपने जामातासे एक मिसरिया खाली करा देनेका वचन दिया और इसमें संडास न होने पर मेरे लिए उसका विशेष प्रबन्ध करनेकी भी प्रतिज्ञा की। अब मैंने अपना सामान जहाज़पर ले जानेकी आज्ञा दी और दास तथा दासियाँ तक जंकपर चढ़ गयीं। वृहस्पतिवार होनेके कारण मैंने अगले दिन अर्थात् शुक्रवारको स्वयं चढ़नेका निश्चय कर लिया। ज़हीर-उद्दीन तथा सुंबुल भी राजदूत संबंधी सब सामान तथा पशु आदि लेकर सवार हो गये। शुक्रवारके दिन प्रातःकाल ही हलाल नामक अपने दास द्वारा अपने मिसरियेके संकीर्ण तथा कामचलाऊ भी न होनेकी बात सुन कर मैंने कप्तानसे जाकर सब कथा कही, परंतु उसने भी इससे अधिक उत्तम प्रबन्ध

करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट कर मुझको ककम अर्थात् सबसे छोटे जहाज़में एक अच्छा मिसरिया लेनेकी राय दी। उसकी नसीहत मुझको भी अच्छी लगी और मैंने अपने दासों तथा दासियोंको शुक्रवारकी नमाज़से पहले ही समस्त सामान सहित जंकसे उतर ककममें डेरा डालनेकी आज्ञा दे दी।

इस समुद्रमें कुछ ऐसा नियमसा है कि अस्र (अर्थात् तृतीय प्रहर) के पश्चात् लहरोंके आपसमें टकरानेके कारण कोई व्यक्ति सवार नहीं हो सकता। अतएव दौत्य-संबंधी उपहारवाले जंक तथा फ़न्दरीनामें ठहरनेका विचार करनेवाले एक अन्य जहाज़ और मेरे सामानवाले 'ककम' के अतिरिक्त सभी यहाँसे चल पड़े। शनिवारकी रात्रिको हम समुद्रतटपर ही रहे; न तो कोई व्यक्ति ककमसे उतर कर हमारे पास ही आसका और न हममेंसे कोई उसपर जाकर सवार हो सका। बिछौनेके अतिरिक्त मेरे पास रात्रिमें कोई अन्य सामान न था। प्रातःकाल जंक और ककम दोनों ही बन्दर स्थानसे बहुत दूरीपर जा पड़े थे, और फंदरीना जाकर ठहरनेवाला जंक तो लहरोंसे टकरा कर टूट भी गया। इस पर सवार कुछ व्यक्ति तो बच गये और कुछ डूब गये। इसी जहाज़में एक व्यापारीकी दासी भी रह गयी थी और जंकके पिछले भागकी लकड़ी पकड़े हुए अब तक जीवित थी। अत्यंत प्रेम होनेके कारण व्यापारीने दासीका जीवन बचानेवाले प्रत्येक पुरुषको दस दीनार देनेकी घोषणा कर दी। जहाज़के हुरमुज़-निवासी एक कर्मचारीने उसका उद्धार किया पर पारितोषिक लेना यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि मैंने यह कार्य ईश्वरकें नामपर किया है।

जिस जंकमें दौत्य-संबंधी समस्त उपहार लादे गये थे, उसके भी समुद्रकी लहरोंसे टकरा कर रात्रिमें चूर चूर हो जानेके कारण पोतके सभी यात्रियोंका प्राणान्त हो गया था। प्रातःकाल मैंने इन सबको तटपर पड़े देखा। ज़हीर-उद्दीनका सिर फट जानेके कारण भेजा बाहर निकला पड़ा था और मलिक सुंबुलके कानोंमें लोहेकी कीलें घुस कर आर-पार हो गयी थीं। जनाज़ेकी नमाज़ पढ़कर हमने उनको दफ़न कर दिया।

नंगे पाँव, धोती पहिने और सिरपर छोटीसी पगड़ी धारण किये कालीकटके राजा साहब भी वहाँ पधारे। राजा साहबके संमुख अग्नि जलती हुई आती थी और एक दास उनपर छत्रच्छाया किये हुए था। राजसैनिक जनताको पीट पीट कर समुद्रतटपर पड़ी हुई वस्तुओंको उठानेसे रोक रहे थे। मालाबार देशकी प्रथानुसार ऐसे समस्त पदार्थ राजकोषमें धर दिये जाते हैं। केवल कालीकटमें ही यह पुनः जहाज़वालोंको लौटा दिये जाते हैं। इसी कारण यह नगर अत्यंत समृद्धिशाली एवं जन-संख्यासे पूर्ण रहता है और जहाज़ भी यहाँ खूब आते-जाते रहते हैं।

जंककी यह दशा देख ककम चलानेवाले मल्लाह भी अपने बादबान उठाकर चल पड़े और दास-दासियों सहित मेरा समस्त सामान भी उन्हींके साथ चला गया; केवल मैं ही अकेला तटपर रह गया। मेरे पास एक मुक्त दास और था परन्तु अब वह भी मुझे छोड़कर कहीं चल दिया। मेरे पास योगीके दिये हुए दस दीनारों तथा बिछौनेके अति-रिक्त अब कुछ भी न था। लोगोंसे यह पता चलने पर कि यह ककम कोलम नामक बन्दरमें अवश्य ही ठहरेगा, मैंने

उस ओर स्थलकी ही राह यात्रा करनेकी ठान ली। नदी तथा स्थल दोनों ही ओरसे कोलम दस पड़ावकी दूरीपर है। इन दोनों पथोंमेंसे मैंने नहर-मार्ग द्वारा यात्रा करना ही निश्चित कर एक मुसलमान मज़दूर अपना बिछौना उठानेको रख लिया। नहर-मार्गके यात्री दिन भर यात्रा करनेके उपरान्त रात होने पर किसी निकटके गाँवमें जाकर विश्राम करते हैं। प्रातःकाल होते ही पुनः नावमें बैठकर यात्रा प्रारम्भ हो जाती है। मैंने भी इसी प्रकारसे यात्रा की। नावमें मेरे तथा मज़दूरके अतिरिक्त अन्य कोई मुसलमान न था। परन्तु पड़ावपर पहुँच कर हिन्दुओंके सहवासमें यह मदिरा-पान कर लिया करता था और मुझसे खूब झगड़ा-टण्टा किया करता था, इस कारण मेरा मन और भी अधिक खिन्न हो जाता था।

१६—कंजीगिरि और कोलम

पाँचवें दिन हम पर्वत-चोटीपर स्थित कंजीगिरि[1] नामक नगरमें पहुँचे। यहाँ यहूदी जातिके लोग भी रहते हैं। ये कोलमके राजाको राजस्व देते हैं और इनका अमीर भी पृथक् है। इस स्थानमें नहरके किनारे दारचीनी और बक़्म अर्थात् पतंगके वृक्ष अत्यन्त अधिकतासे होनेके कारण इन्हींकी लकड़ी जलानेके काममें आती है।

---

(१) कंजीगिरि—इसको वर्त्तमानकालमें कोडंगलौर कहते हैं। यह कोचीन राज्यमें है। ईसाई और यहूदी यहाँ अत्यंत प्राचीन कालसे रहते चले आये हैं। कहते हैं कि ईसाई ई० सन् ५२ में यहाँ आये थे। पुर्त्तगाल-निवासियोंके अत्याचारके कारण यहूदी ई० सन् १५०२ में यहाँसे निकल कर कोचीनमें जा बसे।

दसवें दिन हम कोलम[1] पहुँच गये। मालावारके समस्त नगरोंमें यह नगर अत्यन्त सुन्दर है। यहाँका बाज़ार भी बहुत अच्छा है। व्यापारियोंको यहाँ 'सूली' के नामसे पुकारते हैं। ये लोग अत्यन्त धनाढ्य होते हैं। इनमेंसे कोई कोई तो माल-से भरा हुआ पूराका पूरा जहाज़ व्यापारके लिए मोल लेकर घरमें डाल लेते हैं। मुसलमान व्यापारी भी यहाँ अधिक संख्यामें हैं। आवा नामक नगरका रहनेवाला अला-उद्दीन आवजी नामक व्यक्ति इनमें सबसे अधिक धनाढ्य है परन्तु वह राफ़ज़ी है (सुन्नी इस अपमान-सूचक शब्द द्वारा शिया लोगोंका सम्बोधन करते हैं)। उसके अनुयायी तथा अन्य साथी भी उसीका अनुसरण करते हैं। ये लोग तक्किया[2] नहीं करते।

नगरका क़ाज़ी क़ज़दैन नामक नगरका निवासी है। मुहम्मदशाह बन्दर भी मुसलमानोंमें एक बड़ा संभ्रान्त व्यक्ति समझा जाता है। उसका भ्राता तक़ी-उद्दीन भी उद्भट विद्वान् है। ख़्वाजा महज़व द्वारा निर्मित इस नगरकी जामे मसजिद भी अत्यन्त अद्भुत है।

---

(१) कोलम—यह नगर इस समय ट्रावणकोर राज्यमें है। प्राचीन कालमें यह नगर चीन और फ़ारसके साथ व्यापारके कारण अत्यंत प्रसिद्ध था। ई० सन् १५०० तक तो इस स्थानका व्यापार खूब चमकता रहा, पर इसके बाद दिनपर दिन बैठता ही गया।

(२) यह शिया धर्मका प्रधान अंग है। इसके अर्थ होते हैं बुद्धिमत्ता-पूर्वक सत्यको प्रकट न होने देना। सुन्नियों द्वारा पीड़ित किये जाने पर मुहम्मद साहबकी मृत्युके उपरान्त यह इसी प्रकार आचरण करते थे। महाभारतके द्रोण पर्वमें 'अश्वत्थामा हतः' कहकर युधिष्ठिरने भी कुछ ऐसा ही आचरण किया था।

चीनके निकटतर होनेके कारण वहाँके निवासी मालाबारके अन्य नगरोंकी अपेक्षा यहाँ अधिक संख्यामें आते हैं। मुसलमानोंका भी यहाँ बहुत आदर होता है। यहाँके राजाका नाम तिरवरी[1] है। वह भी हमारे सहधर्मियोंको सम्मानकी दृष्टिसे देखता है और दस्युओं तथा मिथ्यावादियोंसे बड़ी कठोरताका व्यवहार करता है।

मेरी आँखों देखी बात है कि ईराक़-निवासी एक धनुषधारी किसी अन्य व्यक्तिका वध कर 'आवजी' नामक एक बड़े धनाढ्य पुरुषके घरमें जा घुसा। मुसलमानोंने मृतकको दफ़न भी करना चाहा परन्तु राजाके प्रतिनिधिने निषेध कर कहा कि जबतक वधिक हमारे सुपुर्द न किया जायगा तबतक हम इसको गाड़नेकी आज्ञा न देंगे। अतएव मृतककी अरथी आवजीके द्वारपर रख दी गयी। उसमेंसे दुर्गन्धि निकलने पर आवजीने लाचार हो अपराधीको राजाके संमुख उपस्थित कर प्रार्थना की कि इसकी जान न लेकर मृतकके उत्तराधिकारियोंको धनसंपत्ति ही दे दी जाय। परन्तु राजकर्मचारी इस प्रार्थनाको न मान अपराधीका वध कर ही शांत हुए, और इसके पश्चात् जाकर कहीं मृतककी अन्तिम क्रिया हुई। कहा जाता है कि कोलमका नृपति अपने जामाताके साथ, जो किसी अन्य नृपतिका पुत्र था, नगरके बाहर उपवनोंके मध्यमें एक दिन सवार होकर जा रहा था कि जामाताने एक वृक्षके नीचेसे एक आम उठा लिया। राजाने अपने जामाताका यह कृत्य देख उसके शरीरके दो खण्ड करा राहके दोनों ओर एक एक आम्र-खण्डके साथ रखे जानेकी आज्ञा

(१) सम्भव है, यह तामिल-संस्कृत शब्द 'तिरु-पति' का विकृत रूप हो।

दी जिससे देखनेवालोंको शिक्षा मिले। कालीकटमें एक बार राजाके प्रतिनिधिके भतीजेने किसी मुसलमान व्यापारीकी तलवार बलपूर्वक अपहरण कर ली। व्यापारीके उसके विरुद्ध आरोप करने पर न्याय करनेकी प्रतिज्ञा कर पितृव्य महाशय द्वारपर ही बैठ गये। इतनेमें भतीजा भी तलवार बाँधे वहाँ आ पहुँचा। आते ही प्रश्न किये जाने पर उसने उत्तर दिया कि यह तलवार मैंने एक मुसलमानसे मोल ली है। प्रतिनिधि महाशयने यह सुनते ही पकड़ कर उसी तलवार द्वारा उसका सिर तनसे पृथक् करनेका आदेश दे दिया।

कोलममें मैं माननीय वृद्ध शैख़ शहाब-उद्दीन गाज़रौनी (जिनका मैं कालीकट-वर्णनके समय उल्लेख कर आया हूँ) के पुत्र शैख़ फ़ख़र-उद्दीनके मठमें ठहरा था। अपने ककम-का मुझे यहाँपर कुछ भी पता न चला। इतनेमें हमारे साथी चीन-सम्राट्के राजदूत भी अन्य जंक द्वारा कोलममें आ पहुँचे। इनका जहाज़ भी टूट गया था और चीन-निवासियोंने इनको पुनः वस्त्रादि दे स्वदेशकी ओर भेजा। इसके पश्चात् यह मुझे चीन देशमें भी पुनः मिले थे।

१७—हनौरको पुनः लौटना

मेरे मनमें अब कोलमसे पुनः दिल्ली लौट कर सम्राट्से सब वार्ता सुनानेका विचार उठ रहा था, परन्तु भय केवल इस बातका था कि यदि उसने मुझसे भेंट और उपहारसे पृथक् होनेका कारण पूछा तो मैं क्या उत्तर दूँगा। बारम्बार सोचनेके उपरांत मैं इसी अंतिम निश्चयपर पहुँचा कि ककमका पता लगने तक हनौरके सम्राट् जमाल-उद्दीनके ही आश्रयमें रहूँ। यह दृढ़ निश्चय कर मैं अब पुनः कालीकटको लौटा तो सम्राट्-

के बहुतसे जहाज़ वहाँ दिखाई दिये। इनमें पहरेदार सय्यद अबुल हसन उसकी ओरसे बहुतसा धन तथा संपत्ति लेकर 'हरमुज़' तथा 'क़तीफ़' नामक स्थानोंके अरबोंको भारतमें लानेके लिए जा रहा था। कारण यह था कि सम्राट् अरब देश-निवासियोंसे अत्यंत प्रेम करता था और उसकी यह इच्छा थी कि जितने अरब देश-निवासी यहाँ आ सकें, अच्छा है। अबुल हसनके पास जाने पर पता चला कि वह तो कालीकटमें ही सारी ग्रीष्म ऋतु बिता कर अरब जानेका विचार कर रहा है। जब उससे सम्राट्के पास लौट कर जाने अथवा न जानेके सम्बन्धमें मैंने मंत्रणा की तो उसने मुझसे दिल्ली न जानेके लिए ही कहा।

अंतमें मैं कालीकटसे जहाज़में सवार होकर चल दिया। यह इस ऋतुका सबसे अंतिम जहाज़ था। आधा दिन तो हम यात्रामें व्यतीत करते थे और शेष आधेमें लंगर डाले खड़े रहते थे। राहमें हमको डाकुओंकी चार नावें मिलीं। उनको देख कर हम भयभीत भी हुए, पर ईश्वरकी कृपासे उन्होंने हमको कुछ भी कष्ट न दिया और हम सकुशल हनौर पहुँच गये।

यहाँ आकर मैं सम्राट्की सेवामें प्रणाम करने उपस्थित हुआ और उसने मेरे पास कोई भृत्य न होनेके कारण मुझको एक आदमीके घरमें ठहरा कर कहला भेजा कि मैं भविष्यमें उसीके साथ नमाज़ पढ़ा करूँगा। अब मैं मसजिदमें ही बैठ कर कलाम-उल्लाह (कुरान शरीफ) का एक पाठ रोज़ समाप्त करने लगा। फिर कुछ दिनोंके अनंतर मैंने एक दिनमें दो बार संपूर्ण पाठ करना प्रारंभ कर दिया। एक तो प्रातःकालसे प्रारंभ होकर ज़ुहरके समय (तीसरे पहर) तक समाप्त हो जाता था और दूसरा ज़ुहरसे लेकर मग़रिब तक। तीन मास

पर्य्यंत यही क्रम रहा। इसके अतिरिक्त चालीस दिन पर्य्यंत मैंने एकांतवास भी किया।

सम्राट् तथा सन्दापुरके राजामें कुछ मतभेद और निजी झगड़ा होनेके कारण राजाके पुत्रने सम्राट्को लिख भेजा था कि सन्दापुरकी विजय कर लेने पर उसकी भगिनीका विवाह सम्राट्के साथ कर दिया जायेगा और स्वयं वह (राज-पुत्र) भी मुसलमान मतकी दीक्षा ग्रहण कर लेगा। यह समाचार पाकर सम्राट् जमालउद्दीनने भी बावन जहाज़ सुसज्जित कर संदापुरपर आक्रमण करनेकी आयोजना कर दी। तैयारी हो जाने पर मेरे मनमें भी इस (धर्मयुद्ध) के श्रेय तथा पुण्यमें भाग लेनेका विचार हुआ और मैंने कलाम-उल्लाह जो खोल कर देखा तो मेरी दृष्टि सर्वप्रथम "युज़करो फ़ीहा इस मुल्लाहे कसीरन वलयन सुरोनल्लाहो मई यन सुरहू" इस आयत[1] पर पड़ी और मुझको भावी विजयका आभास होने लगा। असकी नमाज़के समय सम्राट्के मसजिदमें आने पर मैंने जब अपना विचार प्रकट किया तो उसने मुझको इस धर्म-युद्धका प्रधान (अमीर) नियत कर दिया। अब मैंने उससे कलाम-उल्लाहमें शकुन निकलनेकी बात कही। सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और पहले युद्ध-भूमिमें न जानेका निश्चय कर लेने पर भी अब तुरन्त वहाँ जानेको उतारू होगया।

हम दोनों एक ही जहाज़पर शनिवारको सवार हो मंगल-वारको संदापुर जा पहुँचे। खाड़ीमें प्रवेश करते ही सूचना मिली कि वहाँके निवासी भी युद्ध करनेको उद्यत हैं और

(१) इस आयतका अर्थ यह है कि परमेश्वरके नामका बहुत अधिकतासे वर्णन किया जाता है। जो उसकी सहायता करते हैं ईश्वर उनकी सहायता करता है।

मुञ्जनीक़ लगाये हुए बैठे हैं। रात्रिभर तो हमने विश्राम किया। प्रातःकाल होते ही नौबत तथा नगाड़ोंके शब्दसे युद्ध प्रारम्भ होगया। शत्रुने हमारे जहाज़ोंपर मुंजनीक़ द्वारा पत्थर फेंकना प्रारम्भ कर दिया और एक पत्थर सम्राट्के निकट खड़े हुए पुरुषको भी लगा। हमारी ओरके पुरुष भी ढाल-तलवारसे सुसज्जित हो जहाज़ोंपरसे जलमें कूद पड़े। सम्राट् 'अकीरी' तथा मैंने उनका अनुकरण किया।

हमारे पास दो जहाज़ ऐसे थे जिनके पिछले भाग खुले हुए थे। इनमें घोड़े बँधे हुए थे। इनकी बनावट इस प्रकारकी थी कि सैनिक भीतर ही भीतर इनपर सवार होकर कवच-धारी अश्वारोहीके रूपमें ही बाहर निकलता था। हमने इस रीतिसे भी कार्य किया।

ईश्वरकी सहायता और अनुग्रहसे मुसलमानोंने तलवार हाथमें लेकर नगर-प्रवेश किया। कुछ हिन्दू भय खाकर राज-प्रासादमें जा छिपे। हमने अग्निवर्षा द्वारा उनको बंदी बना लिया, परंतु सम्राट्ने उनको अभय-वचन देकर उनकी स्त्रियाँ तक उनको लौटा दीं। इसके अतिरिक्त इन पुरुषोंको, जिनकी संख्या लगभग दस सहस्र रही होगी, रहनेके लिए नगरसे बाहर स्थान भी दिया गया। सम्राट् स्वयं राजप्रासादमें जा रहा और आसपासके घर उसने अपने भृत्यों तथा अमीरोंको प्रदान कर दिये। मुझको भी 'ममक़ी' नामक एक दासी दी गयी। इसका स्वामी धन देकर इसको लौटाना चाहता था परंतु मैंने अस्वीकार कर दिया और इसका धर्म-परिवर्तन कर 'मुबारका' नाम रखा। इसके अतिरिक्त सम्राट्ने राजाके वस्त्रा-गारसे प्राप्त एक मिश्र देशीय चुग़ा[1] भी मुझको प्रदान किया।

(१) चुग़ा--बोलचालमें इसको लबादा कहते हैं।

संदापुर[1] में मैंने सम्राट्के पास तेरह जमादीउल-अव्वलसे लेकर अर्ध शाअवान (मास) पर्य्यंत (अर्थात् लगभग तीन मास) रह कर पुनः यात्रा करनेकी आज्ञा चाही और सम्राट्ने पुनः वहाँ आनेकी प्रतिज्ञा ले मुझको विदा किया।

१८—शालियात

मैं पुनः जहाज़पर चढ़ हनौर, फाकनोर, मंजौर, हेली, जुरफ़त्तन, दहफ़त्तन बुद-फ़त्तन, फ़न्दरीना और कालीकट होता हुआ शालियात[2] नामक सुंदर नगरमें जा पहुँचा। इसी नगरमें शालियात नामक सुन्दर वस्त्र बनाया जाता है। बहुत दिनों तक इस नगरमें रहनेके पश्चात् जब मैं कालीकट लौटा तो ककम नामक जहाज़पर बैठनेवाले मेरे दो दास मुझको मिल गये। उनके द्वारा मुझे पता चला कि मेरी गर्भवती दासीका, जिसकी मुझे बड़ी चिन्ता रहती थी, प्राणान्त हो गया और जावाके राजाने मेरी समस्त धन-संपत्ति तथा दास दासी तक छीन ली और मेरे कुछ साथी जावा, चीन तथा बंगालमें बुरी दशामें पड़े हुए हैं। संपूर्ण सामाचार मिल जाने पर मैं प्रथम तो हनौर गया और वहाँसे चलकर फिर मुहर्रम मासके अंतमें संदापुर आया। रबी-उस्सानीकी दूसरी तिथि तक वहाँ ही रहा। इतनेमें वहाँका वह पराजित राजा भी, जिससे हमने यह नगर छीना था, कहींसे उधर आ

(१) जजीरा नामक द्वीपके निकट कोलावा ज़िलेमें 'दण्डापुर' के नगरसे तो कहीं अभिप्राय नहीं है? इस स्थानपर शिवाजी और सिद्दियों-में खूब युद्ध हुआ था।

(२) शालियात—यह स्थान कालीकटके निकट बसा हुआ है और अब 'शालिया' कहलाता है।

निकला और वहाँके समस्त हिंदू उसके चारो ओर आकर एकत्र हो गये। इस समय (सम्राट्) सुलतानकी सेनाकी गाँवों- में बुरी दशा हो रही थी। हिन्दुओंने भी अच्छा अवसर देख सम्राट्को चारों ओरसे ऐसा घेरा कि आने-जानेका मार्ग तक बन्द हो गया। बड़ी कठिनतासे मैं किसी प्रकार वहाँसे बाहर आया और कालीकट पहुँच कर मालद्वीपकी ओर चल दिया।

दसवाँ अध्याय

कर्नाटक

१—मअबरकी यात्रा

मालद्वीपसे इब्राहीमके जहाज़में बैठ, सरनद्वीप (लंका) होते हुए हम मअबर[1] की ओर चल दिये। परन्तु वायुकी गति तीव्र होनेके कारण जहाज़में जल आने लगा। जानकार रईस (कप्तान) की अनुपस्थितिमें हम पत्थरोंमें जा

(1) मअबर—तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दीके अरब तथा ईरान- निवासी आधुनिक कारोमंडल तट तथा कर्नाटकको मअबर कहा करते थे। इस समयसे प्रथम इस नामके अस्तित्वका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

अबुल फ़िदा नामक लेखकके अनुसार कन्याकुमारी अंतरीपसे लेकर नीलौर पर्य्यंत लगभग सौ कोस लंबा देश इस नामसे पुकारा जाता था। प्राचीनकालमें यहाँ 'पांड्य' नामक हिंदू राजा राज्य करते थे, और 'मदुरा' इनकी राजधानी थी। अलाउद्दीन खिलजीके दास मलिक काफूर हजार दीनारीने सर्व प्रथम इस देशको अपने अधीन कर सहस्त्रों वर्षके प्राचीन 'पांड्य' नामक राजवंशका अंत कर दिया।

पहुँचे और जहाज़ उनसे टकरा कर चकनाचूर हो जानेको ही था कि हम पुनः एक छोटी सी खाड़ीमें आगये। जहाज़ भी अब धीरे धीरे बैठने लगा, और हमको साक्षात् मूर्त्तिमान् मृत्यु दृष्टिगोचर होने लगी। यात्री अपने पासके समस्त पदार्थ फेंक कर वसीयत (अंतिम आदेश) करने लगे। हमने जहाज़के मस्तूल तक काट कर फेंक दिये और जहाज़वाले दो मील दूर तटपर पहुँचनेके लिए काष्ठकी एक नौका निर्माण करने लग गये। मुझको भी नावमें उतरते देख साथकी दोनों दासियाँ चिल्ला कर कहने लगीं कि तुम हमको छोड़ कर कहाँ जाते हो। इसपर नौकावालोंको केवल दासियोंके साथ ही तटपर जानेको कह मैं स्वयं जहाज़में ही ठहर गया। मेरा ऐसा निश्चय सुन एक दासीने कहा कि मैं खूब तैरना जानती हूँ, नाव परसे एक रस्सी लटका देनेसे मैं उसीके सहारे तैरती चली जाऊँगी। मुहम्मद बिन फ़रहान, मिश्र देश-निवासी एक पुरुष और एक दासी यह तीन व्यक्ति तो नावमें बैठ गये और दूसरी दासी जलमें तैर कर आगे बढ़ने लगी। जहाज़-वाले भी अब नावकी रस्सियाँ बाँध तैरने लगे। मुक्ता, अंबर आदि अपने समस्त बहुमूल्य पदार्थोंको तटकी ओर इसी नावमें भेज मैं स्वयं जहाज़में ही बैठ रहा। अनुकूल वायु होनेके कारण जहाज़का स्वामी तथा नाववाले दोनों ही कुशलपूर्वक स्थलपर पहुँच गये।

इधर जहाज़वालोंके नाव निर्माण करते करते ही संध्या हो गयी और जहाज़में जल बढ़ने लगा। यह देख मैं पृष्ठ भागमें चला गया और प्रातःकाल पर्यंत वहीं रहा। दिन निकलने पर बहुत-से हिन्दू नाव लेकर आये और उन्हींकी सहायतासे हम किनारे तक पहुँचे। यहाँ आकर मैंने उनसे कहा कि मैं तुम्हारे सम्राट्-

का नातेदार हूँ। प्रजा होनेके कारण उन्होंने तुरंत ही इसकी सूचना सम्राट्को दे दी। वह यहाँसे दो दिनकी राहपर थे।

यहाँसे यह लोग हमको जंगलमें ले गये; और वहाँ जाकर सुंदर मछली तथा गुग्गुलके वृक्षका ख़रबूज़े कासा फल भोजनको दिया। इसके भीतर रुईके गालेके सदृश एक पदार्थ होता है जो शहदकी भाँति मधुर लगता है। शहद निकालकर इसका हलुआ बनाया जाता है जो 'तिल' कहलाता है और 'चीनी' के सदृश होता है।

तीन दिवस पर्य्यंत यहाँ ठहरनेके पश्चात् मअबरके सम्राट्-की ओरसे क़मर-उद्दीन नामक एक अमीर कुछ अश्वारोही तथा पैदल सैनिकोंके साथ दस घोड़े तथा एक डोला लेकर हमारे पास आया। जहाज़का स्वामी, मैं और मेरे अनुयायी तथा एक दासी तो सवार होकर चले और दूसरी दासी डोलेमें बैठा दी गयी। संध्या समय हम 'हरकातू' के दुर्गमें जा पहुँचे और रात भर वहीं विश्राम किया। अपने साथियों तथा दास-दासियोंको इसी स्थानपर छोड़ कर मैं सम्राट्के कैम्पमें अगले ही दिन पहुँच गया।

२—मअबरके सम्राट्

यहाँके सम्राट्का नाम ग़यास-उद्दीन दामग़ानी है। यह सर्वप्रथम सम्राट् तुग़लक़के सेवक मलिक मंजीर-बिन-अबी-उल रजाके अश्वारोहियोंमें नौकर था और तत्पश्चात् सम्राट् जलालउद्दीनके पुत्र अमीर हाजीका भृत्य रहनेकें अनंतर सम्राट् बन बैठा। उस समय इसका नाम सराज-उद्दीन था परन्तु सम्राट् होने पर इसने सम्राट् गयास-उद्दीनकी उपाधि धारण कर ली।

मअवर देश प्रथम दिल्ली-सम्राट्‌के ही अधीन था। परन्तु मेरे श्वशुर जलाल-उद्दीन अहसन शाहने सम्राट्‌से विद्रोह कर पाँच वर्ष तक शांतिपूर्वक यहाँका शासन किया। इसके पश्चात् उनका वध कर दिया गया और एक अमीर अलाउद्दीन ऊँजी यहाँका सम्राट् हो गया। इसने एक वर्ष पर्य्यंत राज्य करनेके अनन्तर किसी हिन्दू राजापर आक्रमण कर खूब धनसंपत्ति प्राप्त की। प्रथम विजयके अनंतर द्वितीय वर्ष भी इसने पुनः आक्रमण कर काफिरोंका वध कर उनको पराजित किया था। परन्तु युद्धमें एक दिन जल पीनेके लिए शिरसे शिरस्त्राण उठाते समय वाण लग जानेके कारण इसका प्राणान्त हो गया। तदनंतर इसका जामाता कुतुब-उद्दीन सम्राट् बनाया गया, परन्तु अच्छा स्वभाव न होनेके कारण चालीस दिन पश्चात् ही इसका वध कर ग़यास-उद्दीन सम्राट् बनाया गया। इसने सम्राट् जलाल-उद्दीनकी पुत्री—दिल्लीमें परिणीता मेरी स्त्रीकी भगिनी—के साथ विवाह कर लिया।

मेरे कैम्प पहुँचने पर सम्राट लकड़ीके बुर्जमें आसीन था परन्तु उसने स्वागत करनेके लिए एक हाजिब मेरे पास भेजा। प्रथानुसार सम्राट्‌के संमुख कोई व्यक्ति बिना मोज़े धारण किये नहीं जा सकता। मेरे पास उस समय मोज़े न होनेके कारण, बहुतसे मुसलमानोंके वहाँ एकत्र होते हुए भी एक हिन्दूने अपने मोज़े मुझे दे दिये। इस प्रेमके बर्त्तावसे मुझको अत्यंत आश्चर्य हुआ।

इस प्रकार सुसज्जित हो सम्राट्‌के संमुख उपस्थित होने पर उसने मुझको बैठनेका आदेश दे क़ाज़ी हाजी सदर उज्ज़मां बहर-उद्दीनको बुला उनके निकट ही विश्राम करनेके लिए मुझको तीन डेरे दिये, और फर्श तथा भोजन अर्थात्

चावल और मांस भी भिजवा दिया। हमारे देशकी भाँति यहाँपर भी भोजनके पश्चात् दूधकी लस्सी पीनेकी प्रथा है।

इसके अनंतर मैंने सम्राट्के निकट जा उसको मालद्वीप-पर सेना भेजनेके लिए उद्यत किया, और ऐसा करनेका दृढ़ निश्चय हो जाने पर उसने जहाज़ ठीक कर वहाँकी सम्राज्ञीके लिए उपहार तथा अमीरोंके लिए ख़िलअतें बनवा साम्राज्ञी-को भगिनीके साथ अपना विवाह करनेके लिए मुझको वकील तक नियत कर दिया। युद्ध सामग्रीके अतिरिक्त सम्राट्ने द्वीपके दीन-दुखियोंके लिए भी तीन जहाज़ भर कर 'दान' भिजवानेको आज्ञा दे मुझसे पाँच दिन बाद आनेको कहा।

परन्तु अमीर-उल-बहर (नावध्यक्ष = सामुद्रिक सेनापति) ख़्वाजा सर मलकके तीन मास पर्य्यंत मालद्वीपकी ओर यात्रा करना असंभव बताने पर उसने (सम्राट्ने) मुझको पट्टनकी ओर जानेका आदेश दे कहा कि अवधि बीत जानेके पश्चात् तू राजधानी 'मतरा' (मदुरा) लौट कर पुनः यात्राको चला जाना।

सम्राट्के आदेशानुसार द्वीप-यात्रा स्थगित कर मैं कुछ काल देशमें ही ठहरा रहा और इस बीचमें मेरे साथी तथा दासियाँ भी मुझसे आ मिलीं।

जिस भागमें होकर सम्राट्ने हमारी यात्रा निर्धारित की थी वहाँ नितान्त वन ही वन था, और बाँसके वृक्ष इतनी अधिकतासे थे कि पुरुष पैदल यात्रा भी नहीं कर सकता था। वन काटनेके लिए प्रत्येक सैनिकके पास सम्राट्के आदेशसे एक एक कुल्हाड़ा रहता था। किसी स्थानपर पहुँचते हो समस्त सैनिक सवार होकर बनमें घुस, चाश्त (प्रातःकालीन १० बजेकी नमाज) के समयसे लेकर ज़वाल (सूर्यास्त)

के समय तक वृक्ष ही काटा करते थे। इसके पश्चात् एक दल भोजन बनानेमें जुट जाता था; और तदुपरांत पुनः संध्या समय तक वृक्ष काटे जाते थे।

किसी हिन्दूके वहाँपर देख पड़ने पर, दोनों ओरसे नुकीली बनी हुई लकड़ी उसके कंधेपर लाद, तुरंत ही स्त्री-पुत्रादिके साथ कैम्प भेज दिया जाता था। वहाँ पहुँचने पर इनसे कैम्पके चारों ओर 'कठघर' नामकी लकड़ीकी दीवार बनवायी जाती थी जिसमें चार द्वार होते थे। सम्राट्का डेरा इसी कठघरके भीतर लगता था और उसके चारों ओर इसी प्रकारका एक अन्य कठघर बनाया जाता था। कठघरके बाहर पुरुषकी आधी ऊँचाईके बराबर चबूतरे बनाकर रात्रिको अग्नि प्रज्वलित की जाती थी और समस्त पदाति तथा दासों-को जागरण करना पड़ता था। रात्रिमें हिन्दुओंके छापा मारने पर प्रत्येक पुरुष अपने हाथकी बाँसकी छड़ी प्रज्वलित कर लेता था जिससे ऐसी प्रचंड अग्नि-शिखा निकलती थी कि मानों दिन ही निकल आया हो। इसीके प्रकाशमें अश्वा-रोही आक्रमण कर शत्रुको पकड़ चार भागोंमें विभक्त कर चारों द्वारोंपर भेज देते थे। वहाँपर इनके कंधोंपर लायी हुई उपर्युक्त नुकीली बनकी लकड़ी गाड़ कर प्रत्येक बंदीको उसमें पिरो देते थे और स्त्रीको केश द्वारा उसमें बाँध नन्हें नन्हें बालकोंका उन्हींकी गोदमें वध करनेके अनंतर सबको उसी दशामें छोड़ पुनः बन काटनेमें लग जाते थे। किसी अन्य सम्राट्-को ऐसा निष्ठुर एवं घृणित व्यवहार करते मैंने नहीं देखा। इन्हीं दुराचारोंके कारण इस सम्राट्की शीघ्र मृत्यु भी हो गयी।

एक दिनकी बात है कि मैं सम्राट्के एक ओर बैठा हुआ था और क़ाज़ी दूसरी ओर; हम सब भोजन कर रहे थे कि

एक काफ़िर (हिंदू) स्त्री-पुत्र सहित बाँध कर लाया गया। पुत्रकी अवस्था सात वर्षसे अधिक न होगी। सम्राट्ने स्त्री-पुत्र सहित बन्दीका सिर काटनेकी आज्ञा दे दी। आदेश होते ही उनकी गर्दनें मार दी गयीं परंतु मैंने अपना मुख उधरसे मोड़ लिया। जब उठकर उधर देखा तो तीनों सिर धूलमें पड़े हुए थे। एक अन्य दिवसकी बात है कि मैं सम्राट्के पास बैठा हुआ था कि एक काफ़िर वहाँ लाया गया। सम्राट्ने उससे जो कहा वह तो मैं न समझ सका परंतु वधिक उसपर आघात करनेके लिए मियानसे तलवार निकालने लगे। यह देख मैं शीघ्रतासे उठ बैठा और सम्राट्के प्रश्न करने पर यह उत्तर दे चला आया कि असकी नमाज़ पढ़ने जाता हूँ। परंतु मेरा यथार्थ आशय समझ कर वह हँस पड़ा। उसने इस पुरुषके हाथपाँव काटनेकी आज्ञा दी थी। लौटने पर मैंने उसको धूलमें लोटते देखा।

सम्राट्के पड़ोसमें ही वल्लाल देव[1] नामक एक बड़े समृद्धिशाली राजाका राज्य था। एक लाखके लगभग इसका सैन्यदल था जिसमें बीस सहस्र मुसलमान भी सम्मिलित थे परंतु इनमें चोर-डाकू तथा भागे हुए दासोंकी ही संख्या अधिक थी।

इस राजाने मअबरपर आक्रमण किया। सम्राट्के पास केवल छः सहस्र सेना थी और उसमें भी आधी संख्या निरर्थक एवं सामग्रीरहित पुरुषोंकी थी। कुवान नामक नगरके बाहर सामना होने पर मअबर देशीय समस्त सैनिक पराजित होकर राजधानी मतरा (मदुरा) की

(१) बल्लालदेव—हयशाल वंशीय नृपति बल्लालदेव ई० सन् १३४७ में द्वार-समुद्रके शासक थे।

ओर भाग निकले। उधर राजाने कुवान नगरका घेरा डाल दिया। यह नगर भी अत्यंत दृढ़ बना हुआ था। दस मास पर्यंत घेरा पड़ा रहा। गढ़वालोंके पास केवल चौदह दिनकी सामग्री शेष रह गयी। राजाने कहला भेजा कि गढ़ छोड़ देने पर अब भी तुमको कोई भय नहीं है। परंतु उसने खाली करनेसे पूर्व सुलतानकी आज्ञा चाही। राजाने यह बात मान कर उसको आज्ञा प्राप्त करनेके लिए चौदह दिनका समय दिया।

राजाका पत्र सुलतान गयास-उद्दीनने शुक्रवारके दिन सब लोगोंको सुनाया। सुनतेही उपस्थित जनताने अपना जीवन ईश्वर-पथपर समर्पण कर कहा कि राजा उस नगरको जीतकर हमारे नगरपर आक्रमण करेगा, अतएव पकड़े जानेसे ता तलवारकी ही छायामें मरना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। इतना कह सबने एक दूसरेसे मैदान छोड़ न भागनेकी प्रतिज्ञा की। और अगले ही दिन घोड़ोंके गलेमें साफ़े बाँध अर्थात् यह घोषित कर कि मृत्यु पानेके दृढ़ निश्चयसे जा रहे हैं, वहाँसे चल दिये। तीन सौके लगभग अत्यंत साहसी और शूरवीर योद्धा सबसे आगे थे। सैफ-उद्दीन नामक संयमशील वीर विद्वान् दाहिनी ओर, मलिक मुहम्मद सिलहदार बायीं ओर और सम्राट् मध्यमें था। तीन सहस्र सैनिक इसके आगे थे और शेष उसके पीछे असद-उद्दीन क़ैखुसरोकी अध्यक्षतामें थे। ज़वाल (अर्थात् सूर्यास्तके समय) यह यात्रा प्रारंभ की गयी। शत्रु भी नितान्त बेख़बर थे। उनके घोड़े तक घासकें मैदानोंमें चर रहे थे। असद-उद्दीनके आक्रमण करने पर राजा चोरोंके भ्रमसे तुरंत ही सामना करने बाहर चला आया। इतनेमें ग़यास-उद्दीन भी आगये और

अस्सी वर्षके वृद्ध राजाने बुरी तरह पराजित हो सवार होकर भागना भी चाहा। परंतु ग़यास उद्दीनके भतीजे नासिर-उद्दीन-ने उसको पकड़ लिया और अनजानमें उसका शिरश्छेद करनेको ही था कि दासने प्रार्थना कर निवेदन कर दिया कि यही राजा हैं। इसपर राजा वन्दी बनाकर सम्राट्के संमुख उपस्थित किया गया। सुलताननें प्रकाश्य रूपमें उसका आदर-सत्कार भी किया और उसके छोड़नेकी प्रतिज्ञा कर हाथी घोड़े तथा बहुत धनसंपत्ति भी वसूल की। परंतु राजा-के पास कोई अन्य पदार्थ न रहने पर भूसा भरवा कर उसकी खाल 'मदुरा' के प्राचीरपर लटका दी गयी। मैंने स्वयं उसको वहाँ इस प्रकारसे लटकते देखा था।

३—पत्तन

हाँ, तो मैं पुनः अपनी वास्तविक कथापर आता हूँ। कैम्पसे चलकर मैं पत्तन[1] नामक एक विस्तृत नगरमें पहुँचा। यहाँका वन्दर-स्थान भी अत्यन्त ही आश्चर्यकारक है। यहाँ पर अत्यन्त स्थूल लकड़ियोंका ऊपरसे ढका हुआ सीढ़ी-दार एक महान् बुर्ज बना हुआ है। वन्दरमें जहाज़ आने पर इसीके निकट खड़ा किया जाता है और जहाज़वाले इसपर चढ़कर शत्रुसे निर्भय हो जाते हैं। पाषाणकी एक मसजिद भी यहाँ बनी हुई है जिसमें अंगूर तथा अनारोंकी बहुतायत है। यहाँ शैख़ सालह मुहम्मद नैशापुरीसे भी मेरी भेंट हुई। यह महाशय साधुओंके उस अवधूत पंथमें हैं जो अपने केशों-

(१) पत्तन--पट्टन अथवा कावेरी पट्टन—कावेरी नदीके मुखपर मध्य युगमें एक बड़ा बन्दर-स्थान था। कहा जाता है कि यह चौदहवीं शताब्दीमें समुद्रकी भेंट हो गया।

को जंघा पर्य्यन्त बढ़ा लेते हैं। इनके पास सात लोमड़ियाँ भी पली हुई थीं जो साधुओंकेही पास बैठती थीं और उन्हींके साथ भोजन करती थीं। बीस अन्य साधु भी इन्हींके साथ रहा करते थे। उनमेंसे एकके पास ऐसी हिरनी थी जो सिंहके सम्मुख खड़ी हो जाती थी और वह कुछ न करता था।

इस नगरमें मैंने कुछ दिन विश्राम किया। सुलतान ग़यास्सउद्दीनकी भोग-शक्ति बढ़ानेके लिए किसी योगीने गोलियाँ बना दी थीं। कहा जाता है कि इनमें लौह भी मिला हुआ था। मात्रासे अधिक खा जानेके कारण सम्राट् रोगी हो पत्तनमें आगया। मैं भी उससे भेंट करने गया और कुछ उपहार उसकी सेवामें उपस्थित किये। उसने उन्हें स्वीकार कर उनका मूल्य भी मुझको देना चाहा परन्तु मैंने कुछ न लिया। अपने इस कृत्यका मुझको पीछे बहुत ही पश्चात्ताप हुआ क्योंकि सम्राट्का तो देहान्त हो गया और मुझको कुछ भी लाभ न हुआ।

पत्तन आने पर सम्राट्ने अमीर उलबहर (नौ-सेनाध्यक्ष) ख़्वाजा सरूरको बुलाकर यह आदेश कर दिया था कि मालद्वीप जानेवाले जहाज़ोंसे कोई अन्य कार्य न लिया जाय।

४—मतरा (मदुरा)

पंद्रह दिन पत्तनमें ठहर सम्राट् अपनी राजधानी 'मतरा'[1] की ओर चल दिया। उसके जानेके बाद मैंने भी

(१) मतरा—मदुरा नामक नगर अब भी खूब बड़ा है। प्राचीन कालमें यह पांड्य राजाओंकी राजधानी था जो ई० पू० ५०० से लेकर १३२४ ई० पर्यंत—मलिक काफूरके विजयकाल तक—यहां राज्य करते रहे। इसके पश्चात् इस देशमें दिल्लीके सम्राट्की ओरसे शासक नियत किये

पंद्रह दिन और ठहर कर राजधानीकी ही ओर प्रस्थान कर दिया। यह नगर अत्यंत विस्तृत है। यहाँके हाट-बाट भी अत्यंत विशाल हैं। मेरे श्वशुर सय्यद जलाल-उद्दीन अहसन शाहने इस नगरको सर्वप्रथम राजधानी बना, दिल्लीके समान इसकी कीर्तिका विस्तार करनेके लिए, यहाँ सुन्दर सुन्दर गृह निर्माण कराये थे।

मेरे पहुँचनेके समय नगरमें महामारी फैल रही थी। रोगग्रस्त होने पर पुरुषकी दूसरे, तीसरे या अधिकसे अधिक चौथे दिन अवश्य ही मृत्यु हो जाती थी। इससे अधिक कोई भी जीवित न रह सकता था। नगरकी दशा ऐसी हो रही थी कि घरसे बाहर निकलते ही मुझको रोगी या कोई शव अवश्य ही दृष्टिगोचर होता था। मैंने एक भली-चंगी दासी मोल ली और दूसरे ही दिन उसका

जाने लगे परंतु १३३७ ई० के लगभग जलालुद्दीन अहसनशाह नामक गवर्नरके विद्रोह कर सम्राट् बन जाने पर दिल्ली-सम्राट् मुहम्मद तुग़लक़की दक्षिण देशकी चढ़ाई और महामारीके कारण लौटनेका वृत्त तो इतिहासोंमें मिलता है, परंतु उन सूबेदारोंका वर्णन किसी इतिहासकारने नहीं किया। बतूताके वर्णनसे ही इनके शासन-संबन्धी कुछ बातोंपर प्रकाश पड़ता है और वंशावलीके कुछ नाम मिले हैं।

नगरमें अब भी ८४८ फुट × ७४४ फुटका एक बड़ा भव्य प्राचीन मन्दिर तथा रक्त पाषाणकी दीवारसे घिरा हुआ बृहत् सरोवर बना है, जिसमें चारो कोणोंपर चार गुम्बद और मध्यमें एक मंदिर है। यहाँ वर्षमें एक बार दीपावली की जाती है और मूर्त्तियोंको सरोवरमें घुमाया जाता है। वर्तमान कालकी दर्शनीय वस्तुएँ बहुधा तीरुमल नायकके शासनकालमें (१६२३–१६५९) निर्माण की गयी थीं। प्राचीन कालमें यह नगर 'मलयकूट' नामक प्रान्तकी राजधानी था।

प्राणान्त हो गया। एक दिन एक स्त्री सात वर्षके बालकके साथ मेरे पास आयी। इसका पति सम्राट् अहसन शाहका मंत्री था। बालक देखनेमें तेज़ मालूम होता था। दोनों माँ-बेटे उस दिन पूर्ण रूपसे स्वस्थ थे। निर्धनताके कारण मैंने उनको कुछ दान भी दिया। अगले दिन वही स्त्री अपने पुत्रका कफ़न माँगने आयी तो मुझे पता चला कि उसका देहांत हो गया।

मेरी आँखों देखी बात है कि राजप्रासादमें सम्राट्के अतिरिक्त अन्य पुरुषोंके भोजनार्थ चावल कूटनेवाली सैकड़ों स्त्रियाँ प्रतिदिन कराल कालके गालमें जा रही थीं। रोगग्रस्त होते ही धूपमें शयन करने पर, इन स्त्रियोंका प्राणान्त हो जाता था।

मदुरामें प्रवेश करते समय सम्राट्की स्त्री, पुत्र तथा माता भी इसी रोगसे ग्रस्त होनेके कारण वह नगरमें केवल तीन दिन ही रह कर नगरसे बाहर तीन मीलकी दूरीपर एक नहरके किनारे, जहाँ एक हिंदू देवमंदिर भी था, चला गया था। बृहस्पतिवारको वहाँ पहुँचने पर मुझको क़ाज़ीके निकट डेरेमें रहनेका आदेश हुआ। उस समय लोग भागे जा रहे थे। कोई कहता था कि सम्राट् मर गया और कोई कहता था कि उसके पुत्रका शरीरपात हो गया। अन्तमें सम्राट्के पुत्रकी मृत्युका ही वृत्त ठीक निकला। तत्पश्चात् बृहस्पतिवारको उसकी माता तथा तृतीय बृहस्पतिवारको स्वयं उसका शरीरपात हो गया। गड़बड़ हो जानेके भयसे मैं इस समाचारके पाते ही नगरसे बाहर चल दिया, और वहाँ सम्राट्का भतीजा नासिर-उद्दीन नगरसे कैम्पकी ओर आता हुआ मुझे राहमें मिला। देखकर इसने मुझसे भी साथ

चलनेको कहा पर मैंने अस्वीकार कर दिया। उत्तर सुन कर इसने सब बात अपने मनमें ही रख ली।

सर्वप्रथम नासिर-उद्दीन दिल्लीमें सम्राट्का सेवक था, पितृव्यके विद्रोह कर मअबर देशका सम्राट् बन जाने पर यह भी साधुओंके वेशमें वहांसे भाग निकला। पर इसके भाग्यमें तो सम्राट् होना लिखा था, अतएव गयास-उद्दीनने भी कोई पुत्र न होनेके कारण इसीको अपना युवराज नियत कर दिया और सुलतानकी मृत्युके उपरांत इसकी राजभक्तिकी शपथ ली गयी। उस शुभ अवसरपर कवियोंको प्रशंसात्मक कविताएँ पढ़नेके कारण खूब पारितोषिक भी दिये गये। सर्वप्रथम क़ाज़ी सद्र उज़्ज़माँको स्वागतात्मक कविता पढ़नेके कारण पाँच सौ दीनार तथा एक ख़िलअत प्रदान की गयी। तत्पश्चात् 'क़ाज़ी' कहलाने-वाले मंत्री महोदयको दो सहस्र तथा मुझको तीन सौ दीनार और एक खिलअत प्रदान की गयी। इसके अतिरिक्त दीन-दुखियों तथा साधु-संतोंको भी बहुत सा दान दिया गया और ख़तीबके खुतबा उच्चारण करते ही उनपरसे थालों भरे दीनार तथा दिरहम निछावर किये गये।

नवीन सम्राट्ने सुलतान ग़यास-उद्दीनकी क़ब्र पर प्रत्येक दिन कलामे मजीद (कुरान) समाप्त करनेवाले क़ारी (अर्थात् उच्चस्वरसे पाठ करनेवाले) नियत किये। पाठ समाप्त होने पर मृतककी आत्माकी शान्तिके लिए प्रार्थनाएँ की जाती थीं। और तत्पश्चात् समस्त उपस्थित जनताके लिए भोजन आता था। भोजनके बाद प्रत्येक पुरुषको मान-मर्य्यादानुसार दिरहम दिये जाते थे। यह क्रम चालीस दिन पर्य्यंत रहा और

इसके पश्चात् प्रत्येक वर्ष मृतककी वर्षीपर मृत्यु-दिवस की तरह समस्त कृत्य किये जाते थे।

नासिर-उद्दीनने सम्राट् होते ही सर्वप्रथम अपने पितृव्यके मंत्रीको पदसे हटा; धनसंपत्ति ले बदरुद्दीन नामक उस व्यक्तिको अपना मंत्री नियत किया जिसको उसके पितृव्यने हमारे स्वागतार्थ पत्तनमें भेजा था, परंतु इस पुरुषका शीघ्रही प्राणान्त हो जानेके कारण अमीरउल बहर (नौ-सेनाध्यक्ष) ख़्वाजा सरूर मंत्री बनाया गया। दिल्लीके साम्राज्यके मंत्रीकी भाँति इस देशका मंत्री भी सम्राट्की आज्ञासे 'ख़्वाजा-जहाँ' कहलाने लगा। इस प्रकारसे उसका संबोधन न करने पर लोगों-को सम्राट्के आदेशानुसार कुछ नियत जुर्माना देना पड़ता था।

इसके पश्चात् सम्राट्ने अपनी फूफीके पुत्रका, जिसके साथ सम्राट् ग़यासउद्दीनकी पुत्रीका विवाह हुआ था, वध करा विधवासे स्वयं अपना विवाह कर लिया। सम्राट्ने इसीपर संतोष न कर मलिक मसऊदका तो फूफीके पुत्रसे बन्दीगृहमें मिलनेकी सूचना मिलते ही और मलिक बहादुर नामक अत्यंत विद्वान् शूरवीर एवं दानशील पुरुषका अकारण वध करवा दिया।

सम्राट्ने अपने भूतपूर्व पितृव्यके आदेशानुसार मेरी माल-द्वीपकी यात्राके लिए जो जहाज़ नियत था उसे वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी, पर इसी बीचमें मुझपर भी महामारीका प्रकोप होगया। शय्यापर पड़ते ही मैंने भी समझ लिया कि दिन पूरे होगये, परंतु वह तो यह कहो कि ईश्वरने मेरे हृदयमें आध सेर इमली घोलकर पीनेकी इच्छा उत्पन्न कर दी थी जिसके तीन दिन पर्यंत दस्त आनेके पश्चात् मैं भला-चंगा होगया। नगर छोड़कर यात्रा करनेकी आज्ञा चाहने पर

सम्राट्ने मुझसे कहा कि मालद्वीपकी यात्रा करनेमें अब केवल एक मासका विलम्ब है अतएव तुमको यहीं ठहरना चाहिए जिससे मैं भी अखवन्दे आलम (दिल्ली-सम्राट्) की आज्ञाका पालन कर वह समस्त वस्तुएँ, जो उन्होंने तुमको दी थीं, पुनः तुम्हारे लिए इकट्ठी कर दूँ। परंतु इसको अस्वीकार करने पर उसने पत्तनके अधिकारियोंको आदेश कर दिया कि मुझको अपने इच्छित जहाज़में ही यात्रा करने दें। वहाँ आने पर मैंने देखा कि यमनके लिए आठ जहाज़ तैयार खड़े हैं। इनमेंसे एकपर बैठ मैं वहाँसे चल पड़ा।

राहमें चार जहाज़ोंका युद्धमें मुहँ मोड़ हम सकुशल कोलम पहुँच गये। रोगके चिन्ह अबतक देहमें अवशिष्ट होनेके कारण मैं यहाँ एक मासतक ठहरा रहा।

५—सामुद्रिक डाकुओं द्वारा लूटा जाना

यहाँसे एक जहाज़में बैठ कर मैं हनौरके सुलतान जमाल-उद्दीनकी ओर चल पड़ा। हमारा जहाज़ अभी हनौर तथा फ़ाकनौरके मध्यमें ही था कि हिन्दुओंने बारह युद्ध-पोतोंको लेकर हमपर आक्रमण किया। घोर युद्धके पश्चात् जाकर कहीं हम पराजित हुए। बस फिर क्या था, लूट प्रारम्भ होगयी। सीलान (लंका) के राजाके दिये हुए मोती, नीलम, वस्त्र तथा सिद्ध महात्माओंके प्रसाद, यहाँ तक कि आड़े समयके लिए सुरक्षित वस्तुओं तकको उन्होंने मेरे पास न छोड़ा; केवल पैजामा ही मेरे शरीरपर शेष रह गया। कहना वृथा है, जहाज़के समस्त यात्रियोंकी इसी प्रकार दुर्दशा कर डाकुओंने तटपर उतार दिया। मैं अब पुनः कालीकटमें आ एक मसजिदमें जा घुसा। समाचार पा एक धर्मशास्त्रीने कुछ वस्त्र,

काज़ी महोदयने एक साफा और एक अन्य व्यापारी महाशयने कुछ और कपड़े आदि मेरे लिए भेज दिये। इस प्रकार मेरा काम चलता हुआ।

यहाँ आने पर मुझे विदित हुआ कि मालद्वीपमें मंत्री जमाल-उद्दीनके मरने पर मंत्री अबदुल्लाने सम्राज्ञी ख़दीजाके साथ विवाह कर लिया है और मेरी गर्भवती भार्याके भी, जिसको मैं वहाँ छोड़ आया था, पुत्र उत्पन्न हुआ है। यह समाचार मिलते ही मेरे मनमें पुनः मालद्वीप जानेकी इच्छा उत्पन्न हुई, परन्तु इसके साथ ही अबदुल्लाकी शत्रुता भी स्मरण हो आयी। मैंने अन्तिम निश्चय करनेके लिए कुरान उठाकर देखा तो निम्नलिखित आयतपर दृष्टि पड़ी 'ततनज़्ज़लो अलेहमुल मलायकतह अनलात ख़ौफ़ वला तहज़नू' (जिसका अर्थ यह है कि उतारे जाते हैं उनपर फ़रिश्ते ताकि न डरो और न ख़ौफ़ करो।) इसको अच्छा शकुन समझ मैं मालद्वीपकी ओर पुनः चल दिया और पाँच दिन पर्य्यन्त वहाँ ठहरनेके पश्चात् अपनी भार्या तथा पुत्रसे विदा ले पुनः पोतारूढ़ हो वङ्गालकी ओर चल पड़ा और तेंतालीस दिन और यात्रा करनेके उपरान्त उस देशमें पहुँचा।

ग्यारहवाँ अध्याय

बंगाल

१—पदार्थोंकी सुलभता

बंगाल एक अत्यंत विस्तृत देश है। यहाँपर चावल ही अधिकतासे होता है। यहाँ जिस तरह कम मूल्यपर अधिक वस्तुएँ मिलती हैं, वैसा मैंने अन्य किसी देशमें नहीं

देखा। परंतु वस्तुओंका इतना स्वल्प मूल्य होने पर भी यह देश किसीको अच्छा नहीं लगता। खुरासान देशके रहनेवाले तो इसकी उपमा धन-धान्य तथा अमूल्य पदार्थ-पूरित नरकसे दिया करते हैं। इस देशमें एक रौप्य दीनारके पच्चीस रतल[1] चावल आते हैं। दिल्लीका रतल बीस पश्चिमीय रतलके बराबर माना जाता है और यहाँका एक रौप्य दीनार भी आठ दिरहमके बराबर होता है। यहाँके दिरहम हमारे देशके दिरहमके समान होते हैं, कोई भी भेद नहीं है। चावलोंका उपर्युक्त भाव हमारे देशमें पदार्पण करते समय था जो जनताकी सम्मतिमें महँगीका वर्ष था। दिल्लीमें हमारे घरके निकट रहनेवाले ईश्वर-द्रष्टा महात्मा मुहम्मद मसमूदी मग़रबी कहा करते थे कि वङ्गालमें मेरे, एक स्त्री, तथा दास, इन तीनोंके लिए केवल आठ दिरहमके खाद्य पदार्थ एक वर्षतकके लिए पर्य्याप्त होते थे। उस समय यहाँ (वङ्गालमें) दिल्लीकी तौलसे आठ दिरहममें अस्सी रतल सट्टी आती थी और कूटने पर इसमें पचास रतल अर्थात् दस कंत्तार (तौल विशेष) चावल बैठते थे।

पालतू पशुओंमें गाय तो यहाँ होती नहीं, परंतु दूध देनेवाली भैंस तीन रौप्य दीनारको मिल जाती है। अच्छी मुर्ग़ियाँ भी दिरहममें आठ मिल जाती हैं। कबूतरके बच्चे दिरहममें पंद्रह बिकते हैं, और मोटे मेंढ़ेका मूल्य दो दिरहम है। दिल्लीकी तौलसे निम्नलिखित वस्तुओंका भाव इस प्रकार है—

१ रतल खाँड़ . . .	४ दिरहम
१ ,, गुलाब . . .	८ ,,

(१) रतल—इस शब्दसे यहाँ स्वयं बतूताके कथनानुसार 'दिल्लीके मन' से ही तात्पर्य है। फ़रिश्ताके अनुसार यह बारह सेरका और मस।

१ रतल घी ४ दिरहम
१ ,, मोठा तेल २ ,,

इसके अतिरिक्त तीस गज़ लंबा सूती वस्त्र दो दीनारमें और सुन्दर दासी एक स्वर्ण दीनारमें (जो ढाई पश्चिमीय दीनारके बराबर होता है) मिल सकती है। मैंने स्वयं एक अत्यंत रूपवती 'आशोरा' नामक दासी इसी मूल्यमें तथा मेरे एक अनुयायीने छोटी अवस्थाका 'लूलू' नामक एक दास दो दीनारमें मोल लिया था।

२—सदगावाँ

इस प्रांतमें हमने सबसे प्रथम 'सदगावाँ'[1] नामक नगरमें प्रवेश किया। यह विशाल नगर गंगा और जोन[2] नामक नदि-

लक-उल-अवसारके लेखकके मतसे १४$\frac{1}{2}$ सेरका होता था। रौप्य दीनार-को आधुनिक रुपयेके बराबर ही समझना चाहिये। इस प्रकार गणना करने पर उस समय वहाँ १ रुपयेके ७$\frac{1}{2}$ मन चावल तो महँगीके दिनोंमें तथा १५ मन अनाज सस्तीके समय आते थे।

(१) सदगावाँ—यहांपर बतूताका तात्पर्य हुगली निकटस्थ एक बंदर-स्थानसे है। आईने-अकबरीके अनुसार 'सातगाँव' हुगलीसे एक कोसकी दूरीपर था। उस समय भी यह एक बंदर-स्थान समझा जाता था। सातगांवकी कमिश्नरी (सरकार) में हुगली, कलकत्ता, चौबीस परगना और बर्दवानके आधुनिक ज़िले सम्मिलित थे।

(२) जोन—यह गंगा नदीकी एक शाखा थी। आईने-अकबरीमें भी इसका उल्लेख है। इसीपर यह नगर बसा हुआ था। रेत इत्यादिसे नदीकी धारा बंद हो जाने पर नगर उजाड़ हो जानेके कारण पुर्तगाल देश-निवासियोंने ई० सन् १५३७ में हुगली नामक नगरकी वृद्धि करना प्रारंभ कर दिया।

योंके संगमपर समुद्र-तटपर बसा हुआ है। नगरस्थ बन्दर-स्थानके जहाज़ों द्वारा लोग लखनौती-निवासियोंका सामना करते हैं।

यहाँके सम्राट्का नाम तो वास्तवमें फ़ख़र-उद्दीन है परन्तु वह 'फ़ख़रा' के नामसे अधिक प्रसिद्ध है। यह बड़ा विद्वान् है। साधु-संतों तथा सूफ़ियों (दार्शनिकों) से बहुत प्रेम करता है। इस देशका सम्राट् तो वास्तवमें सर्वप्रथम, दिल्ली-सम्राट् मुअज़-उद्दीन[1] का पिता नासिर उद्दीन था (जिससे भेंट होने इत्यादिका वृत्तांत मैं पूर्व ही लिख आया हूँ)। इसकी मृत्युके उपरान्त इसका पुत्र शमस-उद्दीन, और तदनन्तर शहाब-उद्दीन सिंहासनासीन हुआ। अंतिम शाहने "भौंरा" नामसे प्रसिद्ध ग़यास-उद्दीन बहादुर द्वारा पराजित होने पर सम्राट् ग़यास-उद्दीन तुग़लकसे सहायता माँगी और उसने उसको बंदी कर लिया। सम्राट्की मृत्युके उपरान्त उसके उत्तराधिकारी सम्राट् मुहम्मद तुग़लकने उसको मुक्त कर दिया परन्तु प्रान्त विभाजित करते समय पुनः प्रतिज्ञा-भङ्ग करनेकें कारण सम्राट्ने क्रुद्ध हो आक्रमण कर उसका वध कर डाला। तत्पश्चात् उसका जामाता सम्राट्-पदपर प्रतिष्ठित हुआ परन्तु सेनाने उसका

(१) मध्यकालीन बंगालके इतिहासके सम्बन्धमें फ़रिश्ता, बदाउनी, अबुलफ़ज़ल तथा निज़ाम-उद्दीन अहमद बख़्शी आदि प्राचीन ऐतिहासिकोंमें बड़ा मतभेद है। परन्तु वर्तमान कालमें श्री टामस महोदय द्वारा इन प्राचीन सम्राटोंकी मुद्रा प्राप्त होनेके कारण इब्नबतूताके इस यात्रा-विवरणकी सहायतासे हमको अब बहुत कुछ जानकारी हो सकती है और बलवनके पुत्र सम्राट् नासिरउद्दीनके समयसे लेकर मुहम्मद तुग़लकके समय तकके बङ्गाल-शासकोंका यथेष्ट ज्ञान हमको हो सकता है। विस्तार-भयसे यहाँ हमने विवरण लिखना उचित नहीं समझा।

भी वध कर दिया। इसी समय अलीशाह नामक एक व्यक्ति लखनौती[1] का शासक बन बैठा। अपने स्वामी नासिर-उद्दीनके

(१) लखनौती— यह नगर बंगालके प्राचीन हिन्दू राजाओंकी राजधानी था। इसका प्राचीन नाम गौड़ कहा जाता है। परंतु कुछ लोग देशका नाम गौड़ बताते हैं और नगरका 'लखनौती'। नाम चाहे कुछ भी हो, पर इसकी प्राचीनतामें कुछ भी संदेह नहीं। मुसलमानोंने भी यहाँ रहकर तीन सौ वर्ष पर्य्यन्त शासन किया। परंतु नगरस्थ गंगा नदीकी शाखाका जल दूसरी ओर परिवर्त्तित होनेके कारण दलदल हो जानेसे यहाँकी जलवायु दिन प्रतिदिन बिगड़ती ही गयी। बंगालके सम्राटोंने अपनी राजधानी तक यहाँसे उठा ली और यह गवर्नरके रहनेका वासस्थान मात्र रह गया। ई० सन् १५३७ में शेरशाहने, तथा १५७५ ई० में अकबरके सेनाध्यक्ष मुनईम ख़ाँ ख़ानेख़ानाने इसपर आक्रमण किया। इतने पर भी नगर कुछ न कुछ शेष ही था, प्राचीन कीर्त्ति चली ही जाती थी। परंतु जब शाहशुजाने अपना निवास-स्थान यहाँसे उठाकर राजमहलमें स्थापित किया तो इस अंतिम और दारुण प्रहारको न सह सकनेके कारण नगर ऊजड़ होगया और फिर कभी न बसा। धीरे धीरे वहाँ ऐसा घोर वन उत्पन्न होगया कि मनुष्यको जाने तकमें भय होता था। १९ वीं शताब्दीमें वनकी कटाई प्रारंभ होनेके कारण प्राचीन ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होने लगे हैं जिनसे विदित होता है कि यह नगर आधुनिक कलकत्तेकी जोड़का रहा होगा और इसकी जन-संख्या भी अवश्य ही ६—७ लाखके लगभग रही होगी। उत्तर दिशाका अवशिष्ट नगर-प्राचीर खुदवाने पर नींव सौ फुट चौड़ी निकली। इसके अनंतर १२५ फुट चौड़ी खाई थी। प्राचीरके पूर्वोत्तर कोणमें राजा बल्लाल सेनके प्रासाद (४०० × ४०० गज़) के भग्नावशेष दृष्टिगोचर होते हैं। नगर-प्राचीरके बाहर दूसरी बस्तीके चिन्होंमें सागर डिग्गी नामक ८०० गज़ लम्बा तथा १६०० गज चौड़ा चारो ओरसे पक्की ईंटोंका बना हुआ एक

वंशजोंके हाथसे इस प्रकार राज्य निकलते देख फ़ख़रुद्दीनने अपेक्षाकृत अधिक नाविक-बल होनेके कारण अलीशाहपर वर्षाऋतुमें—कीचड़ और गर्मीमें ही—जहाज़ों द्वारा आक्रमण कर घोर युद्ध किया। वर्षाऋतु बीतते ही स्थल-बल अधिक होनेके कारण अलीशाहने भी लौटकर फ़ख़र-उद्दीनपर आक्रमण किया।

साधु तथा सूफ़ियोंसे अधिक प्रेम होनेके कारण फ़ख़रउद्दीन एक बार 'सात-गाम' में शैदा नामक एक सूफ़ीको अपना प्रतिनिधि नियत कर आप स्वयं शत्रुसे युद्ध करने चल दिया। उधर मैदान साफ़ देख शैदाने अपना आधिपत्य स्थायी करनेके लिए विद्रोह खड़ा कर सम्राट्के इकलौते पुत्रका वध कर डाला। समाचार पाते ही सम्राट् राजधानीको लौटा तो शैदा सुनारगाँव नामक एक सुदृढ़ और सुरक्षित स्थानकी ओर भाग गया। परन्तु सम्राट्ने उसका पीछा कर वहाँ भी सेना भेजी। यह देख नगर-निवासियोंने भयवश शैदाको पकड़ सम्राट्की सेनामें भेज दिया। सूफ़ीके इस प्रकार वंदी

सरोवर अबतक वर्त्तमान है। इसका जल अत्यंत स्वच्छ एवं स्वादिष्ट है। इसीके निकट प्यासबाड़ी नामक खारी जलका एक अन्य सरोवर भी बना हुआ है जिसका जल वंदियोंको पिलाया जाता था। कहा जाता है कि इसका प्रभाव विष सरीखा होनेके कारण उनकी मृत्यु तक हो जाती थी। अबुलफ़ज़ल इसकी पुष्टिमें लिखता है कि सम्राट् अकबरने इस प्रथाको बंद कर दिया था। गढ़ तथा प्यासबाड़ीके मध्यमें एक सुनहरी मसजिद भी बनी हुई है जिसकी छतमें गुम्बद थे।

शैख़ सम्राट् निज़ाम-उद्दीन औलियाके गुरु शैख़ अख़ीसराजका मठ भी यहाँ आधुनिक सादुल्लापुरमें 'सागर-डिग्गी' नामक सरोवरके पूर्वोत्तर कोणमें बना हुआ है।

हो जानेकी सूचना मिलते ही सम्राट्ने उसका सिर भेजनेका आदेश किया और सेनाके सम्राट्की आज्ञा पालन करनेके अनंतर उसके बहुतसे अनुयायी साधुओंका भी वध किया गया।

दिल्ली-सम्राट्से उनकी शत्रुता थी, अतः मैंने सातगाम पहुँच एतद्देशीय सम्राट्से अच्छा फल न होनेके भयसे भेंट न की।

३—कामरू देश (कामरूप)

सातगामसे मैं कामरू[1] पर्वतमालाकी ओर हो लिया, जो वहाँसे एक मासकी राह है। यह विस्तृत पर्वत-प्रदेश कस्तूरी मृग उत्पन्न करनेवाले चीन और तिब्बतकी सीमाओंसे जा मिला है। इस देशके निवासियोंकी आकृति तुर्कोंकी सी होती है। इनकी तरह परिश्रम करनेवाले व्यक्ति कठिनाईसे भी अन्यत्र न मिलेंगे। यहाँका एक-एक दास अन्य देशीय कई दासोंसे भी अधिक कार्य करता है। जादूगर भी यहाँके प्रसिद्ध हैं।

इस देशमें मैं तवरेज़-निवासी प्रसिद्ध ईश्वर-भक्त महात्मा शैख़ जलाल-उद्दीन[2] के दर्शनार्थ गया था। शैख़ महो-

---

(१) कामरू—आसामका एक जिला है। 'अज़रक' नामक नदीसे बतूताका अभिप्राय आधुनिक ब्रह्मपुत्रसे ही है। यह नगर अत्यन्त प्राचीन है—महाभारत तकमें इसका वर्णन है। जादू भी यहाँका अबतक कहावतोंमें प्रसिद्ध चला जाता है। 'कामाक्षा' देवीका प्रसिद्ध मन्दिर भी यहींपर है। भारतके मुसल्मान शासक भी इसको भलीभाँति अपने अधीन न कर सके। मध्ययुगमें आसाम अर्थात् कामरूपपर ब्राह्मण-वंशीय राजाओंका प्रभुत्व था जिन्होंने लगभग १००० वर्ष राज्य किया। हर्ष-वर्धनके समय यह राजा बौद्ध धर्मावलम्बी हो गये थे।

(२) शैख़ जलालुद्दीन—मुसल्मानोंमें यह अत्यन्त धार्मिक महा-

दय अपने समयके सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे। उनके अनेक चमत्कार बताये जाते हैं। उनकी अवस्था भी अत्यन्त अधिक थी। कहते थे कि मैंने बग़दादमें ख़लीफ़ा मुस्तअसम बिल्लाहका वध होते हुए स्वयं अपनी आँखोंसे देखा है क्योंकि वधके समय मैं वहीं उपस्थित था। इन महात्माकी डेढ़ सौ वर्षसे भी अधिक अवस्था हुई थी, चालीस वर्षसे तो वह निरन्तर रोज़ा ही रखते चले आते थे और दस-दस दिन पश्चात् व्रत-भंग करते थे। इनका क़द लम्बा, शरीर हलका तथा गाल पिचके हुए थे। देशके बहुतसे निवासियोंने इनसे मुसलमान धर्मकी दीक्षा ली थी। इनके एक साथीने मुझे बताया कि मृत्युसे एक दिन प्रथम इन्होंने अपने समस्त मित्रोंको इकट्ठा कर वसीयत की थी कि ईश्वरसे सदा डरते रहना चाहिये, ईश्वरेच्छानुसार मैं तुमसे कल विदा होऊँगा, मेरे अनन्तर तुम ईश्वरको ही मेरा स्थानापन्न समझना। ज़ुहरकी नमाज़के पश्चात् (तृतीय प्रहरके उपरान्त) अंतिम बार सिजदा करते इनका प्राण पखेरू उड़ गया। इनके रहनेकी गुफाके निकट ही एक खुदी खुदाई क़ब्र दीख पड़ी, जिसमें क़फ़न तथा सुगन्धि दोनों ही प्रस्तुत थे। साथियोंने शैख़को स्नान करा, कफ़न दे, नमाज़ पढ़ कर दफ़न कर दिया। परमेश्वर उनपर अपनी कृपा रखे!

शैख़ महात्माके दर्शनार्थ जाते समय उनके निवास-स्थानसे दो पड़ावकी दूरीपर उनके चार अनुयायियोंसे भेंट हुई। इनके द्वारा मुझको ज्ञात हुआ कि शैख़ने बहुतसे साधुओंसे

त्मा हुए हैं। इनका देहान्त तो बङ्गालमें ही हुआ, परन्तु इनके समाधि-स्थानका ठीक पता नहीं चलता कि कहाँ है।

(१) ख़नसा—इस नगरका आधुनिक नाम हो-भान-चू है।

कहा था कि एक पश्चिमीय यात्री हमारे पास आता है, उसका स्वागत करना चाहिये। इसी कारण यह लोग इतनी दूर मुझे लेने आये थे। शैख़ महाशयको मेरे सम्बन्धमें किसी और रीतिसे कुछ ज्ञान न हुआ था, केवल समाधि-द्वारा ही यह सब वृत्त उन्होंने जाना था।

अनुयायियोंके साथ मैं उनकी सेवामें दर्शनार्थ उपस्थित हुआ। वहाँ जाकर मैंने देखा कि मठ तो रहनेकी गुफाके बाहर ही बना हुआ है परंतु बस्तीका चिन्ह तक नहीं है। हिंदू और मुसलमान सबही शैख़के दर्शनार्थ उपस्थित हो भेंट चढ़ाते थे, परंतु यह सब पदार्थ दीन-दुखियोंको खिला-कर शैख़ अपनी गायका दूध पीकर ही संतुष्ट रहते थे। वहाँ जाने पर वह मुझसे खड़े होकर गलेसे मिले और देश तथा यात्राका वृत्तान्त पूछा। सबका यथावत् उत्तर देनेके उपरांत श्रीमुखसे निकला कि यह अरब देशके यात्री हैं। इस-पर एक अनुयायीने कहा कि श्रीमान्, यह यात्री तो अरब तथा अज़म[1] दोनों देशोंके हैं। यह सुन शैख़ने कहा कि हाँ, यह अरब और अज़मके हैं, इनका खूब आदर-सत्कार करो। इसके अनंतर तीन दिवस पर्य्यंत मठमें मेरा बड़ा आदर-सत्कार रहा।

प्रथम भेंटके दिन शैख़को मरग़र (एक पशु विशेषके ऊनका) चुग़ा पहिने देख मेरे हृदयमें यह विचार उठा कि यदि शैख़ महोदय यह वस्तु मुझे प्रदान कर दें तो क्या ही अच्छा हो। परंतु जब मैं उनसे विदा होने लगा तो शैख़ महाशयने गुफामें एक ओर जा चुग़ा शरीरसे उतार कर मुझ-को पहिनानेके अनंतर ताक़िया अर्थात् टोपा भी अपने शिरसे उतार मेरे शिरपर रख दिया। साधुओंके द्वारा मुझे ज्ञात

(१) अज़म—अरबीमें अरब देशके अतिरिक्त अन्य देशोंका नाम है।

हुआ कि शैख़ महाशय कभी चुग़ा न पहिनते थे, मेरे आनेके समाचार सुनकर केवल भेंटके दिन उसको धारण कर आपने अपने श्रीमुखसे यह उच्चारण किया था कि वह पश्चिमीय यात्री इस चुग़ेको मुझसे लेनेकी प्रार्थना करेगा, परंतु वह उसके पास भी न रहेगा और अंतमें एक विधर्मी सम्राट् द्वारा छीना जाकर पुनः मेरे भ्राता बुरहान-उद्दीनकी हो भेंट चढ़ेगा। साधुओंके वाक्योंको सुन तथा शैख़ महोदय द्वारा प्रदत्त पदार्थको अमूल्य वस्तुकी भाँति समझ मैंने इसको पहिन कर किसी सहधर्मी अथवा विधर्मी सम्राट्के संमुख न जानेका दृढ़ निश्चय कर लिया।

शैख़से विदा होनेके बहुत वर्ष पश्चात् दैवयोगसे चीन देशमें गया, और अपने साथियोंके साथ 'ख़नसा' नामक नगरमें घूम रहा था कि एक भीड़के कारण एक स्थानपर मैं उनसे पृथक् हो गया। उस समय यह चुग़ा मेरे शरीरपर था। इतनेमें मंत्रीने मुझे देखकर अपने पास बुला लिया, और मेरा वृतान्त पूछने लगा। बातें करते करते हम राजप्रासाद तक पहुँच गये। मैं यहाँसे अब विदा होना चाहता था परंतु उसने जाने न दिया और सम्राट्के संमुख मुझको उपस्थित कर दिया। प्रथम तो वह मुझसे मुसलमान सम्राटोंका वृत्त पूछता रहा और मैं उत्तर देता रहा, परंतु इसके बाद उसके इस चुग़ेकी अत्यंत प्रशंसा करने पर जब मंत्रीने इसको उतारनेको कहा तो लाचार होकर मुझको आज्ञा माननी ही पड़ी। सम्राट्ने चुग़ा ले उसके बदलेमें मुझको दस ख़िलअतें, सुसज्जित अश्व और बहुतसी मुहरें भी प्रदान कीं। परंतु मुझे इसके अलग होनेसे विशेष दुःख एव आश्चर्य हुआ और शैख़के वचन पुनः स्मरण हो आये।

द्वितीय वर्षमें चीनकी राजधानी 'खान वालक' में संयोग-वश शैख़ बुरहान-उद्दीनके मठमें जाकर मैं क्या देखता हूँ कि शैख़ महोदय मेरा ही चुग़ा धारण किये किसी पुस्तकका पाठ कर रहे हैं। आश्चर्यसे मैंने जो उसको उलट पुलट कर देखा तो शैख़ जी कहने लगे "क्यों ? क्या इसको पहिचानते हो" मैंने "हाँ" कहकर उत्तर दिया कि 'खनसा' के राजाने मुझसे यह चुग़ा ले लिया था। इसपर शैख़ने कहा कि शैख़ जलाल-उद्दीनने यह चुग़ा मेरे लिए तैयार कर पत्र द्वारा सूचित किया था कि यह अमुक पुरुष द्वारा तेरे पास भेजा जायगा। इतना कह कर शैख़ने जब मुझको वह पत्र दिखाया तो उसको पढ़कर मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा और मनमें शैख़के अद्भुत ज्ञानकी सराहना ही करता रहा। मैंने अब उनको इसकी समस्त गाथा कह सुनायी और उसके समाप्त होने पर शैख़ने कहा कि मेरे भाई शैख़ जलालउद्दीनका पद इससे कहीं उच्च है। संसारको समस्त घटनाओंको वे भलीभाँति जानते हैं परन्तु अब तो उनका शरीरपात भी हो गया।

इसके पश्चात् उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि मुझे भली-भाँति विदित है कि वह प्रत्येक दिन प्रातःकालकी नमाज़ मक्का नगरमें पढ़ा करते थे। प्रत्येक वर्ष हज करते थे और ज़रफ़ा और ईदके दिन लोप हो जाते थे परन्तु (इन घटनाओंकी) किसीको भी सूचना तक न होती थी।

४—सुनार-गाँव

शैख़ जलाल-उद्दीनसे विदा होकर मैं 'हबनक़'[1] नामक

(१) हबनक़ तो नहीं परन्तु ख़बनक नामक एक नगरका अवश्य

एक विस्तृत नगरकी ओर चला; इस नगरके मध्यमें होकर एक नदी बहती है।

कामरूपकी पर्वतमालाओंमें होकर बहनेवाली नदीको 'अज़रक़' कहते हैं। इसके द्वारा लोग बङ्गाल और लखनौती पर्य्यन्त पहुँच सकते हैं। मिश्र देशीय नील नदीके समान इस नदीके दोनों तटोंपर जल, उपवन और गाँव दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँके रहनेवाले हिन्दू (काफ़िर) हैं और उनसे अन्य करोंके अतिरिक्त आधी उपज राजस्वके रूपमें ले ली जाती है। पन्द्रह दिन पर्य्यन्त हम इस नदीमें यात्रा करते रहे और इस कालमें उपवनोंकी अधिकतासे ऐसा प्रतीत होता था कि मानों हम किसी बाज़ारमें ही जा रहे हों। नदी द्वारा जानेवाले जहाजोंकी संख्या भी नियत नहीं हैं, चाहे जितने जहाज़ वहाँ चलाये जा सकते हैं। प्रत्येक पोतपर एक नगाड़ा होता है जो अन्य जहाज़के संमुख आने पर बजाया जाता है। यह अभिवादन कहलाता है। सम्राट् फ़ख़रुद्दीनके आदेशके कारण साधुओंसे नदीकी उतराई अथवा नदी-यात्राका कुछ कर नहीं लिया जाता। उनको भोजन भी मुफ़्त दिया जाता है और नगरमें पहुँचते ही प्रत्येक साधुको आधा दीनार भी दानमें दिया जाता है।

पन्द्रह दिन यात्रा करनेके पश्चात् हम सुनार गाँव[1]

पता चलता है। बहुत सम्भव है कि बतूताका तात्पर्य कामाख्या नामक स्थानसे हो जहाँ प्रत्येक वर्ष मेला लगता है।

(१) सुनारगाँव—हिन्दुओंके समयसे पूर्वीय बङ्गालकी राजधानी था। यह नगर सर्वप्रथम ब्रह्मपुत्र तथा मेघनासे समान दूरीपर मध्यमें बसाये जानेके कारण व्यापार तथा राजधानी दोनोंकी ही दृष्टिसे अत्युत्तम था। मुसलमान शासकों तथा अंग्रेजोंके प्रारम्भिक काल पर्य्यन्त

में पहुँचे। यहींके निवासियोंने शैदाको बन्दी कर सम्राट्के हवाले कर दिया था।

इसकी स्थिति बनी रही, परन्तु अब तो सम्पूर्णतः नष्ट हो गया है। ढाकाके निकट पन्द्रह मीलकी दूरीपर ब्रह्मपुत्र नदीके तटसे दो मीलके बाद घोर वनमें इसके भग्नावशेष अब भी दृष्टिगोचर होते हैं। केवल 'पैनाम' नामक एक गाँव इसकी प्राचीन स्थितिपर अब भी चला जाता है। ईस्टइण्डिया कम्पनीके राजत्वकालमें यहाँ सर्वोत्तम सूती वस्त्र तैयार होते थे जिनकी मुसलमान तथा अंग्रेज शासक दोनोंने भूरि भूरि प्रशंसा की है।

हिन्दी-शब्द-संग्रह

(हिन्दी भाषाका एक बहुमूल्य कोष)

सम्पादक—श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव तथा श्रीराजवल्लभ सहाय

इसमें प्राचीन हिन्दी कवियों द्वारा प्रयुक्त व्रजभाषा, अवधी, बुन्देल खण्डी इत्यादिके शब्दोंके अतिरिक्त आधुनिक हिन्दी साहित्य-में प्रचलित, हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी, आदि भाषाओंके शब्दोंका भी संग्रह किया गया है। अप्रचलित शब्दोंका अर्थ स्पष्ट करनेके लिए विविध ग्रन्थोंसे हजारों उदाहरण भी दिये गये हैं। मू० अजिल्दका ४), सजिल्दका ४॥)

'हिन्दीमें इतना सुन्दर, इतने पृष्ठोंमें इतना अर्थपूर्ण तथा उपयोगी शब्दकोष कोई भी नहीं है। प्राचीन हिन्दी ग्रन्थोंके पढ़ने-वालोंके लिये इस ग्रन्थसे अच्छा कोई भी ग्रन्थ नहीं मिल सकता।'—प्रेमा।

'व्रजभाषा तथा प्राचीन हिन्दी साहित्यके ग्रन्थोंमें प्राप्त एक भी कठिन शब्द छूटने नहीं पाया है। उदाहरण भरे पड़े हैं।'—भारत।

'विशेषता यह है कि व्रजभाषा और अवधीके शब्द प्रायः कोषोंमें नहीं मिलते, इसमें दोनों भाषाओंके अधिकांश शब्द संग्रहीत हैं, और उनका अर्थ सप्रमाण और सोदाहरण लिखा गया है।'—अयोध्यासिंह उपाध्याय।

'पुस्तक बड़े ही महत्वकी और बड़ी उपयोगी है, कोई मुख्य शब्द छूटने नहीं पाया है।'—बलदेवप्रसादमिश्र एम० ए०, एल-एल० बी०।

अनुक्रमणिका

म

